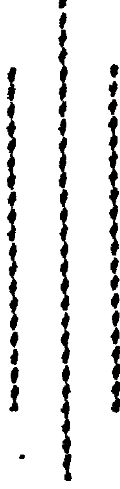
: प्रथमावृत्ति :

वीर संवत् २५०३ वि० सं० २०३३

प्रति : ३०००



मूल्य :

८) रुपये मात्र

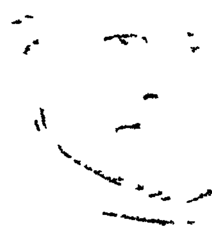


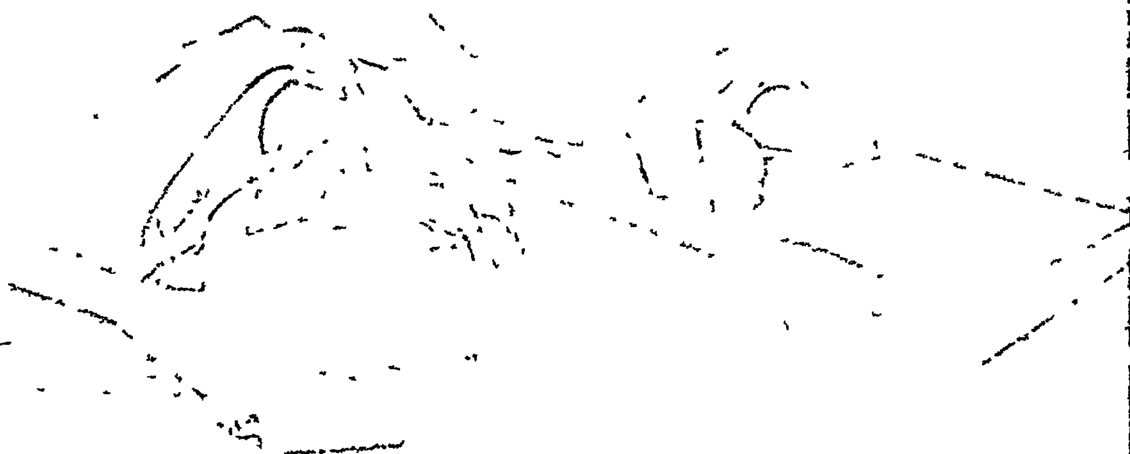
: मुद्रक :

नेमीचन्द बाकलीवाल

बाकलीवाल प्रिन्टर्स

मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)







प्रकाशकीय निवेदन

यह "बृहद्-द्रव्यसंग्रह" ग्रन्थ ५८ सूत्र का छोटा ग्रन्थ है, फिर भी विषय की दृष्टि से बहुत उपकारी एवं महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थकार आचार्य भगवान ने इसमें जैन सिद्धान्त का सार भर दिया है। जीव के नव अधिकारों में व्यवहार और निश्चय—दोनों का संक्षिप्त कथन किया है।

इस ग्रन्थ में तीन अधिकार हैं। पहला अधिकार में छह द्रव्य और पंचास्तिकाय का, दूसरा में सात तत्त्व और नौ पदार्थ का और तीसरा में निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का प्रतिपादन उत्कृष्ट पद्धति से किया है। सैद्धांतिक ज्ञान के लिये, तत्त्वार्थसूत्र की भांति यह शास्त्र भी बहुत उपकारी है और श्री समयसार आदि अध्यात्म शास्त्रों के लिये प्रवेशिका समान है। इस शास्त्र का रचयिता श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतदेव महान् आचार्य थे और वे सिद्धांत एवं अध्यात्म के पारगामी थे।

इस शास्त्र की यही एक टीका उपलब्ध है, जो श्री ब्रह्मदेव ने बहुत सुन्दर, विस्तृत और सप्रमाण लिखी है। वे बहुश्रुत विद्वान थे, अनेक जैनागमों का गहन अध्ययन किया था और नयों का उच्च कक्षा के ज्ञान के धारक थे।

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने इस शास्त्र पर अपूर्व एवं गंभीर प्रवचन किया है, उसमें से प्रेरणा पाकर प्रथम गुजराती अनुवाद ब्र० श्री बृजलाल गिरधरलाल शाह ने किया था, उस पर से पं० श्री राजकिशोरजी जैन ने यह हिन्दी अनुवाद किया है, जिसके लिये हम इन दोनों विद्वानों का आभार मानते हैं। ब्र० श्री बृजलाल गिरधरलाल शाह ने और भी कई शास्त्रों का अनुवाद (निःशुल्क) निस्पृह भाव से हमें कर दिया है। इसलिये हमारा ट्रस्ट उनको धन्यवाद देते हुए उनके ऋणी हैं।

परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की प्रत्यक्ष प्रेरणा से सारे भारत में तत्त्वज्ञान का बहुत प्रचार व प्रसार हो रहा है, जिसके अंतर्गत हमारा ट्रस्ट भी कार्य कर रहा है। वैसी उनकी क्रिया बनी रहे यही प्रयाचना है। पू० स्वामीजी का हमारे पर एवं सारे समाज पर जो उपकार है, उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती।

इस शास्त्र के सुन्दर मुद्रण के लिये श्री नेमीचन्द वाकलीवाल, वाकलीवाल प्रिन्टर्स, मदनगंज–किशनगढ़ के हम आभारी हैं।

ट्रस्ट की ओर से इस ग्रन्थ की लागत मूल्य से २५% कम कर, उस घटाई हुई कीमत में से २०% कम करने की सहायता श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ ने दी है। इसलिये हमारा ट्रस्ट उनका आभारी है। इसप्रकार मुमुक्षु-गण अधिक लाभान्वित हो सकें इस हेतु से मूल्य कम कर दिया गया है।

श्री जिनेन्द्र परमात्मा द्वारा वस्तुस्वरूप का जो निरूपण हुआ है वही इस शास्त्र में नयविभाग पूर्वक प्रतिपादन किया गया है। मुमुक्षु समाज इनके भावों को यथार्थ रूप में समझकर अपना हित करें यह ही भावना है।

भावनगर
दि० ८–९–७७

ट्रस्टीगण
श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर



-: अनुक्रमणिका :-

दूसरा अधिकार ९२-१८२





श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेव-विरचित

श्री

वृहद्-द्रव्य संग्रह

— १ —

षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

श्रीमद्ब्रह्मदेवकृता संस्कृतव्याख्या ।

प्रणम्य परमात्मानं सिद्धं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
स्वाभाविकचिदानन्दस्वरूपं निर्मलाव्ययम् ॥ १ ॥
शुद्धजीवादिद्रव्याणां देशकं च जिनेश्वरम् ।
द्रव्यसंग्रहसूत्राणां वृत्तिं वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्ति-सम्बन्धिनः श्रीपालमहामण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकर-

---

श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीकाका

हिन्दी अनुवाद

[टीकाकारका मंगलाचरणः—] तीनों लोकों द्वारा वंदनीय, स्वाभाविक चिदानन्दस्वरूप, निर्मल तथा अविनाशी ऐसे सिद्ध परमात्माको और शुद्धजीवादि द्रव्योंके उपदेशक श्रीजिनेश्वर भगवानको प्रणाम करके, मैं (—ब्रह्मदेव), द्रव्यसंग्रह (नामक ग्रन्थ)के सूत्रोंकी टीका संक्षेपमें कहूँगा। (१-२)

[अव श्री टीकाकार ग्रन्थकी टीकाका प्रारम्भ करते हैं:—]

मालवा देशमें, धारानगरीके अधिपति कलिकालचक्रवर्ती भोजदेव-राजाके संवंधी महामंडलेश्वर श्री पालके 'आश्रम' नामक नगरमें, श्री मुनिसुव्रतनाथ

चैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन व्याख्या वृत्तिः प्रारभ्यते। तत्रादौ "जीवमजीवं दव्वं" इत्यादि सप्तविंशतिगाथापर्यन्तं षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोऽधिकारः। तदनन्तरं "आसवबंधण" इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादनमुख्यतया द्वितीयो महाधिकारः। ततः परं "सम्मद्दंसणणाणं" इत्यादिविंशतिगाथापर्यन्तं मोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन तृतीयोऽधिकारश्च। इत्यष्टाधिकपञ्चाशद्गाथाभिरधिकारत्रयं ज्ञातव्यम्। तत्राप्यादौ प्रथमाधिकारे चतुर्दशगाथापर्यन्तं जीवद्रव्यव्याख्यानम्। ततः परं "अज्जीवो पुण णेओ" इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तमजीवद्रव्यकथनम्। ततः परं "एवं छब्भेयमिदं" एवं सूत्रपञ्चकपर्यन्तं पञ्चास्ति-

---

तीर्थंकरके चैत्यालयमें, शुद्धात्मद्रव्यके संवेदनसे उत्पन्न हुए सुखामृतके रसास्वादसे विपरीत नारकादि दुःखोंसे भयभीत, परमात्मभावनासे उत्पन्न हुए सुखरूपी सुधारसके पिपासु, भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनाके प्रेमी, भव्यवरपुंडरीक, राजकोषके कोपाध्यक्ष आदि अनेक राज्यकार्यके अधिकारी 'सोम' नामक राजसेठके निमित्त श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेवने प्रथम छब्बीस गाथाओंमें [1]लघुद्रव्यसंग्रह बनाकर, तदुपरांत विशेष तत्त्वके परिज्ञानके लिये बृहद्-द्रव्य संग्रहकी रचनाकी। उसकी (बृहद्-द्रव्य संग्रहकी) अधिकारशुद्धिपूर्वक व्याख्याका (–टीकाका) प्रारम्भ किया जाता है।

वहाँ प्रथम "जीवमजीवं दव्वं" इत्यादि सत्ताईस गाथा पर्यन्त छह द्रव्य, पंचास्तिकायका प्रतिपादन करनेवाला प्रथम अधिकार है। उसके पश्चात् "आसवबंधण" इत्यादि ग्यारह गाथा पर्यन्त सात तत्त्व और नव पदार्थके प्रतिपादनकी मुख्यतासे द्वितीय महाअधिकार है। तत्पश्चात् "सम्मद्दंसणणाणं" इत्यादि वीस गाथाओंमें मोक्षमार्गके कथनकी मुख्यतासे तृतीय अधिकार है। इस प्रकार अट्ठावन गाथाओंमें तीन अधिकार जानना।

उनमें भी आदिके प्रथम अधिकारमें चौदह गाथाओंमें जीवद्रव्यका व्याख्यान है। तत्पश्चात् "अज्जीवो पुण णेओ" इत्यादि आठ गाथाओंमें अजीव द्रव्यका कथन

१–यह लघु द्रव्य संग्रह इस पुस्तकके अन्तमें दी है।

कायविवरणम् । इति प्रथमाधिकारमध्येऽन्तराधिकारत्रयमवबोद्धव्यम् । तत्रापि चतुर्दशगाथासु मध्ये नमस्कारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । जीवादिनवाधिकारसूचनरूपेण "जीवो उवओगमओ" इत्यादि द्वितीयसूत्रगाथा । तदनन्तरं नवाधिकारविवरणरूपेण द्वादशसूत्राणि भवन्ति । तत्राप्यादौ जीवसिद्ध्यर्थं "तिक्काले चदुपाणा" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, तदनन्तरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयकथनार्थं "उवओगो दुवियप्पो" इत्यादि-गाथात्रयम्, ततः परममूर्तत्वकथनेन "वण्णरसपंच" इत्यादिसूत्रमेकम्, ततोऽपि कर्मकर्तृत्वप्रतिपादनरूपेण "पुग्गलकम्मादीणं" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, तदनन्तरं भोक्तृत्वनिरूपणार्थं "ववहारा सुहदुक्खं" इत्यादिसूत्रमेकम्, ततः परं स्वदेहप्रमिति-सिद्ध्यर्थं "अणुगुरुदेहपमाणो" इतिप्रभृतिसूत्रमेकम्, ततोऽपि संसारिजीवस्वरूप-कथनेन "पुढविजलतेउवाऊ" इत्यादिगाथात्रयम्, तदनन्तरं "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" इति प्रभृतिगाथापूर्वार्धेन सिद्धस्वरूपकथनम्, उत्तरार्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभावः । इति नमस्कारादिचतुर्दशगाथामेलापकेन प्रथमाधिकारे समुदायपातनिका ।

अथेदानीं गाथापूर्वार्धेन सम्बन्धाऽभिधेयप्रयोजनानि कथयाम्युत्तरार्धेन च

है । तत्पश्चात् "एवं छब्भेयमिदं" आदि पांच गाथाओंमें पंचास्तिकायका विवरण है । इस प्रकार प्रथम अधिकारमें तीन अंतराधिकार जानना । उनमें भी चौदह गाथाओंमें पहली गाथा नमस्कारकी मुख्यतासे है, द्वितीय गाथा "जीवो उवओगमओ" इत्यादि जीवादि नव अधिकारोंके सूचनरूप है । तत्पश्चात् नव अधिकारोंके विवरणरूप बारह गाथासूत्र हैं । उन (बारह गाथासूत्रों) में भी प्रारंभमें जीवकी सिद्धिके लिये "तिक्काले चदुपाणा" आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् ज्ञान और दर्शन दोनों उपयोगोंका कथन करनेके लिये "उवओगो दुवियप्पो" आदि तीन गाथायें हैं । तत्पश्चात् (जीवके) अमूर्तपनेके कथन हेतु "वण्णरसपंच" आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् कर्मके कर्तापनेका प्रतिपादनरूपसे "पुग्गलकम्मादीणं" आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् भोक्तापनेका निरूपण करनेके लिये "ववहारा सुहदुक्खं" आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् (जीवको) स्वदेहप्रमाण सिद्ध करनेके लिये "अणुगुरुदेहपमाणो" आदि एक सूत्र है । तत्पश्चात् संसारी जीवका स्वरूपकथन करनेके लिये "पुढविजलतेउवाऊ" आदि तीन गाथायें हैं । तत्पश्चात् "णिक्कम्मा अट्ठगुणा" आदि गाथाके पूर्वार्धमें सिद्धस्वरूपका और उत्तरार्धमें (जीवके) ऊर्ध्वगमनस्वभावका कथन किया है । इस प्रकार नमस्कारादि चौदह गाथाओं द्वारा प्रथम अधिकारमें समुदायपातनिका है ।

मङ्गलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति—

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

जीवमजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवंद्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥ १ ॥

व्याख्या—'वंदे' इत्यादिक्रियाकारकसम्बन्धेन पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते । 'वंदे' एकदेशशुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्माराधनालक्षणभावस्तवनेन तथा च असद्भूतव्यवहारनयेन तत्प्रतिपादकवचनरूपद्रव्यस्तवनेन च वन्दे नमस्करोमि । परमशुद्धनिश्चयनयेन पुनर्वन्द्यवन्दकभावो नास्ति । स कः कर्ता ? अहं नेमिचन्द्र-

---

अब गाथाके पूर्वार्ध द्वारा मैं संबंध, अभिधेय और प्रयोजन कहता हूँ और उत्तरार्ध द्वारा मंगलके लिये इष्टदेवको नमस्कार करता हूँ ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर भगवान (श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव) इस गाथासूत्रको कहते हैं:—

गाथा–१

गाथार्थः—मैं (नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव), जिस जिनवरवृषभने जीव और अजीव द्रव्यका वर्णन किया है, उस देवेन्द्रोंके समूहसे वंद्य तीर्थंकर-परमदेवको सदा मस्तक द्वारा नमस्कार करता हूँ ।

टीकाः—"वंदे" इत्यादि पदोंका क्रियाकारकसंबंधसे पदखण्डनारूपसे व्याख्यान किया जाता है । "वंदे" एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे स्वशुद्धात्माराधनालक्षण (निज-शुद्धात्माकी आराधना जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसे) भावस्तवन द्वारा तथा असद्भूतव्यवहारनयसे उसके प्रतिपादक वचनरूप द्रव्यस्तवन द्वारा नमस्कार करता हूँ । परमशुद्धनिश्चयनयसे तो वंद्यवंदक भाव नहीं है । वह नमस्कार करनेवाला कौन है ? मैं नेमिचन्द्रसिद्धांतिदेव हूँ । किस प्रकार नमस्कार करता हूँ ? "सव्वदा" सदा ।

(चौपाई छंद)

जीव अजीव द्रव्य षटभेद, जिनवर वृषभ कहे निरखेद ।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सुदा, मैं वंदौं मस्तकतैं सदा ॥ १ ॥

सिद्धान्तिदेवः । कथं वन्दे ? "सव्वदा" सर्वकालम् । केन ? "सिरसा" उत्तमाङ्गेन । "तं" कर्म्मतापन्नं । तं कं ? वीतरागसर्वज्ञम् । किंविशिष्टम् ? "देविंदविंदवंदं" मोक्षपदाभिलाषिदेवेन्द्रादिवन्द्यम्, "भवणालयचालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ।।" इति गाथाकथितलक्षणेन्द्राणां शतेन वन्दितं देवेन्द्रवृन्दवन्द्यम् । "जेण" येन भगवता किं कृतं ? "णिद्दिट्ठं" निर्दिष्टं कथितं प्रतिपादितम् । किं ? "जीवमजीवं दव्वं" जीवाजीवद्रव्यद्वयम् । तद्यथा—सहजशुद्धचैतन्यादिलक्षणं जीवद्रव्यं, तद्विलक्षणं पुद्गलादिपञ्चभेदमजीवद्रव्यं च, तथैव चिच्चमत्कारलक्षणशुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायानां परमचिज्ज्योतिःस्वरूपशुद्धजीवादिसप्ततत्त्वानां निर्दोषपरमात्मादिनवपदार्थानां च स्वरूपमुपदिष्टम् । पुनरपि कथम्भूतेन भगवता ? "जिणवरवसहेण" जितमिथ्यात्वरागादित्वेन एकदेशजिनाः असंयतसम्यग्दृष्टयादयस्तेषां वराः गणधरदेवास्तेषां जिनवराणां

किसके द्वारा ? "सिरसा" उत्तम अंग द्वारा । "तं" (वंदनक्रियाके) कर्मपनेको प्राप्त है उसको । वह (वंदनक्रियाके कर्मपनेको प्राप्त) कौन है ? वीतराग सर्वज्ञ । वह कैसा है ? "देविंदविंदवंदं" मोक्षपदके अभिलाषी देवेन्द्र आदिसे वंद्य है। [1]"भवणालयचालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ।।" (अर्थः—भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यंतर देवोंके ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवोंके २४ इन्द्र, ज्योतिषी देवोंके चन्द्र और सूर्य ये २ इन्द्र, मनुष्योंका १ इन्द्र चक्रवर्ती और तिर्यंचका १ इन्द्र सिंह—इस प्रकार सब मिलकर १०० इन्द्र हैं ।)—इस गाथामें कहे हुए सौ इन्द्रोंसे वंद्य हैं । "जेण" जिन भगवानने क्या किया है ? "णिद्दिट्ठं" निर्दिष्ट किया है—कहा है—प्रतिपादन किया है । क्या? "जीवमजीवं दव्वं" जीव और अजीव दो द्रव्य, वे इस प्रकारः—सहजशुद्धचैतन्यादिलक्षण जीवद्रव्य और उससे विलक्षण, पुद्गलादि पांच भेदवाला अजीवद्रव्य । तदुपरांत चित्चमत्कारलक्षण शुद्धजीवास्तिकायादि पांच अस्तिकायोंका, परमचित्ज्योतिस्वरूप शुद्धजीवादि सात तत्त्वोंका और निर्दोष परमात्मादि नव पदार्थोंके स्वरूपका उपदेश किया है । तथा वे भगवान कैसे हैं ? "जिणवरवसहेण" मिथ्यात्व और रागादि जीते होनेके कारण असंयत—सम्यग्दृष्टि आदि एकदेश जिन हैं, उनमें जो वर अर्थात् श्रेष्ठ हैं वे गणधर-

---

१ यह गाथा श्री आराधनासार गाथा १ की टीकामें है ।

वृषभः प्रधानो जिनवरवृषभस्तीर्थंकरपरमदेवस्तेन जिनवरवृषभेणेति । अत्राध्यात्मशास्त्रे यद्यपि सिद्धपरमेष्ठिनमस्कार उचितस्तथापि व्यवहारनयमाश्रित्य प्रत्युपकारस्मरणार्थमर्हत्परमेष्ठिनमस्कार एव कृतः । तथा चोक्तं—"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः ॥" अत्र गाथापरार्धेन—"नास्तिकत्वपरिहारः शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥" इति श्लोककथितफलचतुष्टयं समीक्षमाणा ग्रन्थकाराः शास्त्रादौ त्रिधा देवतायै त्रिधा नमस्कारं कुर्वन्ति । त्रिधा देवता कथ्यते । केन प्रकारेण ? इष्टाधिकृताभिमतभेदेन । इष्टः—स्वकीयपूज्यः (१) । अधिकृतः—ग्रन्थस्यादौ प्रकरणस्य वा नमस्करणीयत्वेन विवक्षितः (२) । अभिमतः—सर्वेषां लोकानां

देव हैं, उन जिनवरोंके (गणधरोंके) भी जो वृषभ अर्थात् प्रधान हैं वे जिनवरवृषभ अर्थात् तीर्थंकर–परमदेव हैं । (उन जिनवरवृषभ द्वारा कहा गया है ।)

यहां अध्यात्मशास्त्रमें यद्यपि सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार करना योग्य है तो भी व्यवहारनयका आश्रय लेकर उपकारस्मरण करनेके लिये अर्हत्-परमेष्ठीको ही नमस्कार किया है। तथा कहा भी है—[1]"अर्हत् परमेष्ठीके प्रसादसे मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है अतः मुनिवरोंने शास्त्रके आदिमें अर्हत्-परमेष्ठीके गुणोंकी स्तुति की है।"

यहां गाथाके उत्तरार्धसे [2]"नास्तिकत्वपरिहारः शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥" [अर्थः—नास्तिकताका त्याग, शिष्टाचारका पालन, पुण्यकी प्राप्ति और विघ्नविनाश—इन चार लाभोंके लिये शास्त्रके आरंभमें इष्टदेवकी स्तुति की जाती है ।] इस श्लोकमें कहे गये चार फलोंको जानते हुए शास्त्रकार शास्त्रके आरंभमें तीन प्रकारके देवोंको तीन प्रकारसे नमस्कार करते हैं ।

तीन प्रकारसे देवका कथन किया जाता है । किस प्रकारसे ? इष्ट, अधिकृत और अभिमत—इन तीन भेदोंसे । (१) इष्ट—अपने द्वारा पूज्य वह इष्ट । (२) अधिकृत—ग्रंथ अथवा प्रकरणके प्रारम्भमें नमस्कारके लिये जो विवक्षित हो वह ।

१. आप्त परीक्षा श्लोक २ ।

२. श्री पंचास्तिकाय गाथा १ की तात्पर्यवृत्ति टीकामें आधाररूपसे श्री जयसेनाचार्यने लिया है ।

विवादं विना सम्मतः (३) । इत्यादिमङ्गलव्याख्यानं सूचितम् । मङ्गलमित्युपलक्षणम् । उक्तं च—"मंगलणिमित्तहेउं परिमाणं णाम तह य कत्तारं । वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥" "वक्खाणउ" व्याख्यातु । स कः ? "आयरिओ" आचार्यः । कं ? "सत्थं" शास्त्रं । "पच्छा" पश्चात् । किं कृत्वा पूर्वं ? "वागरिय" व्याकृत्य व्याख्याय । कान् ? "छप्पि" षडप्यधिकारान् । कथंभूतान् ? "मंगलणिमित्तहेउं परिमाणं णाम तह य कत्तारं" मङ्गलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्तृसंज्ञामिति । इति गाथाकथितक्रमेण मङ्गलाद्यधिकारषट्कमपि ज्ञातव्यम् । गाथापूर्वार्धेन तु सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि । कथमिति चेत् —विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मस्वरूपादिविवरणरूपो वृत्तिग्रन्थो व्याख्यानम् । व्याख्येयं तु तत्प्रतिपादकसूत्रम् । इति व्याख्यानव्याख्येयसम्बन्धो विज्ञेयः । यदेव व्याख्येयसूत्रमुक्तं तदेवा-

(३) अभिमत—सब लोगोंको जो विवाद विना मान्य हो वह ।

इसप्रकार मंगलका व्याख्यान किया ।

यहाँ मंगल उपलक्षण पद है । कहा है—

[1]"मंगलणिमित्तहेउं परिमाणं णाम तह य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥"

[अर्थ:—मंगलाचरण, (शास्त्र बनानेका) निमित्तकारण, प्रयोजन, परिमाण, नाम और कर्त्ता—इन छह अधिकारोंकी व्याख्या करनेके पश्चात् आचार्य शास्त्रका व्याख्यान करें।]

"वक्खाणउ" व्याख्यान करना । किसके द्वारा ? "आयरिओ" आचार्यदेव द्वारा । किसका ? "सत्थं" शास्त्रका । "पच्छा" पश्चात् । प्रथम क्या करके ? "वागरिय" व्याख्या करके । किसकी ? "छप्पि" छ अधिकारोंकी । कौनसे ? "मङ्गलणिमित्तहेउं परिमाणं णाम तह य कत्तारं" मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता—इस प्रकार गाथामें कहे गये मंगल आदि छः अधिकार भी जानना चाहिए ।

गाथाके पूर्वार्धसे संबंध, अभिधेय और प्रयोजन सूचित किया है । किस प्रकार ? विशुद्ध ज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है ऐसे परमात्माके स्वरूपादिके विवरण-

१–षट्खंडागम १/७, पंचास्तिकाय गाथा–१, तात्पर्यवृत्ति टीका श्री जयसेनाचार्यकृत, तिलोयपण्णत्ति श्लोक १/७ ।

भिधानं वाचकं प्रतिपादकं भण्यते, अनन्तज्ञानाद्यनन्तगुणाधारपरमात्मादिस्वभावोऽभिधेयो वाच्यः प्रतिपाद्यः । इत्यभिधानाभिधेयस्वरूपं वोधव्यम् । प्रयोजनं तु व्यवहारेण षड्द्रव्यादिपरिज्ञानम्, निश्चयेन निजनिरञ्जनशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादरूपं स्वसंवेदनज्ञानम् । परमनिश्चयेन पुनस्तत्फलरूपा केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाविनाभूता निजात्मोपादानसिद्धानन्तसुखावाप्तिरिति । एवं नमस्कारगाथा व्याख्याता ।

अथ नमस्कारगाथायां प्रथमं यदुक्तं जीवद्रव्यं तत्सम्वन्धे नवाधिकारान् संक्षेपेण सूचयामीति अभिप्रायं मनसि सम्प्रधार्य कथनसूत्रमिति निरूपयति—

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्तिः कर्त्ता स्वदेहपरिमाणः ।
भोक्ता संसारस्थः सिद्धः सः विस्रसा ऊर्ध्वगतिः ॥ २ ॥

रूप जो वृत्तिग्रन्थ वह व्याख्यान है और उसका प्रतिपादन करनेवाला जो गाथासूत्र वह व्याख्येय है । इस प्रकार व्याख्यान-व्याख्येयरूप संबंध जानना । जो व्याख्या करने योग्य सूत्र हैं वे ही अभिधान—वाचक—प्रतिपादक कहलाते हैं; अनंतज्ञानादि अनंतगुणोंके आधाररूप परमात्मा आदिका स्वभाव वह अभिधेय—वाच्य—प्रतिपाद्य है । इस प्रकार अभिधान—अभिधेयका स्वरूप जानना । व्यवहारसे छः द्रव्यादिका परिज्ञान वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है; निश्चयसे निज निरंजन-शुद्धात्मसंवित्तिसे उत्पन्न निर्विकार परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादरूप स्वसंवेदनज्ञान वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है । परमनिश्चयसे उस स्वसंवेदनज्ञानके फलरूप, केवलज्ञानादि अनंतगुणके साथ अविनाभावी, निजात्मउपादानसिद्ध अनंत सुखकी प्राप्ति वह इस ग्रन्थका प्रयोजन है ।

इस प्रकार नमस्कार गाथाका व्याख्यान किया ॥१॥

अव नमस्कार-गाथामें जो जीवद्रव्य कहा गया, उस जीव द्रव्यके संबंधमें मैं नव अधिकार संक्षेपमें सूचित करूंगा ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर (नव अधिकारोंका) कथन करनेवाले सूत्रका (श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेव) निरूपण करते हैं:—

जीव मयी उपयोग अमूर्त, कर्ता देहमान है पूर्त ।
भोक्ता संसारी अर सिद्ध, उर्ध्वगमन नव कथन प्रसिद्ध ॥ २ ॥

व्याख्या—"जीवो" शुद्धनिश्चयनयेनादिमध्यान्तवर्जितस्वपरप्रकाशकाविनश्वर-निरुपाधिशुद्धचैतन्यलक्षणनिश्चयप्राणेन यद्यपि जीवति, तथाप्यशुद्धनयेनानादिकर्मबन्ध-वशादशुद्धद्रव्यभावप्राणैर्जीवतीति जीवः। "उवओगमओ" शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनोपयोगमयस्तथाप्यशुद्धनयेन क्षायोपशमिकज्ञानदर्शननिर्वृत्तत्वात् ज्ञानदर्शनोपयोगमयो भवति। "अमुत्ति" यद्यपि व्यवहारेण मूर्त्तकर्म्माधीनत्वेन स्पर्शरसगन्धवर्णवत्या मूर्त्या सहितत्वान्मूर्त्तस्तथापि परमार्थेनामूर्त्तातीन्द्रियशुद्धबुद्धैक-स्वभावत्वादमूर्त्तः। "कत्ता" यद्यपि भूतार्थनयेन निष्क्रियटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावोऽयं जीवः तथाप्यभूतार्थनयेन मनोवचनकायव्यापारोत्पादककर्मसहितत्वेन शुभाशुभकर्म्म-कर्तृत्वात् कर्त्ता। "सदेहपरिमाणो" यद्यपि निश्चयेन सहजशुद्धलोकाकाशप्रमितासंख्येय-

---

गाथा–२

गाथार्थः—जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेहप्रमाण है, भोक्ता है, संसारस्थ है, सिद्ध है और स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करनेवाला है वह जीव है।

टीकाः—"जीवो" यह जीव यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे आदि–मध्य–अंतरहित, स्व-परप्रकाशक, अविनाशी, निरुपाधि शुद्ध चैतन्य जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे निश्चयप्राणसे जीता है तो भी अशुद्धनयसे अनादिकर्मबंधके वश अशुद्ध द्रव्यप्राणों और भावप्राणोंसे जीता है; अतः वह जीव है।

"उवओगमओ" यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानदर्शनरूप 'उपयोगमय' है तो भी अशुद्धनयसे क्षायोपशमिक ज्ञान और दर्शनसे रचित होनेसे ज्ञानदर्शनरूप 'उपयोगमय' है।

"अमुत्ति" यद्यपि व्यवहारसे मूर्तकर्मके आधीनपनेसे स्पर्श–रस–गंध–वर्णरूप मूर्तपना सहित है इसलिए मूर्त है तो भी परमार्थसे अमूर्त–अतीन्द्रिय–शुद्ध–बुद्ध–एक स्वभाववाला होनेसे 'अमूर्त' है।

"कत्ता" यद्यपि यह जीव भूतार्थनयसे निष्क्रिय–टंकोत्कीर्ण–ज्ञायक–एक स्व-भाववाला है तो भी अभूतार्थनयसे मन–वचन–कायाके व्यापारको उत्पन्न करनेवाले कर्म सहित होनेसे, शुभाशुभ कर्मका कर्ता होनेसे 'कर्ता' है।

"सदेहपरिमाणो" यद्यपि निश्चयसे सहजशुद्ध लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी

प्रदेशस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्म्मबन्धाधीनत्वेन शरीरनामकर्मोदयजनितोपसंहारविस्ताराधीनत्वात् घटादिभाजनस्थप्रदीपवत् स्वदेहपरिमाणः । "भोत्ता" यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वात्मोत्थसुखामृतभोक्ता, तथाप्यशुद्धनयेन तथाविधसुखामृतभोजनाभावाच्छुभाशुभकर्मजनितसुखदुःखभोक्तृत्वाद्भोक्ता । "संसारत्थो" यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निःसंसारनित्यानन्दैकस्वभावस्तथाप्यशुद्धनयेन द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारे तिष्ठतीति संसारस्थः । "सिद्धो" व्यवहारेण स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धत्वप्रतिपक्षभूतकर्मोदयेन यद्यप्यसिद्धस्तथापि निश्चयनयेनानन्तज्ञानानन्तगुणस्वभावत्वात् सिद्धः । "सो" स एवंगुणविशिष्टो जीवः । "विस्ससोड्ढगई" यद्यपि व्यवहारेण चतुर्गतिजनककर्मोदयवशेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्गतिस्वभावस्तथापि निश्चयेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणावाप्तिलक्षणमोक्षगमनकाले विस्रसा स्वभावेनोर्ध्वगतिश्चेति । अत्र पदखण्डनारूपेण

है तो भी व्यवहारसे, अनादि कर्मबन्धके आधीनपनेसे शरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न संकोच–विस्तारके आधीनपनेके कारण, घटादि पात्रमें स्थित दीपककी भांति 'स्वदेहप्रमाण' है ।

"भोत्ता" यद्यपि (यह जीव) शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे रागादिविकल्पउपाधिरहित, अपने आत्मासे उत्पन्न सुखामृतका भोक्ता है तो भी अशुद्धनयसे उस प्रकारके सुखामृत भोजनका अभाव होनेसे शुभाशुभकर्मसे उत्पन्न सुखदुःखको भोगनेवाला होनेके कारण 'भोक्ता' है ।

"संसारत्थो" यद्यपि (यह जीव) शुद्धनिश्चयनयसे निःसंसार–नित्यानंद–एक–स्वभाववाला है तथापि अशुद्धनयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पांच प्रकारके संसारमें रहता है अतः 'संसारस्थ' है ।

"सिद्धो" यद्यपि (यह जीव) व्यवहारसे, निजात्माकी उपलब्धि जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे सिद्धत्वके प्रतिपक्षभूत कर्मोदयसे असिद्ध है तो भी निश्चयनयसे अनंतज्ञानादि अनंतगुणरूप स्वभाववाला होनेसे 'सिद्ध' है ।

"सो" वह—इस प्रकारके गुणोंवाला जीव है । "विस्ससोड्ढगई" यद्यपि (यह जीव) व्यवहारसे चार गति उत्पन्न करनेवाले कर्मोदयके वश ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् गतिरूप स्वभाववाला है तो भी निश्चयसे केवलज्ञानादि अनंतगुणोंकी प्राप्ति जिसका लक्षण है ऐसे मोक्षगमनके समय 'विस्रसा–स्वभावसे उर्ध्वगमन करनेवाला' है ।

शब्दार्थः कथितः, शुद्धाशुद्धनयद्वयविभागेन नयार्थोऽप्युक्तः। इदानीं मतार्थः कथ्यते। जीवसिद्धिश्चार्वाकं प्रति, ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं नैयायिकं प्रति, अमूर्तजीवस्थापनं भट्टचार्वाकद्वयं प्रति, कर्मकर्तृत्वस्थापनं सांख्यं प्रति, स्वदेहप्रमितिस्थापनं नैयायिक-मीमांसकसांख्यत्रयं प्रति, कर्मभोक्तृत्वव्याख्यानं बौद्धं प्रति, संसारस्थव्याख्यानं सदाशिवं प्रति, सिद्धत्वव्याख्यानं भट्टचार्वाकद्वयं प्रति, ऊर्ध्वगतिस्वभावकथनं माण्डलिक-ग्रन्थकारं प्रति, इति मतार्थो ज्ञातव्यः। आगमार्थः पुनः "अस्त्यात्मानादिबद्धः" इत्यादि प्रसिद्ध एव। शुद्धनयाश्रितं जीवस्वरूपमुपादेयम्, शेषं च हेयम्। इति हेयोपादेयरूपेण भावार्थोऽप्यत्रबोद्धव्यः। एवं शब्दनयमतागमभावार्थो यथासम्भवं व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यः। इति जीवादिनवाधिकारसूचनसूत्रगाथा ॥ २ ॥

यहां पदखंडनारूप शब्दार्थ कहा है तथा शुद्ध और अशुद्ध—दो नयोंके विभागसे नयार्थ भी कहा है। अब मतार्थ कहा जाता है :—

जीवकी सिद्धि चार्वाकके प्रति है (जीवका) ज्ञानदर्शन-उपयोगरूप लक्षण नैयायिकके प्रति है, जीवके अमूर्तपनेका स्थापन भट्ट और चार्वाक इन दोनोंके प्रति है, 'जीव कर्मका कर्ता है' यह स्थापन सांख्यके प्रति है; 'जीव स्वदेहप्रमाण है' यह स्थापन नैयायिक, मीमांसक और सांख्य—इन तीनोंके प्रति है; 'जीव कर्मका भोक्ता है' यह व्याख्यान बौद्धके प्रति है; जीवके संसारस्थपनेका व्याख्यान सदाशिवके प्रति है; जीवके सिद्धत्वका व्याख्यान भट्ट और चार्वाक—इन दोनोंके प्रति है; जीवके उर्ध्वगमन-स्वभावका व्याख्यान मांडलिक ग्रंथकारके प्रति है। इस प्रकार मतार्थ जानना चाहिए।

'आत्मा अनादिसे बंधा हुआ है' इत्यादि आगमार्थ तो प्रसिद्ध ही है।

'शुद्धनयाश्रित जीवस्वरूप उपादेय है और अन्य सभी हेय है'—इस प्रकार हेय-उपादेयरूपसे भावार्थ भी जानना चाहिए।

इस प्रकार शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ यथासंभव व्याख्यानकालमें सर्वत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार जीवादि नव अधिकारोंका सूचन करनेवाली यह सूत्रगाथा है ॥२॥

अतः परं द्वादशगाथाभिर्नवाधिकारान् विवृणोति । तत्रादौ जीवस्वरूपं कथयतिः—

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

त्रिकाले चतुःप्राणा इन्द्रियं बलं आयुः आनप्राणश्च ।
व्यवहारात् स जीवः निश्चयनयतस्तु चेतना यस्य ॥ ३ ॥

व्याख्या—"तिकाले चदुपाणा" कालत्रये चत्वारः प्राणा भवन्ति । ते के "इन्दियवलमाउआणपाणो य" अतीन्द्रियशुद्धचैतन्यप्राणात्प्रतिशत्रुपक्षभूतः क्षायोपशमिक इन्द्रियप्राणः, अनन्तवीर्यलक्षणवलप्राणादनन्तैकभागप्रमिता मनोवचनकायवलप्राणाः, अनाद्यनन्तशुद्धचैतन्यप्राणविपरीततद्विलक्षणाः सादिः सान्तश्चायुःप्राणः, उच्छ्वासपरावर्त्तोत्पन्नखेदरहितविशुद्धचित्प्राणाद्विपरीतसदृश आनपानप्राणः । "ववहारा सो जीवो"

अव, वारह गाथाओं द्वारा नव अधिकारोंका विवरण करते हैं ! उसमें प्रथम जीवका स्वरूप कहते हैं:—

गाथा–३

गाथार्थः—तीनों कालोंमें इन्द्रिय, वल, आयु और श्वासोच्छ्वास—इन चार प्राणोंको जो धारण करता है वह व्यवहारनयसे जीव है । निश्चयनयसे जिसको चेतना है वह जीव है ।

टीकाः—"तिकाले चदुपाणा" तीनों कालोंमें (जीवको) चार प्राण होते हैं। वे कौनसे ? "इंदियवलमाउआणपाणो य" अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यप्राणसे प्रतिपक्षभूत क्षायोपशमिक इन्द्रियप्राण है, अनंतवीर्यलक्षण बलप्राणसे अनंतवें भाग प्रमाण मनोवल, वचनवल और कायवलरूप प्राण हैं । अनादि–अनंत शुद्ध चैतन्यप्राणसे विपरीत–उससे विलक्षण सादि–सान्त (आदि और अंत सहित) आयुप्राण है । श्वास और उच्छ्वासके परावर्तसे उत्पन्न खेद रहित विशुद्ध चैतन्यप्राणसे विपरीत श्वासोच्छ्-

---

तीन कालमें जीवन जास, इन्द्रिय वल आयुष उच्छ्वास ।
च्यारि प्राण व्यवहारैं जीव, निश्चयनय चेतना सदीव ॥ ३ ॥

इत्थंभूतैश्चतुर्भिर्द्रव्यभावप्राणैर्यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा यो व्यवहारनयात्स जीवः; द्रव्येन्द्रियादिर्द्रव्यप्राणा अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण, भावेन्द्रियादिः क्षायोपशमिकभावप्राणाः पुनरशुद्धनिश्चयेन, सत्ताचैतन्यबोधादिः शुद्धभावप्राणाः निश्चयेनेति । "णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स" शुद्धनिश्चयनयतः सकाशादुपादेयभूता शुद्धचेतना यस्य स जीवः । एवं "वच्छरक्खभवसारिच्छ, सग्गणिरयपियराय । चुल्लयहंडिय पुण मडउ णव दिट्ठंता जाय ॥ १ ॥" इति दोहककथितनवदृष्टान्तैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिव्याख्यानेन गाथा गता । अथ अध्यात्म-

वासरूप प्राण हैं । "ववहारा सो जीवो" व्यवहारनयकी अपेक्षासे, इस प्रकारके चार द्रव्य और भावप्राणोंसे यथासंभव जो जीवित रहता है, जीवित रहेगा और पहले जीता था वह जीव है । (जीवको) द्रव्येन्द्रियादि द्रव्यप्राण अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे भावेन्द्रियादि क्षायोपशमिक भावप्राण अशुद्ध निश्चयनयसे और सत्ता, चैतन्य, बोध आदि शुद्धभावप्राण निश्चयनयसे हैं । "णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स" शुद्ध निश्चयनयसे, उपादेयभूत शुद्ध चेतना जिसके है वह जीव है ।

इस प्रकार "वच्छरक्खभवसारिच्छ सग्गणिरयपियराय । चुल्लयहंडिय पुण मडउ णव दिट्ठंता जाय ॥" [१. वत्स—जन्म लेते ही वछड़ा, पूर्वजन्मके संस्कारसे, बिना सिखाये अपने आप ही माताका स्तनपान करने लगता है । २. अक्षर—अक्षरोंका उच्चारण जीव जानकारीके साथ आवश्यकतानुसार करता है, जड़ पदार्थोंमें यह विशेषता नहीं होती है । ३. भव—यदि आत्मा एक स्थायी पदार्थ न हो तो जन्म-मरण किसका होता है ? ४. सादृश्य—आहार, परिग्रह, भय, मैथुन, हर्ष, विषाद आदि सब जीवोंमें एकसमान दिखाई देते हैं । ५-६. स्वर्ग-नरक—जीव यदि स्वतंत्र पदार्थ न हो तो स्वर्ग-नरकमें जाना किसके सिद्ध होगा ? ७. पितर—अनेक मनुष्य मरकर भूत आदि हो जाते हैं और अपने स्त्री, पुत्रादिको अपने पूर्वभवका हाल वतलाते हैं । ८. चूल्हा-हंडी—जीव यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पांच महाभूतोंसे उत्पन्न होता हो तो दाल बनाते समय चूल्हे पर रखी हुई हंडियामें भी पांचों महाभूतोंका समागम होनेके कारण वहां भी जीव उत्पन्न होना चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं होता है । ९. मृतक—मुर्देमें पांचों पदार्थ होते हैं परन्तु उसमें जीवके ज्ञानादि नहीं होते । इस प्रकार जीव एक पृथक् स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध होता है ।] —इस दोहेमें कहे हुए नौ दृष्टांतों द्वारा, चार्वाकमतानुयायी शिष्यको समझानेके लिये जीवकी सिद्धिके व्याख्यानसे यह गाथा समाप्त हुई ।

भाषया नयलक्षणं कथ्यते । सर्वे जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावाः इति शुद्धनिश्चयनय-लक्षणम् । रागादय एव जीवाः इत्यशुद्धनिश्चयनयलक्षणम् । गुणगुणिनोरभेदोऽपि भेदोपचार इति सद्भूतव्यवहारलक्षणम् । भेदेऽपि सत्यभेदोपचार इत्यसद्भूतव्यवहार-लक्षणं चेति । तथाहि—जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणा इत्यनुपचरितसंज्ञशुद्धसद्भूत-व्यवहारलक्षणम् । जीवस्य मतिज्ञानादयो विभावगुणा इत्युपचरितसंज्ञाशुद्धसद्भूतव्यव-हारलक्षणम् । 'मदीयो देहमित्यादि' संश्लेपसंबन्धसहितपदार्थः पुनरनुपचरितसंज्ञासद्-भूतव्यवहारलक्षणम् । यत्र तु संश्लेपसंबन्धो नास्ति तत्र 'मदीयः पुत्र इत्यादि' उपचरि ताभिधानासद्भूतव्यवहारलक्षणमिति नयचक्रमूलभूतं संक्षेपेण नयषट्कं ज्ञातव्य-मिति ॥ ३ ॥

अथ गाथात्रयपर्यन्तं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयं कथ्यते । तत्र प्रथमगाथायां मुख्यवृत्त्या दर्शनोपयोगव्याख्यानं करोति । यत्र मुख्यत्वमिति वदति तत्र यथा-सम्भवमन्यदपि विवक्षितं लभ्यत इति ज्ञातव्यम्—

अब, अध्यात्मभाषासे नयोंके लक्षण कहते हैं:—'सर्व जीव शुद्ध–बुद्ध–एक स्वभाववाले हैं' यह शुद्धनिश्चयनयका लक्षण है । 'रागादि ही जीव है' यह अशुद्ध-निश्चयनयका लक्षण है । गुण और गुणी अभेद होने पर भी भेदका उपचार करना यह सद्भूतव्यवहारका लक्षण है; और भेद होने पर भी अभेदका उपचार करना यह असद्भूत व्यवहारका लक्षण है । वह इस प्रकार—'जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं' यह अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहारका लक्षण है । 'जीवके मतिज्ञानादि विभाव-गुण हैं' यह उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहारका लक्षण है । संश्लेषसंबंधवाले पदार्थ 'शरीरादि मेरे हैं' यह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारका लक्षण है। जहां संश्लेषसंबंध नहीं है वहां 'पुत्रादि मेरे हैं' वह उपचरित असद्भूतव्यवहारका लक्षण है। इस प्रकार नयचक्रके मूलभूत छह नय संक्षेपमें जानना चाहिए ।। ३ ।।

अब, तीन गाथा तक ज्ञान और दर्शन इन दो उपयोगोंका कथन किया जाता है । वहां पहली गाथामें मुख्यरूपसे दर्शन उपयोगकी व्याख्या करते हैं । जहां अमुक विषयका 'मुख्यतासे' वर्णन करनेके लिये कहा हो वहां गौणरूपसे अन्य विषयका भी यथासंभव कथन आ जाता है, इस प्रकार जानना ।

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

उपयोगः द्विविकल्पः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा ।
चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—"उवओगो दुवियप्पो" उपयोगो द्विविकल्पः । "दंसणणाणं च" निर्विकल्पकं दर्शनं सविकल्पकं ज्ञानं च । पुनः "दंसणं चदुधा" दर्शनं चतुर्धा भवति; "चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं" चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनमथ अहो केवलदर्शनमिति विज्ञेयम् । तथाहि—आत्मा हि जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिसमस्तवस्तुसामान्यग्राहकसकलविमलकेवलदर्शनस्वभावस्तावत्, पश्चादनादिकर्मबन्धाधीनः सन् चक्षुर्दर्शनावरण-

---

गाथा–४

गाथार्थः—उपयोग दो प्रकारका है : दर्शन और ज्ञान । उसमें दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—इस प्रकार चार प्रकारका जानना ।

टीकाः—"उवओगो दुवियप्पो" उपयोग दो प्रकारका है : "दंसणणाणं च" दर्शन और ज्ञान । दर्शन निर्विकल्प है और ज्ञान सविकल्प है । "दंसणं चदुधा" दर्शनोपयोग चार प्रकारका है : "चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं" चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—ये चार प्रकार जानना । वह इस प्रकार—प्रथम तो आत्मा यथार्थतया तीन लोक, तीन कालवर्ती समस्त वस्तुओंके सामान्यको ग्रहण करनेवाला सकलविमल केवलदर्शनस्वभाववाला है; [1]पश्चात्

१–यहां 'तावत्' (प्रथम) और 'पश्चात्' (बादमें) इस प्रकार जो कहा है वह काल-अपेक्षासे नहीं है परन्तु भाव-अपेक्षासे है । उसका तात्पर्य इस प्रकार समझना—दोनों नयोंके स्वरूपका निर्णय करनेवालेको हेय-उपादेयका ज्ञान साथ-साथ होता है । अतः निश्चयनयका विषय सदा आश्रय करने योग्य होनेसे वह भाव-अपेक्षासे 'तावत्' (प्रथम) है, मुख्य है, उपादेय है और

दोय भेद उपयोग उदार, दर्शन ज्ञान धरै सुविचार ।
दर्शन भेद च्यारि है भला, चक्षु अचक्षु अवधि केवला ॥ ४ ॥

क्षयोपशमाद्बहिरङ्गद्रव्येन्द्रियालम्बनाच्च मूर्तं सत्तासामान्यं निर्विकल्पं संव्यवहारेण प्रत्यक्षमपि निश्चयेन परोक्षरूपेणैकदेशेन यत्पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनम् । तथैव स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमत्वात्स्वकीयस्वकीयबहिरङ्गद्रव्येन्द्रियालम्बनाच्च मूर्तं सत्तासामान्यं विकल्परहितं परोक्षरूपेणैकदेशेन यत्पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम् । तथैव च मनइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्सहकारिकारणभूताष्टदलपद्माकारद्रव्यमनोऽवलम्बनाच्च मूर्तामूर्तसमस्तवस्तुगतसत्तासामान्यं विकल्परहितं परोक्षरूपेण यत्पश्यति तन्मानसमचक्षुर्दर्शनम् । स एवात्मा

अनादि कर्मबंधके आधीन होकर, चक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमसे और बहिरंग द्रव्येन्द्रियके आलंबनसे मूर्त पदार्थके सत्तासामान्यको विकल्प रहित (—निराकाररूपसे) संव्यवहारसे प्रत्यक्षपने किन्तु निश्चयसे परोक्षरूपसे, जो एकदेश देखता है वह चक्षुदर्शन है । उसी प्रकार स्पर्शन—रसना—घ्राण—श्रोत्रेन्द्रियावरणका क्षयोपशम होनेसे अपनी-अपनी बहिरंग द्रव्येन्द्रियके आलंबनसे, मूर्त पदार्थके सत्तासामान्यको विकल्प रहित (निराकाररूपसे) जो परोक्षरूपसे एकदेश देखता है वह अचक्षुदर्शन है । उसीप्रकार मनइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे और सहकारीकारणरूप आठ पांखडीवाले कमलके आकाररूप द्रव्यमनके आलंबनसे, मूर्त और अमूर्त समस्त वस्तुओंके सत्तासामान्यको विकल्प रहित परोक्षरूपसे जो देखता है वह मानस-अचक्षुदर्शन है । वही आत्मा अवधिदर्शनावरणके क्षयोपशमसे मूर्त वस्तुके सत्तासामान्यको विकल्प

व्यवहारनयका विषय जानने योग्य होने पर भी उसके विषयका आश्रय छोड़ने योग्य होनेसे वह भाव-अपेक्षासे 'पश्चात्' (बादमें) है, गौण है, हेय है । (इस प्रकार निश्चयनयके विषयभूत त्रिकाल ध्रुव चैतन्यस्वभावी आत्माका आश्रय लेने पर कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और तत्पश्चात् जीव अप्रतिहत शुद्धभावसे परिणमित होने पर समय-समय संवर—निर्जरा वृद्धिगत होते जाते हैं और अन्तमें जीव सिद्धदशा प्राप्त करता है ।)

गाथा ५ की टीकामें तथा गाथा १३ की भूमिकामें भी इसी प्रकार तात्पर्य समझना । श्री समयसार गाथा ७ की टीकामें, श्री प्रवचनसार गाथा १६, ३४, ५५, १६२ और १६७ की टीकामें और श्री पंचास्तिकायसंग्रह गाथा २६, ५१, ५२, ११३ और १५४ की टीकामें श्री जयसेनाचार्यने जो 'तावत्' और 'पश्चात्' शब्द कहे हैं उनका अर्थ और तात्पर्य भी उपरोक्त प्रकार समझना ।

इस संबंधमें सोनगढ़से प्रसिद्ध द्रव्यसंग्रहकी गाथा १३ की टीकामें जो स्पष्टीकरण किया है उसे पढ़ना चाहिये ।

यदवधिदर्शनावरणक्षयोपशमान्मूर्त्तवस्तुगतसत्तासामान्यं निर्विकल्परूपेणैकदेशप्रत्यक्षेण यत्पश्यति तदवधिदर्शनम् । यत्पुनः सहजशुद्धसदानन्दैकरूपपरमात्मतत्त्वसंवित्तिप्राप्तिबलेन केवलदर्शनावरणक्षये सति मूर्त्तामूर्त्तसमस्तवस्तुगतसत्तासामान्यं विकल्परहितं सकलप्रत्यक्षरूपेणैकसमये पश्यति तदुपादेयभूतं क्षायिकं केवलदर्शनं ज्ञातव्यमिति ।। ४ ।।

अथाष्टविकल्पं ज्ञानोपयोगं प्रतिपादयति—

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जवकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ।। ५ ।।

ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि ।
मनःपर्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ।। ५ ।।

व्याख्या—"णाणं अट्ठवियप्पं" ज्ञानमष्टविकल्पं भवति । "मदिसुदिओही अणाणणाणाणि" अत्राष्टविकल्पमध्ये मतिश्रुतावधयो मिथ्यात्वोदयवशाद्विपरीताभिनिवेश-

---

रहित जो एकदेश-प्रत्यक्षरूपसे देखता है वह अवधिदर्शन है । तथा जो सहजशुद्ध है और सदा आनंद जिसका एक रूप है ऐसे परमात्मतत्त्वकी संवित्तिकी प्राप्तिके बलसे, केवलदर्शनावरणका क्षय होने पर, मूर्त–अमूर्त समस्त वस्तुके सत्तासामान्यको विकल्प रहित सकल-प्रत्यक्षरूपसे जो एक समयमें देखता है उसे उपादेयभूत, क्षायिक केवलदर्शन जानना ।। ४ ।।

अब आठ भेदवाले ज्ञानोपयोगका प्रतिपादन करते हैं ।

गाथा–५

गाथार्थः—कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—इस प्रकार आठ प्रकारका ज्ञान है । इसमें भी प्रत्यक्ष और परोक्षरूप भेद है ।

टीकाः—"णाणं अट्ठवियप्पं" ज्ञान आठ प्रकारका है । "मदिसुदिओही अणाणणाणाणि" इन आठ भेदोंमें मति, श्रुत और अवधिज्ञान—ये तीन मिथ्यात्वके उदयवश

ज्ञान-भेद मति श्रुत अवधिका, भले–बुरेतै है त्रैतिका ।
मनपर्यय केवल मिलि आठ, है परतक्ष परोक्ष सुपाठ ।। ५ ।।

रूपाण्यज्ञानानि भवन्ति; तान्येव शुद्धात्मादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन सम्यग्दृष्टिजीवस्य सम्यग्ज्ञानानि भवन्ति। "मणपज्जवकेवलमवि" मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमप्येव मष्टविधं ज्ञानं भवति। "पच्चक्खपरोक्खभेयं च" प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च। अवधिमनःपर्ययद्वयमेकदेशप्रत्यक्षं विभङ्गावधिरपि देशप्रत्यक्षं, केवलज्ञानं सकलप्रत्यक्षं; शेषचतुष्टयं परोक्षमिति।

इतो विस्तरः—आत्मा हि निश्चयनयेन सकलविमलाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमय-केवलज्ञानरूपस्तावत्। स च व्यवहारेणानादिकर्मबन्धप्रच्छादितः सन् मतिज्ञानावरणीय-क्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च बहिरङ्गपञ्चेन्द्रियमनोऽवलम्बनाच्च मूर्त्तामूर्त्तं वस्त्वेकदेशेन विकल्पाकारेण परोक्षरूपेण सांव्यवहारिकप्रत्यक्षरूपेण वा यज्जानाति तत्क्षायोपशमिकं मतिज्ञानम्। किञ्च छद्मस्थानां वीर्यान्तरायक्षयोपशमः केवलिनां तु

विपरीत अभिनिवेशरूप अज्ञान है और वे ही शुद्धात्मादि तत्त्वके विषयमें विपरीता-भिनिवेशरहितपनेके कारण सम्यग्दृष्टि जीवको सम्यग्ज्ञान है। "मणपज्जवकेवलमवि" मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान—ये दोनों मिलकर ज्ञानके आठ भेद हुए। "पच्चक्ख-परोक्खभेयं च" वे प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे भेद रूप हैं। अवधि और मनःपर्यय—ये दो (भेद) एकदेशप्रत्यक्ष हैं, विभंग-अवधिज्ञान भी देशप्रत्यक्ष है, केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है और शेष चार परोक्ष हैं।

अब उनका विस्तार कहा जाता है— [1]प्रथम तो आत्मा वास्तवमें निश्चय-नयसे सकलविमल, अखंड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय केवलज्ञानरूप है। वह व्यवहारसे अनादिकर्मबंधसे आच्छादित होता हुआ, मतिज्ञानावरणीयके क्षयोपशमसे और वीर्या-न्तरायके क्षयोपशमसे तथा बहिरंग पंचेन्द्रिय और मनके अवलंबनसे मूर्त और अमूर्त वस्तुओंको, एकदेश, विकल्पाकारसे, परोक्षरूपसे अथवा सांव्यवहारिक प्रत्यक्षरूपसे जो जानता है वह क्षायोपशमिक मतिज्ञान है। छद्मस्थोंको ज्ञान–चारित्रादिकी उत्पत्तिमें वीर्यान्तरायका क्षयोपशम और केवलियोंको सर्वथा क्षय सर्वत्र [2]सहकारी जानना।

१–गाथा ४ का फूटनोट यहां भी पढ़ना चाहिए।

२–कार्यकालमें साथ रहनेवाला–निमित्त–सहचर। श्री गोम्मटसार–जीवकांडकी गाथा ५६७ की बड़ी टीकामें धर्मास्तिकायको गमनमें 'सहकारी कारण' कहा गया है। वहां 'सहकारी कारण' का अर्थ इस प्रकार समझाया है—'स्वयमेव ही गमनादि क्रियारूप वर्तते हुए जो जीव-पुद्गल

निरवशेपक्षयो ज्ञानचारित्राद्युत्पत्तौ सहकारी सर्वत्र ज्ञातव्यः । संव्यवहारलक्षणं कथ्यते— समीचीनो व्यवहारः संव्यवहारः । प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणः संव्यवहारो भण्यते । संव्यवहारे भवं सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । यथा घटरूपमिदं मया दृष्टमित्यादि । तथैव श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमान्नोइन्द्रियावलम्बनाच्च प्रकाशोपाध्यायादिवहिरङ्गसहकारिकारणाच्च मूर्तामूर्तवस्तुलोकालोकव्याप्तिज्ञानरूपेण यदस्पष्टं जानाति तत्परोक्षं श्रुतज्ञानं भण्यते । किञ्च विशेषः—शब्दात्मकं श्रुतज्ञानं परोक्षमेव तावत्, स्वर्गापवर्गादिवहिर्विपयपरिच्छित्तिपरिज्ञानं विकल्परूपं तदपि परोक्षं, यत्पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्परूपोऽहमनन्तज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीपत् परोक्षम्; यच्च निश्चयभावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुखसुखसंवित्तिस्वरूपं स्वसंवित्त्याकारेण सविकल्पमपीन्द्रियमनोजनितरागादिविकल्पजालरहितत्वेन निर्विकल्पम् । अभेदनयेन तदेवात्मशब्दवाच्यं वीतरागसम्यक्-

---

अव संव्यवहारका लक्षण (स्वरूप) कहा जाता है । समीचीन व्यवहार वह संव्यवहार है । प्रवृत्तिनिवृत्तिस्वरूप संव्यवहार कहलाता है । जो संव्यवहारमें हो वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—जैसे कि 'घटका रूप मैंने देखा' आदि ।

श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे, मनके अवलंवनसे तथा प्रकाश, उपाध्यायादि वहिरंग सहकारी कारणोंसे मूर्त-अमूर्त वस्तुको लोक-अलोकको व्याप्ति ज्ञानरूपसे जो अस्पष्ट जानता है वह परोक्ष श्रुतज्ञान कहलाता है ।

तथा विशेप—जो शब्दात्मक श्रुतज्ञान है वह तो परोक्ष ही है । (परन्तु) स्वर्ग, मोक्षादि वाह्य वस्तुओंका वोध करानेवाला विकल्परूप जो ज्ञान है वह भी परोक्ष है और जो अभ्यंतरमें 'सुख-दुःखके विकल्परूप मैं हूँ' 'अनंतज्ञानादिरूप मैं हूँ' —ऐसा ज्ञान वह इपत् (किंचित्) परोक्ष है । और जो निश्चय-भावश्रुतज्ञान है वह शुद्धात्माभिमुख होनेसे सुखके संवेदनस्वरूप है; वह स्वसंवेदनके आकाररूप होनेसे सविकल्प होने पर भी, इन्द्रिय-मनजनित रागादि विकल्पजालसे रहित होनेसे निर्विकल्प है; अभेदनयसे जो 'आत्मा' शब्दसे कहा जाता है ऐसा वही (निश्चय-

---

उनको धर्मास्तिकाय सहकारी कारण है । उसमें उसका कारणपना इतना ही है कि जहां धर्मादिक द्रव्य होते हैं वहां जीव-पुद्गल गमनादि क्रियारूप वर्तते हैं ।" जहां निमित्त हो वहां उपादान अपना कार्य अपनेसे ही करता है वहां निमित्तको 'सहकारी' कहा जाता है । 'सहकारी' का ऐसा अर्थ समझना ।

चारित्राविनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि प्रत्यक्षमभिधीयते। अत्राह शिष्यः—आद्ये परोक्षमिति तत्त्वार्थसूत्रे मतिश्रुतद्वयं परोक्षं भणितं तिष्ठति, कथं प्रत्यक्षं भवतीति ? परिहारमाह—तदुत्सर्गव्याख्यानम्, इदं पुनरपवादव्याख्यानम्। यदि तदुत्सर्गव्याख्यानं न भवति तर्हि मतिज्ञानं कथं तत्त्वार्थे परोक्षं भणितं तिष्ठति। तर्कशास्त्रे सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं कथं जातम्। यथा अपवादव्याख्यानेन मतिज्ञानं परोक्षमपि प्रत्यक्षज्ञानम्, तथा स्वात्माभिमुखं भावश्रुतज्ञानमपि परोक्षं सत्प्रत्यक्षं भण्यते। यदि पुनरेकान्तेन परोक्षं भवति तर्हि सुखदुःखादिसंवेदनमपि परोक्षं प्राप्नोति, न च तथा। तथैव च स एवात्मा, अवधिज्ञानावरणीयक्षयोपशमान्मूर्त्तं वस्तु यदेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्पं जानाति तदवधिज्ञानम्। यत्पुनर्मनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमाद्वीर्यान्तरायक्षयोपशमाच्च स्वकीयमनोऽवलम्बनेन परकीयमनोगतं मूर्त्तमर्थमेकदेशप्रत्यक्षेण सविकल्पं जानाति तदीहामतिज्ञानपूर्वकं मनःपर्ययज्ञानम्। तथैव

भावश्रुतज्ञान)–जो वीतराग सम्यक् चारित्रके साथ अविनाभावी है वह—केवलज्ञानकी अपेक्षासे परोक्ष होने पर भी, संसारी जीवोंको क्षायिकज्ञानका अभाव होनेसे क्षायोपशमिक होने पर भी, प्रत्यक्ष कहलाता है।

यहां शिष्य पूछता है 'आद्ये परोक्षम्।' ऐसा तत्त्वार्थसूत्रमें मति–श्रुत इन दो ज्ञानोंको परोक्ष कहा है, तो फिर (श्रुतज्ञान) प्रत्यक्ष किस प्रकार है ? उसका निराकरण किया जाता है : वह उत्सर्गका व्याख्यान है और यहां जो कथन है वह अपवादका व्याख्यान है। यदि वह उत्सर्गकथन न होता तो, तत्त्वार्थसूत्रमें मतिज्ञानको परोक्ष किस प्रकार कहा है ? और तर्कशास्त्रमें वही (मतिज्ञान) सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष किस प्रकार हो गया ? अतः (ऐसा समझना कि) जिस प्रकार अपवादव्याख्यानसे, मतिज्ञानको परोक्ष होने पर भी प्रत्यक्षज्ञान कहा है उसी प्रकार स्व-आत्माभिमुख भावश्रुतज्ञानको भी परोक्ष होने पर भी प्रत्यक्ष कहा है। तथा यदि वह एकान्तिक परोक्ष हो तो सुख दुःखादिका संवेदन भी परोक्ष हो जाता है; परंतु ऐसा तो है नहीं।

वही आत्मा अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे मूर्त वस्तुको विकल्पसहित (साकाररूपसे) जो एकदेश प्रत्यक्ष जानता है वह अवधिज्ञान है।

जो मनःपर्ययज्ञानावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे अपने मनके अवलंबन द्वारा अन्यके मनमें रहे हुए मूर्त पदार्थको विकल्पसहित (साकाररूपसे) एकदेशप्रत्यक्ष जानता है वह ईहामतिज्ञानपूर्वक मनःपर्ययज्ञान है।

निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणैकाग्रध्यानेन केवलज्ञानावरणादिघातिचतुष्टयक्षये सति यत्समुत्पद्यते तदेकसमये समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावग्राहकं सर्वप्रकारोपादेयभूतं केवलज्ञानमिति ॥ ५ ॥

अथ ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयव्याख्यानस्य नयविभागेनोपसंहारः कथ्यते—

अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम्।
व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥ ६ ॥

निज शुद्धात्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र जिसका लक्षण है ऐसे एकाग्रध्यान द्वारा केवलज्ञानावरणादि चार घातिकर्मोंका नाश होने पर जो उत्पन्न होता है वह, एक समयमें समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको ग्रहण करनेवाला, सर्व प्रकारसे *उपादेयभूत केवलज्ञान है ॥ ५ ॥

अब, ज्ञान–दर्शन दोनों उपयोगोंके व्याख्यानका नयविभागसे उपसंहार करते हैं:—

गाथा–६

गाथार्थः—व्यवहारनयसे आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन–यह सामान्यरूपसे जीवका लक्षण कहा है। शुद्धनयकी अपेक्षासे शुद्ध ज्ञान–दर्शनको जीवका लक्षण कहा है।

---

* उपादेय=ग्राह्य; ग्रहण करने योग्य। उपादेयपना मुख्यरूपसे दो प्रकारसे कहा जाता है: (१) जब निज ध्रुव शुद्धात्मा–ज्ञायकस्वभाव आत्मा–उपादेय कहा जाता है तब वह 'आश्रय करने योग्य' रूपसे उपादेय समझना। (२) जब केवलज्ञान, सिद्धत्व आदि पर्यायें उपादेय कही जाती हैं तब वे पर्यायें 'प्रगट करने योग्य' रूपसे उपादेय समझना। [यहां यह ध्यानमें रखना चाहिए कि सिद्धत्वादि पर्याय 'प्रगट करने' का उपाय निज ध्रुव शुद्धात्माका 'आश्रय लेना' ही है।]

यह सामान्य जीवका चिह्न, नय व्यवहार बताया गिह्न।
निश्चय शुद्ध ज्ञान-दर्शना, लिंग यथारथ जिनवर भनां ॥ ६ ॥

व्याख्या—"अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं" अष्टविधं ज्ञानं चतुर्विधं दर्शनं सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् । सामान्यमिति कोऽर्थः ? संसारिजीवमुक्तजीवविवक्षा नास्ति, अथवा शुद्धाशुद्धज्ञानदर्शनविवक्षा नास्ति । तदपि कथमितिचेद् ? विवक्षाया अभावः सामान्यलक्षणमिति वचनात् । कस्मात् सामान्यम् जीवलक्षणं भणितम् ? "ववहारा" व्यवहारात् व्यवहारनयात् । अत्र केवलज्ञानदर्शनं प्रति शुद्धसद्भूतशब्दवाच्योऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारः, छद्मस्थज्ञानदर्शनापरिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्धसद्भूतशब्दवाच्य उपचरितसद्भूतव्यवहारः, कुमतिकुश्रुतविभङ्गत्रये पुनरुपचरितासद्भूतव्यवहारः । "सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं" शुद्धनिश्चयनयात्पुनः शुद्धमखण्डं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवलक्षणमिति । किञ्च ज्ञानदर्शनोपयोगविवक्षायामुपयोगशब्देन विवक्षितार्थपरिच्छित्तिलक्षणोऽर्थग्रहणव्यापारो गृह्यते । शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयविवक्षायां पुनरुपयोगशब्देन शुभाशुभशुद्धभावनैकरूपमनुष्ठानं ज्ञातव्यमिति । अत्र सहजशुद्धनिर्वि-

टीकाः—"अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं" आठ प्रकारके ज्ञान और चार प्रकारके दर्शनको सामान्यरूपसे जीवका लक्षण कहा है । यहां 'सामान्य' इस कथनका क्या अर्थ है ? यह अर्थ है कि इस लक्षणमें संसारी जीव अथवा मुक्त जीवकी विवक्षा नहीं है अथवा शुद्ध या अशुद्ध ज्ञान-दर्शनकी विवक्षा नहीं है । ऐसा अर्थ किस प्रकार है ? "विवक्षाका अभाव–यह सामान्यका लक्षण है"—ऐसा वचन होनेसे ।

किस अपेक्षासे जीवका सामान्य लक्षण कहा है ? "ववहारा" व्यवहारसे–व्यवहारनयकी अपेक्षासे कहा है । यहां केवलज्ञान–दर्शनके प्रति 'शुद्ध–सद्भूत' शब्दसे वाच्य 'अनुपचरित सद्भूत्' व्यवहार है, छद्मस्थके अपूर्ण ज्ञान–दर्शनकी अपेक्षासे 'अशुद्ध सद्भूत' शब्दसे वाच्य 'उपचरित सद्भूत' व्यवहार है और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि–इन तीन ज्ञानोंमें 'उपचरित असद्भूत' व्यवहार है ।

"सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं" शुद्धनिश्चयनयसे शुद्ध अखंड केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दोनों जीवका लक्षण है ।

यहां ज्ञान–दर्शन उपयोगकी विवक्षामें 'उपयोग' शब्दका अर्थ विवक्षित पदार्थको जानना–देखना जिसका लक्षण है ऐसा 'पदार्थग्रहणरूप व्यापार' ऐसा होता है । परन्तु शुभ, अशुभ और शुद्ध–इन तीन उपयोगोंकी विवक्षामें 'उपयोग' शब्दका अर्थ शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध भावना जिसका एक रूप है ऐसा 'अनुष्ठान' समझना ।

कारपरमानन्दैकलक्षणस्य साक्षादुपादेयभूतस्याक्षयसुखस्योपादानकारणत्वात् केवलज्ञान-दर्शनद्वयमुपादेयमिति । एवं नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदैकान्तनिराकरणार्थमुपयोग-व्याख्यानेन गाथात्रयं गतम् ॥ ६ ॥

अथामूर्तातीन्द्रियनिजात्मद्रव्यसंवित्तिरहितेन मूर्तपञ्चेन्द्रियविषयासक्तेन च यदुपार्जितं मूर्तं कर्म तदुदयेन व्यवहारेण मूर्तोऽपि निश्चयेनामूर्तो जीव इत्युपदिशति—

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

वर्णाः रसाः पंच गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो सन्ति अमूर्त्तिः ततः व्यवहारात् मूर्त्तिः बन्धतः ॥ ७ ॥

यहां सहजशुद्ध निर्विकार परमानंद जिसका एक लक्षण (स्वरूप) है ऐसा जो साक्षात् उपादेयभूत अक्षय सुख उसका उपादानकारण होनेसे केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दोनों [1]उपादेय हैं ।

इस प्रकार नैयायिकके प्रति गुण–गुणीभेदके एकान्तका निराकरण करनेके लिये उपयोगके व्याख्यान द्वारा तीन गाथायें पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

अब, अमूर्त अतीन्द्रिय निज आत्मद्रव्यके ज्ञानसे रहित होनेसे और मूर्त पंचेन्द्रियके विषयमें आसक्त होनेसे जो मूर्तकर्म उपार्जित किया है उसके उदयसे व्यवहारसे जीव मूर्त है तो भी निश्चयनयसे जीव अमूर्त है ऐसा उपदेश करते हैं :—

१–श्री नियमसार कलश १७ के अर्थमें इस प्रकार लिखा है:— "जिनेन्द्रकथित समस्त दर्शन-ज्ञानके भेदोंको जानकर, जो पुरुष परभावोंका परिहार करके निज स्वरूपमें स्थित रहता हुआ, शीघ्र चैतन्य चमत्कारमात्र तत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है वह निर्वाण-सुखको प्राप्त होता है ।" इससे ऐसा समझना कि—आश्रय करने योग्य तो सदा निज चैतन्य-चमत्कारमात्र त्रिकाली ध्रुवतत्त्व एक ही उपादेय है ।

वर्ण पांच रस पांच जु गंध, दोय फास अठ नांही खंध ।
निश्चय मूरति-विन जिय सार, बंधसहित मूरत विवहार ॥ ७ ॥

व्याख्या—"वण्ण रस पञ्च गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे णो संति" श्वेतपीतनीलारुणकृष्णसंज्ञाः पञ्च वर्णाः, तिक्तकटुकषायाम्लमधुरसंज्ञाः पञ्च रसाः, सुगन्धदुर्गन्धसंज्ञौ द्वौ गन्धौ, शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुकर्कशगुरुलघुसंज्ञा अष्टौ स्पर्शाः, "णिच्छया" शुद्धनिश्चयनयात् शुद्धबुद्धैकस्वभावे शुद्धजीवे न सन्ति। "अमुत्ति तदो" ततः कारणादमूर्तः। यद्यमूर्तस्तर्हि तस्य कथं कर्मबन्ध इति चेत् ? "ववहारा मुत्ति" अनुपचरितासद्भूतव्यवहारान्मूर्तो यतः। तदपि कस्मात् ? "बंधादो" अनन्तज्ञानाद्युपलम्भलक्षणमोक्षविलक्षणादनादिकर्मबन्धनादिति। तथा चोक्तम्—कथंचिन्मूर्तामूर्तजीवलक्षणम्—"बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो हवदि तस्स भिण्णत्तं। तम्हा अमुत्तिभावो णेगंतो होदि जीवस्स ॥ १ ॥" अयमत्रार्थः—यस्यैवामूर्तस्यात्मनः प्राप्त्यभावादनादिसंसारे भ्रमितोऽयं जीवः स एवामूर्तो मूर्तपञ्चेन्द्रियविषयत्यागेन निरंतरं ध्यातव्यः।

गाथा–७

गाथार्थः—निश्चयसे जीवमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं हैं अतः जीव अमूर्तिक है; व्यवहारनयकी अपेक्षासे कर्मबंध होनेसे जीव मूर्तिक है।

टीकाः—"वण्ण रस पञ्च गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे णो संति" श्वेत, पीत, नील, लाल और कृष्ण–ये पांच रङ्ग; चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मधुर–ये पांच रस; सुगंध और दुर्गंध–ये दो गंध; शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, कोमल, कठोर, हलका और भारी–ये आठ स्पर्श; "णिच्छया" शुद्ध निश्चयनयसे शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाववाले शुद्ध जीवमें नहीं हैं। "अमुत्ति तदो" इस कारण यह जीव अमूर्त है। यदि जीव अमूर्तिक है, तो उसे कर्मबंध किस प्रकार होता है ? "ववहारा मुत्ति" क्योंकि जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे मूर्त है, अतः (कर्मबंध होता है)। जीव मूर्त किस कारणसे है ? "बंधादो" अनंत ज्ञानादिकी उपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसे मोक्षसे विलक्षण अनादि कर्मबंधनके कारण जीव मूर्त है। तथा अन्यत्र जीवका लक्षण कथंचित् मूर्त और कथंचित् अमूर्त कहा है; वह इस प्रकार—"कर्म-बंध प्रति जीवकी एकता है और लक्षणसे उसकी भिन्नता है अतः एकांतसे जीवको [1]अमूर्तिकपना नहीं है।"

तात्पर्य यह है कि जिस अमूर्त आत्माकी प्राप्तिके विना अनादि संसारमें इस जीवने भ्रमण किया है उसी अमूर्तिक आत्माका, मूर्त पंचेन्द्रियके विषयोंके त्याग द्वारा

१–श्री सर्वार्थसिद्धि २/७ टीका।

इति भट्टचार्वाकमतं प्रत्यमूर्तजीवस्थापनमुख्यत्वेन सूत्रं गतम् ॥ ७ ॥

अथ निष्क्रियामूर्तटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन कर्मादिकर्तृत्वरहितोऽपि जीवो व्यवहारादिनयविभागेन कर्ता भवतीति कथयति—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—अत्र सूत्रे भिन्नप्रक्रमरूपव्यवहितसम्बन्धेन मध्यपदं गृहीत्वा व्याख्यानं क्रियते । "आदा" आत्मा "पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु" पुद्गलकर्मादीनां कर्ता व्यवहारतस्तु पुनः, तथाहि—मनोवचनकायव्यापारक्रियारहितनिज-

---

निरन्तर ध्यान [1]करना चाहिये । इस प्रकार भट्ट और चार्वाक मतके प्रति अमूर्त जीवकी स्थापनाकी मुख्यतासे सूत्र कहा ॥ ७ ॥

अब निष्क्रिय, अमूर्त, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभावसे जीव यद्यपि कर्मादिके कर्तृत्वसे रहित है तो भी व्यवहारादि नय-विभागसे कर्ता होता है इस प्रकार कहते हैं :—

गाथा–८

गाथार्थः—आत्मा व्यवहारनयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है, निश्चयनयसे चेतनकर्मोंका कर्ता है और शुद्धनयसे शुद्धभावोंका कर्ता है ।

टीकाः—इस सूत्रमें भिन्न प्रक्रमरूप व्यवहित संबंधसे मध्यमपद लेकर व्याख्यान किया जाता है । "आदा" आत्मा "पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु" व्यवहार-नयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है । जैसे कि—मन–वचन–काय व्यापार क्रिया रहित

१–पुद्गलकर्म मेरेसे अत्यंत भिन्न है, वस्तुतः वह मुझे लाभ–हानि नहीं कर सकता है ऐसा निर्णय करके, अमूर्तिक निज त्रिकाली ध्रुवस्वभावका आश्रय करना चाहिए । इसी प्रकार करनेसे ही धर्म प्रगट होता है, वृद्धिको प्राप्त होता है और पूर्ण होता है; और पूर्ण होने पर पुद्गल कर्मो और शरीरका आत्यंतिक वियोग होने पर जीव सिद्धपदको प्राप्त करता है ।

पुद्गल कर्म करै व्यवहार, कर्ता यातैं कहे करार ।
निश्चय निज रागादिक करै, शुद्ध दृष्टि शुद्ध भावहि धरै ॥ ८ ॥

शुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन्ननुपचरितासद्भूतव्यवहारेण ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणामादि-शब्देनौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरत्रयाहारादिषट्पर्याप्तियोग्यपुद्गलपिण्डरूपनोकर्मणां तथैवोपचरितासद्भूतव्यवहारेण बहिर्विषयघटपटादीनां च कर्ता भवति । "णिच्छयदो चेदणकम्माणादा" निश्चयनयतश्चेतनकर्मणां; तद्यथा–रागादिविकल्पोपाधिरहितनिष्क्रिय-परमचैतन्यभावनारहितेन यदुपार्जितं रागाद्युत्पादकं कर्म तदुदये सति निष्क्रियनिर्मल-स्वसंवित्तिमलभमानो भावकर्मशब्दवाच्यरागादिविकल्परूपचेतनकर्मणामशुद्धनिश्चयेन कर्त्ता भवति । अशुद्धनिश्चयस्यार्थः कथ्यते—कर्मोपाधिसमुत्पन्नत्वादशुद्धः, तत्काले तप्तायःपिण्डवत्तन्मयत्वाच्च निश्चयः, इत्युभयमेलापकेनाशुद्धनिश्चयो भण्यते । "सुद्धणया सुद्धभावाणं" शुभाशुभयोगत्रयव्यापाररहितेन शुद्धबुद्धैकस्वभावेन यदा परिणमति तदानन्तज्ञानसुखादिशुद्धभावानां छद्मस्थावस्थायां भावनारूपेण विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्ता, मुक्तावस्थायां तु शुद्धनयेनेति । किन्तु शुद्धाशुद्धभावानां परिणममानानाम् एव

निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे शून्य होकर, अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे ज्ञाना-वरणादि द्रव्यकर्मोका तथा आदि शब्दसे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक–इन तीन शरीरोंका, आहारादि छह पर्याप्तियोग्य पुद्गलपिंडरूप नोकर्मोका और उप-चरित असद्भूत व्यवहारसे घटपटादि बहिर्विषयोंका भी कर्ता (यह जीव) होता है।

"णिच्छयदो चेदणकम्माणादा" निश्चयनयकी अपेक्षासे आत्मा चेतनकर्मोका कर्ता है। वह इस प्रकार—रागादि विकल्परूप उपाधिरहित, निष्क्रिय परम चैतन्यकी भावनासे रहित होनेसे जीवने रागादिको उत्पन्न करनेवाला जो कर्म उपार्जित किया है, उसका उदय होने पर, निष्क्रिय, निर्मल स्वसंवित्तिको नहीं प्राप्त करता हुआ जीव, 'भावकर्म' शब्दसे वाच्य रागादि विकल्परूप चेतनकर्मोका अशुद्ध निश्चयनयसे कर्ता होता है। अशुद्ध निश्चयनयका अर्थ कहा जाता है:—कर्मोपाधिसे उत्पन्न हुआ होनेसे अशुद्ध कहलाता है और उस समय तपे हुए लोहखंडके गोलेके समान तन्मय होनेसे निश्चय कहलाता है। इस प्रकार अशुद्ध और निश्चय इन दोनोंका मिलाप करके अशुद्ध निश्चय कहा जाता है। "सुद्धणया सुद्धभावाणं" जब जीव, शुभ–अशुभ-रूप तीन योग (मन, वचन, काया)के व्यापारसे रहित, शुद्ध-बुद्ध ऐसे एकस्वभाव-रूपसे परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान–सुखादि शुद्धभावोंका छद्मस्थ अवस्थामें भावनारूपसे, विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनयसे कर्ता है और मुक्त अवस्थामें शुद्ध-नयसे अनंत ज्ञान–सुखादि शुद्धभावोंका कर्ता है।

कर्तृत्वं ज्ञातव्यम्, न च हस्तादिव्यापाररूपाणामिति । यतो हि नित्यनिरञ्जननिष्क्रिय-निजात्मस्वरूपभावनारहितस्य कर्मादिकर्तृत्वं व्याख्यातम्, ततस्तत्रैव निजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्या । एवं सांख्यमतं प्रत्येकान्ताकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन गाथा गता ॥ ८॥

अथ यद्यपि शुद्धनयेन निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतस्य भोक्ता तथाप्य-शुद्धनयेन सांसारिकसुखदुःखस्यापि भोक्तात्मा भवतीत्याख्याति—

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते ।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

परंतु परिणमित होते हुए शुद्ध–अशुद्ध भावोंका ही कर्तापना जीवमें जानना, [1]हस्तादिके व्यापाररूप (पुद्गल–परिणामों) का नहीं ।

नित्य–निरंजन–निष्क्रिय निजात्मस्वरूपकी भावना रहित जीवको कर्मादिका कर्तृत्व कहा है, अतः उस निज शुद्धात्मामें ही भावना करना ।

इस प्रकार सांख्यमतके प्रति एकांत अकर्तृत्वका (जीवके एकांतसे अकर्ता होनेका) निराकरण करनेकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

अब, यद्यपि आत्मा शुद्धनयसे निर्विकार परम आह्लाद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतका भोक्ता है तो भी अशुद्धनयसे सांसारिक सुख–दुःखका भी भोक्ता होता है इस प्रकार कहते हैं:—

१–श्री समयसारमें भी जीव पुद्गलादि अथवा अन्य जीवोंकी पर्यायोंका कर्ता नहीं है, ऐसा कर्ता-कर्म–अधिकार तथा सर्वविशुद्धज्ञान–अधिकारमें कहा है । शरीरकी, परपदार्थोंकी, वचनकी, खाने-पीनेकी इत्यादि क्रियाओंमें अनादि अज्ञानसे जीवकी जो कर्तृत्व बुद्धि है, वह अपने त्रिकाल आत्मस्वरूपके लक्षसे शुद्धरूपसे परिणमित होनेसे ही टूटती है अतः 'जीव परपदार्थकी कोई क्रिया वास्तवमें एक समय भी नहीं कर सकता है' ऐसा निर्णय करना—यही इस गाथाका तात्पर्य है ।

सुख–दुःखमय फल पुद्गलकर्म, भोगै नय व्यवहार सुमर्म ।
निश्चयनय निज चेतनभाव, जीव भोगवै सदा कहाव ॥ ९ ॥

व्याख्या—"ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि" व्यवहारात् सुख-दुःखरूपं पुद्गलकर्मफलं प्रभुंक्ते । स कः कर्ता ? "आदा" आत्मा । "णिच्छयणयदो चेदणभावं आदस्स" निश्चयनयतश्चेतनभावं भुंक्ते । "खु" स्फुटम् । कस्य सम्बन्धिन-मात्मनः स्वस्येति । तद्यथा—आत्मा हि निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुद्भूतपारमार्थिकसुख-सुधारसभोजनमलभमान उपचरितासद्भूतव्यवहारेणेष्टानिष्टपञ्चेन्द्रियविषयजनितसुखदुःखं भुंक्ते, तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेणाभ्यन्तरे सुखदुःखजनकं द्रव्यकर्म्मरूपं सातासातोदयं भुंक्ते, स एवाशुद्धनिश्चयनयेन हर्षविषादरूपं सुखदुःखं च भुंक्ते । शुद्धनिश्चयनयेन तु परमात्मस्वभावसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानोत्पन्नसदानन्दैकलक्षणं सुखामृतं भुंक्त इति । अत्र यस्यैव स्वाभाविकसुखामृतस्य भोजनाभावादिन्द्रियसुखं भुञ्जानः सन् संसारे

गाथा–९

गाथार्थः—व्यवहारनयसे आत्मा सुख–दुःखरूप पुद्गलकर्मके फलको भोगता है और निश्चयनयसे अपने चेतनभावको भोगता है ।

टीकाः—"ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि" व्यवहारनयकी अपेक्षासे सुख–दुःखरूप पुद्गलकर्मके फलोंको भोगता है । उन कर्मफलोंका भोक्ता कौन है ? "आदा" आत्मा । "णिच्छयणयदो चेदणभावं आदस्स" निश्चयनयकी अपेक्षासे चेतन-भावका भोक्ता है । "खु" प्रगटरूपसे । किसके चेतनभावका ? आत्माके अपने चेतनभावका । वह इस प्रकार—आत्मा ही निज शुद्धात्म संवित्तिसे उत्पन्न पार-मार्थिक सुख-सुधारसके भोजनको नहीं प्राप्त करता हुआ, उपचरित असद्भूत व्यव-हारनयसे इष्ट–अनिष्ट पंचेन्द्रिय विषयजनित सुख–दुःखको भोगता है, उसी प्रकार अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे अन्तरंगमें सुख–दुःखजनक द्रव्यकर्मरूप साता और असाताके उदयको भोगता है और वही अशुद्धनिश्चयनयसे हर्ष–विषादरूप सुख–दुःखको भोगता है; शुद्धनिश्चयनयसे तो परमात्मस्वभावके सम्यक् श्रद्धान–ज्ञान–आचरणसे उत्पन्न, सदा आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतको भोगता है ।

यहां, जिस स्वाभाविक सुखामृतके भोजनके अभावसे आत्मा इन्द्रियसुख भोगता हुआ संसारमें [1]परिभ्रमण करता है वही अतीन्द्रिय सुख (–स्वाभाविक सुखामृत)

१–संसारमें परिभ्रमण करनेवाले प्रथम गुणस्थानवारक सर्व मिथ्यादृष्टि हैं । चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्ध तकके सर्व जीव उनकी भूमिकाकी शुद्धि अनुसार आत्मिक अतीन्द्रिय–सुखको भोगते हैं ऐसा इस गाथाका तात्पर्य है ।

परिभ्रमति तदेवातीन्द्रियसुखं सर्वप्रकारेणोपादेयमित्यभिप्रायः। एवं कर्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतनिषेधार्थं भोक्तृत्वव्याख्यानरूपेण सूत्रं गतम् ॥ ९ ॥

अथ निश्चयेन लोकप्रमितासंख्येयप्रदेशमात्रोऽपि व्यवहारेण देहमात्रो जीव इत्यावेदयति—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥१०॥

सर्व प्रकारसे उपादेय है ऐसा [1]अभिप्राय है ।

इस प्रकार, 'कर्ता, कर्मफलको नहीं भोगता है' इस बौद्धमतका निषेध करनेके लिये 'भोक्तृत्वके' व्याख्यानरूपसे सूत्र पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अब निश्चयनयसे लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशमात्र होने पर भी व्यवहार-नयसे जीव अपने शरीरप्रमाण है ऐसा बतलाते हैं :—

१—पंडित हीरालालजी रचित और मथुरा संघसे प्रकाशित द्रव्यसंग्रहकी टीका पृष्ठ २३ में गाथा ८—९ के संबंधमें निम्न प्रकार लिखा है :—

"जीवके कर्तृत्व और भोक्तृत्वका विवेचन करनेका ग्रन्थकारका ऐसा अभिप्राय है कि जीव यथार्थ वस्तुस्वरूपको जानकर, परकी और विकारकी कर्तृत्व और भोक्तृत्वबुद्धिको छोड़ दे और अपनी सहज निर्विकार चिदानंदस्वरूप शुद्धपर्यायका कर्ता—भोक्ता होनेका सतत प्रयत्न करे।"

जीव परवस्तुका कुछ भी नहीं कर सकता है और उसे भोग भी नहीं सकता है। असद्भूत व्यवहारनयसे साता—असाताके उदयको तथा इष्ट—अनिष्ट इन्द्रिय—विषयोंको जीव भोगता है, ऐसा कहा जाता है।

[असद्भूत=झूठा]

अणुगुरुदेहमान व्यवहार, सकुचै फैले जिय निरधार ।
समुद्घात—बिन कहिये एम, निश्चय देश असंख्य जु नेम ॥१०॥

व्याख्या—"अणुगुरुदेहपमाणो" निश्चयेन स्वदेहाद्भिन्नस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुण-राशेरभिन्नस्य निजशुद्धात्मस्वरूपस्योपलब्धेरभावाच्चथैव देहममत्वमूलभूताहारभयमैथुन-परिग्रहसंज्ञाप्रभृतिसमस्तरागादिविभावानामासक्तिसद्भावाच्च यदुपार्जितं शरीरनामकर्म तदुदये सति अणुगुरुदेहप्रमाणो भवति। स कः कर्ता? "चेदा" चेतयिता जीवः। कस्मात्? "उवसंहारप्पसप्पदो" उपसंहारप्रसर्पतः। शरीरनामकर्मजनितविस्तारोपसंहार-धर्माभ्यामित्यर्थः। कोऽत्र दृष्टान्तः? यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं सर्वं प्रकाशयति लघुभाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति। पुनरपि कस्मात्? 'असमुहदो' असमुद्घातात्। वेदनाकषायविक्रियामारणान्तिकतैजसाहारककेवलिसंज्ञसप्त-समुद्घातवर्जनात्। तथा चोक्तं सप्तसमुद्घातलक्षणम्—"वेयणकसायवेउव्वियो मारणंतिओ

गाथा–१०

गाथार्थः—समुद्घातके अतिरिक्त, यह जीव व्यवहारनयकी अपेक्षासे संकोच–विस्तारके कारण अपने छोटे अथवा बड़े शरीरप्रमाण रहता है और निश्चयनयकी अपेक्षासे असंख्यात प्रदेशी है।

टीकाः—"अणुगुरुदेहपमाणो" निश्चयनयसे अपने देहसे भिन्न और केवल-ज्ञानादि अनंत गुणसमूहसे [1]अभिन्न ऐसे निज शुद्धात्मस्वरूपकी उपलब्धिके अभावसे तथा देहकी ममता जिसका मूल है ऐसी आहार–भय–मैथुन–परिग्रहरूप संज्ञा आदि समस्त रागादिविभावोंमें आसक्तिका सद्भाव होनेसे जीवने जो शरीर नामकर्म उपार्जित किया है उसका उदय होने पर (जीव अपने) छोटे अथवा बड़े देहके बराबर होता है। वह कौन होता है? "चेदा" चेतन अर्थात् जीव। किस कारण? "उवसंहारप्पसप्पदो" संकोच तथा विस्तारसे; शरीरनामकर्मसे उत्पन्न विस्तार और संकोचरूप (जीवके) धर्मसे—ऐसा अर्थ है।

यहां दृष्टांत क्या है? जैसे दीपक बड़े बर्तनमें रखा गया हो तो उस बर्तनके भीतर सबको प्रकाशित करता है और छोटे बर्तनमें रखा गया हो तो उस बर्तनमें सबको प्रकाशित करता है। तथा, अन्य किस कारणसे यह जीव देह प्रमाण है? 'असमुहदो' असमुद्घातके कारण। वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली नामक सात प्रकारका समुद्घात छोड़ दिया होनेके कारण (—समुद्घातके अतिरिक्तका कथन होनेके कारण)। सात समुद्घातोंका लक्षण इस प्रकार कहा है:—

१–यहां एक ही भावको भिन्न और अभिन्न दिखाकर अनेकान्तस्वरूप सिद्ध किया है।

समुग्घादो । तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥ १ ॥" तद्यथा—"मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स । णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घादयं णाम ॥ १ ॥" तीव्रवेदनानुभवान्मूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति वेदनासमुद्घातः । १ । तीव्रकषायोदयान्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति कषायसमुद्घातः । २ । मूलशरीरमपरित्यज्य किमपि विकर्तुमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति विक्रियासमुद्घातः । ३ । मरणान्तसमये मूलशरीरमपरित्यज्य यत्र कुत्रचिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्फुटितुमात्मप्रदेशानां बहिर्गमनमिति मारणान्तिकसमुद्घातः । ४ । स्वस्य मनोनिष्टजनकं किञ्चित्कारणान्तरमवलोक्य समुत्पन्नक्रोधस्य संयमनिधानस्य महामुनेर्मूलशरीरमपरित्यज्य सिन्दूरपुञ्जप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाणः सूच्यङ्गुलसंख्येयभागमूलविस्तारो नवयोजनाग्रविस्तारः काहलाकृतिपुरुषो वामस्कन्धान्निर्गत्य वाम-

---

"वेयणकसायवेउव्वियो मारणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥"[1]

"(१) वेदना, (२) कषाय, (३) विक्रिया, (४) मारणांतिक, (५) तैजस, (६) आहार, और (७) केवली—ये सात समुद्घात हैं।" वे इस प्रकार—"अपना [2]मूल शरीर छोड़े विना (तैजस और कार्माणरूप) उत्तर देहके साथ-साथ जीव-प्रदेशोंके शरीरसे बाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं।" तीव्र पीड़ाका अनुभव होनेसे, मूल शरीर छोड़े विना, आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना उसे वेदनासमुद्घात कहते हैं ॥१॥ तीव्र कषायके उदयसे, मूल शरीरको छोड़े विना, अन्यका घात करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना उसे कषायसमुद्घात कहते हैं ॥ २ ॥ मूल शरीर छोड़े विना, किसी भी प्रकारकी विक्रिया करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना उसे विक्रियासमुद्घात कहते हैं ॥ ३ ॥ मृत्युके समय, मूल शरीरको छोड़े विना, जब इस आत्माने कहींका आगामी आयुष्य बांधा हो उस प्रदेशको स्पर्श करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका बाहर निकलना, उसे मारणान्तिकसमुद्घात कहते हैं ॥४॥ अपने मनको अनिष्ट उत्पन्न करनेवाला कोई अन्य कारण देखकर जिसको क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे संयमके निधानरूप महामुनिके, मूल शरीरको छोड़े विना, सिंदूरके पिंड समान प्रकाशयुक्त, बारह योजन लम्बा, सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग

१—गोम्मटसार जीवकांड गाथा—६६६

२—गोम्मटसार जीवकांड गाथा—६६७

प्रदक्षिणेन हृदये निहितं विरुद्धं वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव संयमिना सह स च भस्म व्रजति द्वीपायनवत्, असावशुभस्तेजस्समुद्घातः। लोकं व्याधिदुर्भिक्षादिपीडित-मवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसंयमनिधानस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुभ्राकृतिः प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणप्रदक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फोटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशति, असौ शुभरूपस्तेजस्समुद्घातः। ५। समुत्पन्नपदपदार्थभ्रान्तेः परमर्द्धिसंपन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमपरित्यज्य शुद्धस्फटिकाकृतिरेकहस्तप्रमाणः पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति, तद्दर्शनाच्च स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पाद्य पुनः स्वस्थाने प्रविशति, असावाहारसमुद्-घातः। ६। सप्तमः केवलिनां दण्डकपाटप्रतरपूरणः सोऽयं केवलिसमुद्घातः। ७।

नयविभागः कथ्यते—"ववहारा" अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयात्। "णिच्छयणयदो असंखदेसो वा" निश्चयनयतो लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमाणः।

जितना मूलविस्तारवाला और नव योजनके अग्र-विस्तारवाला; काहल (बिलाव)के आकारवाला एक पुतला, वायें कन्धेमेंसे निकलकर वायीं प्रदक्षिणा देकर हृदयमें रही हुई विरुद्ध वस्तुको भस्मीभूत करके, उसी संयमी (मुनि)के साथ स्वयं भी भस्मीभूत हो जाता है, द्वीपायन मुनिके समान; यह अशुभतैजस–समुद्घात है। लोकको व्याधि, दुष्काल आदिसे पीड़ित देखकर जिसको दया उत्पन्न हुई है ऐसे परम संयमके निधान महर्षिके मूल शरीरको छोड़े विना पूर्व कथित देहप्रमाणवाला, शुभआकृतिवाला पुतला दायें कंधेसे निकलकर, दायीं ओर प्रदक्षिणा करके, व्याधि, दुष्काल आदि मिटाकर पुनः अपने मूल स्थानमें प्रवेश करता है यह शुभतैजससमुद्घात है ॥५॥ पद और पदार्थमें जिसको कोई संशय उत्पन्न हुआ है ऐसे परम ऋद्धिवाले महर्षिके मूल शरीरको छोड़े विना, शुद्ध स्फटिक जैसी आकृतिवाला, एक हाथका पुरुषाकार पुतला मस्तकके मध्यमेंसे निकलकर अंतर्मुहूर्तमें जहां कहीं केवलज्ञानीको देखता है वहां उनके दर्शनसे, अपने आश्रयभूत मुनिको पद और पदार्थका निश्चय उत्पन्न करके फिर अपने स्थानमें प्रवेश करता है उसे आहारक-समुद्घात कहते हैं ॥६॥ केवलियोंके दंड–कपाट–प्रतर–लोकपूरणरूप होते हैं वह सातवां केवलीसमुद्घात है ॥७॥

नयविभाग कहते हैं—"ववहारा" अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे ऊपर कहे अनुसार (जीव अपने शरीरप्रमाण है)। "णिच्छयणयदो असंखदेसो वा" निश्चयनयसे लोकाकाश प्रमाण असंख्य प्रदेशी है। 'वा' यहां जो 'वा' शब्द प्रयुक्त किया है

'वा' शब्देन तु स्वसंवित्तिसमुत्पन्नकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे ज्ञानापेक्षया व्यवहारनयेन लोकालोकव्यापकः; न च प्रदेशापेक्षया नैयायिकमीमांसकसांख्यमतवत् । तथैव पञ्चेन्द्रियमनोविषयविकल्परहितसमाधिकाले स्वसंवेदनलक्षणबोधसद्भावेऽपि बहिर्विषयेन्द्रियबोधाभावाज्जडः, न च सर्वथा सांख्यमतवत् । तथा रागादिविभावपरिणामापेक्षया शून्योऽपि भवति, न चानन्तज्ञानाद्यपेक्षया बौद्धमतवत् । किञ्च—अणुमात्रशरीरशब्देनात्र उत्सेधघनाङ्गुलासंख्येयभागप्रमितं लब्ध्यपूर्णसूक्ष्मनिगोदशरीरं ग्राह्यम्, न च पुद्गलपरमाणुः । गुरुशरीरशब्देन च योजनसहस्रपरिमाणं महामत्स्यशरीरं मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च । इदमत्रतात्पर्यम्—देहममत्वनिमित्तेन देहं गृहीत्वा संसारे परिभ्रमति तेन कारणेन देहादिममत्वं त्यक्त्वा निर्मोहनिजशुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति । एवं स्वदेहमात्रव्याख्यानेन गाथा गता ॥ १० ॥

इससे ऐसा सूचित होता है कि—[1]स्वसंवित्तिसे उत्पन्न केवलज्ञानकी उत्पत्ति होने पर ज्ञान-अपेक्षासे व्यवहारनयसे जीव लोकालोक व्यापक है परन्तु नैयायिक, मीमांसक और सांख्यमतवालोंकी मान्यतानुसार प्रदेशोंकी अपेक्षासे लोकालोकव्यापक नहीं है। उसी प्रकार पांच इन्द्रिय और मनके विषयके विकल्पोंसे रहित समाधिके समय स्वसंवेदनलक्षण ज्ञानका सद्भाव होने पर भी बाह्य विषयवाले इन्द्रियज्ञानका अभाव होनेकी अपेक्षासे आत्माको जड़ कहा है, परन्तु सांख्यमतकी मान्यतानुसार सर्वथा जड़ नहीं है। उसी प्रकार रागादि विभावपरिणामोंकी अपेक्षासे (आत्मा) शून्य भी है, परंतु बौद्ध मतके समान अनंत ज्ञानादिकी अपेक्षासे शून्य नहीं है।

विशेष—(गाथामें) 'अणु' मात्र शरीर कहा वहां उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग-प्रमाण लब्धि-अपर्याप्तक सूक्ष्म-निगोदका शरीर समझना परन्तु पुद्गल-परमाणु नहीं समझना। उसी प्रकार 'गुरुशरीर' शब्दसे 'एक हजार योजनप्रमाण महामत्स्यका शरीर' समझना और मध्यम अवगाहन द्वारा मध्यम शरीर समझना।

यहां यह तात्पर्य है—शरीरके ममत्वके कारण, जीव शरीर ग्रहण करके संसारमें परिभ्रमण करता है अतः देहादिका ममत्व त्यागकर निर्मोह निज शुद्धात्मामें भावना करनी चाहिए।

इस प्रकार जीवके स्वदेह प्रमाणत्वके व्याख्यानसे गाथा पूर्ण हुई ॥१०॥

१–शुद्ध आत्माकी स्वसंवेदन–क्रियाको 'स्वसंवित्ति' कहते हैं।

अतः परं गाथात्रयेण नयविभागेन संसारिजीवस्वरूपं तदवसाने शुद्धजीवस्वरूपं च कथयति । तद्यथा :—

पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।
द्विकत्रिकचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शंखादयः ॥११॥

व्याख्या—"होंति" इत्यादिव्याख्यानं क्रियते । "होंति" अतीन्द्रियामूर्तनिजपरमात्मस्वभावानुभूतिजनितसुखामृतरसस्वभावमलभमानास्तुच्छमपीन्द्रियसुखमभिलषन्ति छद्मस्थाः, तदासक्ताः सन्त एकेन्द्रियादिजीवानां घातं कुर्वन्ति तेनोपार्जितं यत्त्रसस्थावरनामकर्म तदुदयेन जीवा भवन्ति । कथंभूता भवन्ति ? "पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी" पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः । कतिसंख्योपेता ? विविधा आगमकथितस्वकीयस्वकीयान्तर्भेदैर्बहुविधाः । स्थावरनामकर्मोदयेन स्थावरा, एकेन्द्रियजाति-

---

उसके पश्चात् तीन गाथाओं द्वारा नयविभागपूर्वक संसारी जीवका स्वरूप और उसके अंतमें शुद्धजीवका स्वरूप कहते हैं । वह इस प्रकार:—

गाथा ११

गाथार्थः—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि विविध प्रकारके स्थावर, एकेन्द्रिय जीव हैं और शंखादि दो, तीन, चार तथा पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं ।

टीकाः—"होंति" आदि पदोंकी व्याख्याकी जाती है । "होंति" छद्मस्थ जीव, अतीन्द्रिय अमूर्त निजपरमात्मस्वभावकी अनुभूतिसे उत्पन्न सुखरूपी अमृतरसस्वभावको प्राप्त न करता हुआ, इन्द्रियसुख तुच्छ होने पर भी उसकी अभिलाषा करता है, उसमें आसक्त होकर एकेन्द्रियादि जीवोंका घात करता है, उस जीवघातसे उपार्जित त्रस और स्थावर नामकर्मके उदयसे जीव होते हैं । कैसे होते हैं ? "पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी" पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति —ऐसे प्रकारके होते हैं, आगममें कहे हुए अपने-अपने अनेक प्रकारके अवान्तर भेद सहित हैं । स्थावर नाम कर्मके उदयसे स्थावर, एकेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे

भूमि तेज जल वृक्ष समीर, एकेन्द्रिय थावर जु शरीर ।
वे ते चउ पण इन्द्रिय जीव, त्रस है संख आदि भवनीव ॥ ११ ॥

नामकर्मोदयेन स्पर्शनेन्द्रिययुक्ता एकेन्द्रियाः, न केवलमित्थं भूताः स्थावरा भवन्ति। "विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा" द्वित्रिचतुः पञ्चाक्षास्त्रसनामकर्मोदयेन त्रसजीवा भवन्ति। ते च कथंभूताः ? "संखादी" शङ्खादयः। स्पर्शनरसनेन्द्रियद्वययुक्ताः। शङ्खशुक्तिकृम्यादयो द्वीन्द्रियाः। स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियत्रययुक्ताः कुन्थुपिपीलिकायूकामत्कुणादयस्त्रीन्द्रियाः, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियचतुष्टययुक्ता दंशमशकमक्षिकाभ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः, स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियपञ्चयुक्ता मनुष्यादयः पञ्चेन्द्रिया इति। अयमत्रार्थः— विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपारमार्थिकसुखमलभमाना इन्द्रियसुखासक्ता एकेन्द्रियादिजीवानां वधं कृत्वा त्रसस्थावरा भवन्तीत्युक्तं पूर्वं तस्मात्त्रसस्थावरोत्पत्तिविनाशार्थं तत्रैव परमात्मनि भावना कर्त्तव्येति ॥ ११ ॥

तदेव त्रसस्थावरत्वं चतुर्दशजीवसमासरूपेण व्यक्तीकरोति :—

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
वादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

स्पर्शेन्द्रियसहित एकेन्द्रिय होते हैं। वे मात्र ऐसे स्थावर ही नहीं होते। "विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा" दो, तीन, चार तथा पांच इन्द्रियोंवाले त्रसनामकर्मके उदयसे, त्रस जीवभी होते हैं। वे कैसे हैं ? "संखादी" शंख आदि। स्पर्शन और रसना—इन दो इन्द्रियोंवाले शंख, छीप (सीप), कृमि आदि दो इन्द्रिय जीव हैं; स्पर्शन, रसना, घ्राण—ये तीन इन्द्रियवाले कुन्थु, पिपीलिका (कीड़ी, चींटी), जूं, खटमल आदि तीन इन्द्रिय जीव हैं; स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु—ये चार इन्द्रियोंवाले डांस, मच्छर, मक्खी, भौंरा आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं; स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रेन्द्रिय—ये पांच इन्द्रियोंवाले मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव हैं।

सारांश यह है कि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निज परमात्माके स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न पारमार्थिक सुखको प्राप्त न करते हुए, इन्द्रियसुखमें आसक्त जीव एकेन्द्रियादि जीवोंका वध करके त्रस और स्थावर होते हैं—इस प्रकार पूर्वमें कहा है, अतः त्रस और स्थावरमें उत्पत्ति न हो उसके लिये उसी परमात्मामें भावना करना चाहिये ॥११॥

अब वही त्रस और स्थावरपना चौदह जीवसमासरूपसे प्रगट करते हैं:—

मन-बिन अर मन-सहित सुजान, पंचेन्द्रिय पर सब मन-हानि।
बादर सूक्षम एकहि अक्ष, सब पर्यापत इतर प्रत्यक्ष ॥ १२ ॥

समनस्काः अमनस्काः ज्ञेयाः पंचेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे ।
बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च ॥ १२ ॥

व्याख्या—"समणा अमणा" समस्तशुभाशुभविकल्पातीतपरमात्मद्रव्यविलक्षणं नानाविकल्पजालरूपं मनो भण्यते, तेन सह ये वर्त्तन्ते ते समनस्काः संज्ञिनः, तद्विपरीता अमनस्का असंज्ञिनः । "णेया" ज्ञेया ज्ञातव्याः । "पंचिंदिय" ते संज्ञिनस्तथैवासंज्ञिनश्च पञ्चेन्द्रियाः । एवं संज्ञ्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्च एव, नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव । "णिम्मणा परे सव्वे" निर्मनस्काः पञ्चेन्द्रियात्सकाशात् परे सर्वे द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः । "बादरसुहमेइंदी" बादरसूक्ष्मा एकेन्द्रियास्तेऽपि यदष्टपत्रपद्माकारं द्रव्यमनस्तदाधारेण शिक्षालापोपदेशादिग्राहकं भावमनश्चेति तदुभयाभावादसंज्ञिन एव । "सव्वे पज्जत्त इदरा य" एवमुक्तप्रकारेण संज्ञ्यसंज्ञिरूपेण पञ्चेन्द्रियद्वयं

गाथा–१२

गाथार्थः—पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो प्रकारके जानना । शेष सब जीव मनरहित असंज्ञी हैं । एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म दो प्रकारके हैं । ये सब जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं ।

टीकाः—"समणा अमणा" समस्त शुभाशुभविकल्परहित परमात्मद्रव्यसे विलक्षण अनेक प्रकारके विकल्पोंके जालरूप मन है । जो जीव उस मनसहित हों उन्हें 'समनस्क'-संज्ञी और उनसे विपरीत (अर्थात् मनरहित) हों उन्हें 'अमनस्क'–असंज्ञी "णेया"–जानना । "पंचिंदिय" ऐसे अर्थात् संज्ञी और असंज्ञी इन दो भेदवाले पंचेन्द्रिय जीव होते हैं । इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन दो भेदवाले तिर्यंच ही होते हैं; नारकी, मनुष्य और देव संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं । "णिम्मणा परे सव्वे" पंचेन्द्रियके अतिरिक्त अन्य सब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव अमनस्क ही होते हैं । "बादरसुहमेइंदी" बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव हैं वे भी, आठ पांखड़ीवाले कमलके आकारवाला जो द्रव्यमन और उसके आधारसे शिक्षा, वचन, उपदेशादिको ग्रहण करनेवाला जो भावमन–इन दोनोंसे रहित होनेके कारण असंज्ञी ही हैं । "सव्वे पज्जत्त इदरा य" उपरोक्त प्रकारसे संज्ञी और असंज्ञीरूपसे पंचेन्द्रियके दो भेद, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियरूपसे विकलत्रयके तीन भेद

द्वित्रिचतुरिन्द्रियरूपेण विकलेन्द्रियत्रयं बादरसूक्ष्मरूपेणैकेन्द्रियद्वयं चेति सप्त भेदाः। "आहारसरीरिंदिय पज्जत्ती आणपाणभासमणो। चत्तारिपंचछप्पियएइन्दियवियलसण्णि-सण्णीणं। १।" इति गाथाकथितक्रमेण ते सर्वे प्रत्येकं स्वकीयस्वकीयपर्याप्तिसंभवात्सप्त पर्याप्ताः सप्तापर्याप्ताश्च भवन्ति। एवं चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्यास्तेषां च "इंदियकायाऊणिय पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा। बेइंदियादिपुण्णे वचीमणो सण्णि-पुण्णेव। १। दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्सवे ऊणा। पज्जतेसिदरेसु य

तथा बादर और सूक्ष्मरूपसे एकेन्द्रियके दो भेद ऐसे कुल सात भेद हुए। "आहारसरी-रिंदिय पज्जत्ती आणपाणभासमणो। चत्तारिपंचछप्पियएइंन्दियवियलसण्णिसण्णीणं॥"[1] [आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन–ये छह पर्याप्ति हैं। इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवको चार (आहार, शरीर, स्पर्शेन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास), विकले-न्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंको (मनके अतिरिक्त) पांच और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंको छह पर्याप्ति होती हैं।] इस गाथामें कहे हुए क्रमसे वे सब (सात प्रकारके) जीव अपनी-अपनी पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पर्याप्त होते हैं अर्थात् ये सात पर्याप्त होते हैं। और अपनी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होनेसे सात अपर्याप्त होते हैं। इस प्रकार चौदह जीव-समास जानना।

"इंदियकायाऊणिय पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा।
बेइंदियादिपुण्णे वचीमणो सण्णिपुण्णेव॥
दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंति मस्स वेऊणा।
पज्जतेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा॥"[2]

["इन्द्रिय, काय और आयुष्य—ये तीन प्राण पर्याप्त और अपर्याप्त दोनोंको होते हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्तको ही होता है। वचनबलप्राण दो इन्द्रिय आदि पर्याप्तको ही होते हैं, मनोबलप्राण संज्ञी पर्याप्तको ही होता है। पर्याप्त अवस्थामें संज्ञी पंचेन्द्रियोंको दस प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियोंको (मनके बिना) नौ प्राण, चतुरि-न्द्रियको (मन और कर्णेन्द्रियके बिना) आठ प्राण, त्रीन्द्रियको (मन, कर्ण और चक्षु इन्द्रियके बिना) सात प्राण, द्वीन्द्रियको (मन, कर्ण, चक्षु और घ्राणेन्द्रियके बिना)

१–गोम्मटसार जीवकांड गाथा ११८
२–गोम्मटसार जीवकांड गाथा १३१–१३२

सत्तदुगे सेसगेगूणा । २ ।" इति गाथाद्वयकथितक्रमेण यथासंभवमिन्द्रियादिदश-प्राणाश्च विज्ञेयाः । अत्रैतेभ्यो भिन्नं निजशुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ १२ ॥

अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावा अपि जीवाः पश्चादशुद्धनयेन चतुर्दशमार्गणास्थानचतुर्दशगुणस्थानसहिता भवन्तीति प्रतिपादयति :—

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात् ।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्व्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ॥ १३ ॥

छह प्राण और एकेन्द्रियको (मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, रसना तथा वचनके बिना) चार प्राण होते हैं । अपर्याप्त जीवोंमें संज्ञी तथा असंज्ञी—इन दोनों पंचेन्द्रियोंको श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबलके बिना सात प्राण होते हैं और चतुरिन्द्रियसे एकेन्द्रिय तक क्रम-क्रमसे एक-एक प्राण घटता है"] इन दोनों गाथाओंमें कहे हुए क्रमानुसार यथासंभव इन्द्रियादिक दश प्राण समझना ।

यहां भावार्थ यह है कि इनसे (इन्द्रियों, पर्याप्तियों, प्राणों आदिसे) भिन्न निजशुद्धात्मतत्त्व उपादेय है ॥१२॥

अब [1]शुद्ध–पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाववाले हैं तो भी पश्चात् अशुद्धनयसे चौदह मार्गणास्थान और चौदह गुणस्थान सहित होते हैं इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा–१३

गाथार्थः—सर्व संसारी जीव अशुद्धनयसे मार्गणास्थान और गुणस्थानकी अपेक्षासे चौदह-चौदह प्रकारके हैं । शुद्धनयसे यथार्थमें सब संसारी जीव शुद्ध जानना ।

१–देखो फूटनोट गाथा ४

चौदह मारगना गुनथान, नय अशुद्ध संसारी मान ।
निश्चय सर्व जीव है शुद्ध, नांहि भेद चेतन नित बुद्ध ॥ १३ ॥

व्याख्या—"मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णेया" यथा पूर्वसूत्रोदित-चतुर्दशजीवसमासैर्भवन्ति मार्गणागुणस्थानैश्च तथा भवन्ति सम्भवन्तीति विज्ञेया ज्ञातव्याः। कतिसंख्योपेतैः ? "चउदसहि" प्रत्येकं चतुर्दशभिः। कस्मात् ? "असुद्धणया" अशुद्धनयात् सकाशात्। इत्थंभूताः के भवन्ति ? "संसारी" संसारिजीवाः। "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" त एव सर्वे संसारिणः शुद्धाः सहजशुद्धज्ञायकैकस्वभावाः। कस्मात् ? शुद्धनयात् शुद्धनिश्चयनयादिति। अथागमप्रसिद्धगाथाद्वयेन गुणस्थाननामानि कथयति। "मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य। विरया पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्ठि सुहमो य।१। उवसंत खीणमोहो सजोगिकेवलिजिणो अजोगी य। चउदस गुणठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा।२।" इदानीं तेषामेव गुणस्थानानां प्रत्येकं संक्षेपलक्षणं कथ्यते। तथाहि—सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनरूपाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयनिजपरमात्मप्रभृतिषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनयविभागेन यस्य श्रद्धानं नास्ति

टीकाः—"मग्गणगुणठाणेहि य हवंति तह विण्णेया" जिस प्रकार पूर्व गाथामें कहे हुए चौदह जीवसमासोंसे जीव चौदह भेदवाले होते हैं उसी प्रकार मार्गणा और गुणस्थानसे भी होते हैं इस प्रकार जानना। (मार्गणा और गुणस्थानसे) कितनी संख्यावाले होते हैं ? "चउदसहि" प्रत्येक चौदह-चौदह संख्यावाले होते हैं। किस अपेक्षासे ? "असुद्धणया" अशुद्धनयकी अपेक्षासे। इस प्रकारके कौन होते हैं ? "संसारी" संसारी जीव होते हैं। "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" वे ही सब संसारी जीव शुद्ध हैं अर्थात् जिनका सहजशुद्धज्ञायक एकस्वभाव है, ऐसे हैं। किस अपेक्षासे ? शुद्धनयकी अपेक्षासे—शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे।

अब आगम प्रसिद्ध दो गाथाओं द्वारा गुणस्थानोंके नाम कहते हैं : मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगीकेवली और अयोगीकेवली। इस प्रकार क्रमपूर्वक चौदह गुणस्थान [1]जानना।

अब उन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येकका संक्षिप्त लक्षण कहते हैं। वह इस प्रकार है—सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनरूप अखंड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय निजपरमात्मा आदि छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोंमें, तीन मूढता आदि पच्चीस

१–गोम्मटसार जीवकांड गाथा ९–१०

स मिथ्यादृष्टिर्भवति । पाषाणरेखासदृशानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्यतरोदयेन प्रथमौपशमिकसम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं नाद्यापि गच्छतीत्यन्तरालवर्त्ती सासादनः । निजशुद्धात्मादितत्त्वं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं परप्रणीतं च मन्यते यः स दर्शनमोहनीय-भेदमिश्रकर्मोदयेन दधिगुडमिश्रभाववत् मिश्रगुणस्थानवर्त्ती भवति । अथ मतं—येन केनाप्येकेन मम देवेन प्रयोजनं तथा सर्वे देवा वन्दनीया न च निन्दनीया इत्यादि-वैनयिकमिथ्यादृष्टिः संशयमिथ्यादृष्टिर्वा तथा मन्यते तेन सह सम्यग्मिथ्यादृष्टेः को विशेष इति ? अत्र परिहारः—"स सर्वदेवेषु सर्वसमयेषु च भक्तिपरिणामेन येन केनाप्येकेन मम पुण्यं भविष्यतीति मत्वा संशयरूपेण भक्तिं कुरुते निश्चयो नास्ति । मिश्रस्य पुनरुभयत्र निश्चयोऽस्तीति विशेषः ।" स्वाभाविकानन्तज्ञानाद्यनन्तगुणाधार भूतं निजपरमात्मद्रव्यमुपादेयम्, इन्द्रियसुखादिपरद्रव्यं हि हेयमित्यर्हत्सर्वज्ञप्रणीतनिश्चय-

---

दोष रहित, वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत नयविभाग [1]अनुसार जिस जीवको श्रद्धान नहीं है वह जीव 'मिथ्यादृष्टि' है ॥१॥ पत्थरमें उकेरी हुई रेखा समान अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभमेंसे किसी एकके उदय द्वारा प्रथम-उपशमसम्यक्त्वसे गिरकर जहां तक मिथ्यात्वको प्राप्त न हो वहां तक सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनोंके वीचके परिणामवाला जीव 'सासादन' है ॥२॥ निजशुद्धात्मादि वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत तत्त्वोंको और परप्रणीत तत्त्वोंको भी जो मानता है वह मिश्रदर्शनमोह-नीयकर्मके उदयसे दही और गुड़के मिश्रणयुक्त पदार्थोंकी भांति 'मिश्रगुणस्थान' वाला जीव है ॥३॥

यहां शंका—'जिस किसी भी (चाहे जो हो) एक देवसे हमें तो प्रयोजन है' तथा 'सभी देव वंदनीय हैं, किसी भी देवकी निन्दा नहीं करनी चाहिये' इत्यादि वैनयिक मिथ्यादृष्टि अथवा संशय मिथ्यादृष्टि मानता है तो उसमें और सम्यग्-मिथ्यादृष्टिमें क्या अन्तर है ? उसका उत्तर—वह तो सब देवोंके प्रति और सब शास्त्रोंके प्रति भक्तिके परिणाम करनेके कारण किसी भी एकसे मुझे पुण्य होगा—ऐसा मानकर संशयरूपसे भक्ति करता है, उसे किसी एक देवमें निश्चय नहीं है और मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवको तो दोनोंमें निश्चय है;—यह अन्तर है ।

"स्वाभाविक अनंतज्ञानादि अनंत गुणके आधारभूत निजपरमात्मद्रव्य उपादेय है और इन्द्रियसुखादि परद्रव्य हेय हैं" इस प्रकार अर्हत्सर्वज्ञप्रणीत

१—सर्वज्ञप्रणीत नयविभागमें शुद्धबुद्ध एकस्वभाव परमात्मद्रव्य उपादेय है, अन्य सर्व हेय हैं। देखो गाथा १५ भूमिका तथा चूलिका ।

व्यवहारनयसाध्यसाधकभावेन मन्यते परं किन्तु भूमिरेखादिसदृशक्रोधादिद्वितीयकषायोदयेन मारणनिमित्तं तलवरगृहीततस्करवदात्मनिन्दासहितः सन्निन्द्रियसुखमनुभवतीत्यविरतसम्यग्दृष्टेर्लक्षणम् । यः पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टिः सन् भूमिरेखादिसमानक्रोधादिद्वितीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेनैकदेशरागादिरहितस्वाभाविकसुखानुभूतिलक्षणेषु बहिर्विषयेषु पुनरेकदेशहिंसानृतास्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु "दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य । बम्हारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ।१।"

---

[1]निश्चय-व्यवहारनयरूप साध्य-साधकभावसे मानता है, परंतु भूमिकी रेखाके समान क्रोधादि अप्रत्याख्यान कषायके उदयसे, मारनेके लिये कोतवाल द्वारा पकड़े गये चोरकी भांति, आत्मनिन्दा सहित वर्तता हुआ इन्द्रियसुखका [2]अनुभव करता है वह 'अविरत सम्यग्दृष्टि' का लक्षण है ।। ४ ।। जो पूर्वोक्त प्रकारसे सम्यग्दृष्टि होता हुआ भूमिकी रेखाके समान क्रोधादि अप्रत्याख्यानावरणरूप द्वितीय कषायके उदयका अभाव होने पर, 'दंसणवयसामाइय पोसहसचित्तराइभत्ते य । बम्हारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ।१।' (दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तविरत, रात्रिभोजनत्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग)' इस गाथामें कहे हुए (श्रावकोंके) ग्यारह स्थानोंमें—(१) अंतरंगमें निश्चयनयसे एकदेश रागादिरहित स्वाभाविक सुखकी अनुभूति जिसका लक्षण है, और (२) बाह्य विषयोंमें (व्यवहारसे) हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रहकी एकदेश निवृत्ति

१–अविरत सम्यग्दृष्टि जीव 'निज परमात्मद्रव्य उपादेय है और इन्द्रियसुखादि परद्रव्य हेय हैं' ऐसा अंतरंगमें आंशिक शुद्ध परिणतिरूप परिणमित होकर निरन्तर मानता है (अर्थात् निश्चयरूप साध्यभावसे–शुद्ध सम्यग्दर्शनभावसे परिणमित होकर निरंतर मानता है); और वह बाह्यमें–विकल्पमें नव तत्त्वश्रद्धानादिभावसे परिणमित होकर भी ऐसा मानता है (अर्थात् व्यवहाररूप साधकभावसे–नव तत्त्वश्रद्धानादिरूप विकल्पभावसे भी ऐसा मानता है) । निश्चय-व्यवहारका ऐसा सुमेल होता है । इससे ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना:—कोई जीव ऐसा कहता है कि—'मैं अंतरंग शुद्धपरिणतिसे तो निज द्रव्यकी उपादेयता और परद्रव्यकी हेयता मानता हूँ परन्तु मुझे विकल्पमें नव तत्त्वश्रद्धानादिसे विरुद्धभाव है', तो यह बात ठीक नहीं है, और वह जीव सम्यग्दृष्टि नहीं है । तथा कोई जीव ऐसा कहता है कि 'मैं नव तत्त्वश्रद्धानादिरूप विकल्पभावमें तो निजद्रव्यकी उपादेयता और परद्रव्यकी हेयता यथार्थ मानता हूँ परन्तु मुझे अंतरंग शुद्ध परिणमन नहीं है', तो वह जीव भी सम्यग्दृष्टि नहीं है ।

२–यह अनुभव–भोगना अनीहित वृत्तिसे–वियोगबुद्धिसे होता है और उसका स्वामित्व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवको नहीं होता ।

इति गाथाकथितैकादशनिलयेषु वर्तते स पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावको भवति । ५ । स एव सद्दृष्टिर्धूलिरेखादिसदृशक्रोधादितृतीयकषायोदयाभावे सत्यभ्यन्तरे निश्चयनयेन रागाद्युपाधिरहितस्वशुद्धात्मसंविच्तिसमुत्पन्नसुखामृतानुभवलक्षणेषु वहिर्विषयेषु पुनः सामस्त्येन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहनिवृत्तिलक्षणेषु च पञ्चमहाव्रतेषु वर्तते यदा तदा दुःस्वप्नादिव्यक्ताव्यक्तप्रमादसहितोऽपि षष्ठगुणस्थानवर्त्ती प्रमत्तसंयतो भवति । ६ । स एव जलरेखादिसदृशसंज्वलनकषायमन्दोदये सति निष्प्रमदाशुद्धात्मसंविच्तिमलजनकव्यक्ताव्यक्तप्रमादरहितः सन्सप्तमगुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयतो भवति । ७ । स एवातीतसंज्वलनकषायमन्दोदये सत्यपूर्वपरमाह्लादैकसुखानुभूतिलक्षणापूर्वकरणोपशमकक्षपकसंज्ञोऽष्टमगुणस्थानवर्ती भवति । ८ । दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिरूपसमस्तसङ्कल्पविकल्परहितनिजनिश्चलपरमात्मतत्त्वैकाग्रध्यानपरिणामेन कृत्वा येषां जीवानामेकसमये ये परस्परं पृथक्कर्तुं नायान्ति ते वर्णसंस्थानादिभेदेऽप्यनिवृत्तिकरणौपशमिकक्षपकसंज्ञा द्वितीयकषायाद्येकविंशतिभेदभिन्नचारित्रमोहप्रकृतिनामुपशमनक्षपणसमर्था नवमगुणस्थानवर्तिनो

जिसका लक्षण है उसमें—वर्तता है, वह पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक है ।।५।। जब वही सम्यग्दृष्टि धूलकी रेखा समान क्रोधादि प्रत्याख्यानावरण तीसरे कषायका उदय होने पर पांच महाव्रतोंमें—(१) अंतरंगमें निश्चयनयसे रागादि-उपाधिरहित स्व-शुद्धात्मसंवेदनसे उत्पन्न सुखामृतका अनुभव जिसका लक्षण है, और (२) बाह्य विषयोंमें (व्यवहारसे) हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रहकी संपूर्णरूपसे निवृत्ति जिसका लक्षण है उसमें—वर्तता है तब, दुःस्वप्न आदि व्यक्त और अव्यक्त प्रमादसहित होने पर भी, वह छट्ठे गुणस्थानवर्ती 'प्रमत्तसंयत' है ।।६।। वही जीव जलकी रेखा समान संज्वलन कषायका मंद उदय होने पर प्रमादरहित शुद्धात्मानुभवमें दोष उत्पन्न करनेवाले व्यक्त और अव्यक्त प्रमादरहित वर्तता हुआ सप्तम गुणस्थानवर्ती 'अप्रमत्तसंयत' है ।।७।। वही (जीव) संज्वलन कषायका अत्यंत मंद उदय होने पर अपूर्व (परम—आह्लादरूप एक सुखकी अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसा) 'अपूर्वकरण-उपशमक अथवा क्षपक' नामक आठवां गुणस्थानवर्ती है ।।८।। दृष्ट, श्रुत और अनुभूत भोगाकांक्षादिरूप समस्त संकल्प-विकल्परहित, निज निश्चल परमात्मस्वरूपमें एकाग्र ध्यानके परिणामकी अपेक्षासे जिन जीवोंको एक समयमें परस्पर अंतर नहीं होता है वे, वर्ण और संस्थान आदिका भेद होने पर भी, 'अनिवृत्तिकरण-उपशमक अथवा क्षपक' संज्ञाके धारक, अप्रत्याख्यानावरणरूप द्वितीय कषायादि इक्कीस प्रकारकी चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंके उपशम अथवा क्षयमें समर्थ

भवन्ति । ९ । सूक्ष्मपरमात्मतत्त्वभावनाबलेन सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायस्योपशमकाः क्षपकाश्च दशमगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति ।१०। परमोपशममूर्तिनिजात्मस्वभावसंवित्तिबलेन सकलोपशान्तमोहा एकादशगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । ११ । उपशमश्रेणिविलक्षणेन क्षपकश्रेणिमार्गेण निष्कषायशुद्धात्मभावनाबलेन क्षीणकषाया द्वादशगुणस्थानवर्तिनो भवन्ति । १२ । मोहक्षपणानन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणैकत्ववितर्कावीचारद्वितीयशुक्लध्याने स्थित्वा तदनन्त्यसमये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायत्रयं युगपदेकसमयेन निर्मूल्य मेघपुञ्जरविनिर्गतदिनकर इव सकलविमलकेवलज्ञानकिरणैर्लोकालोकप्रकाशकास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जिनभास्करा भवन्ति । १३ । मनोवचनकायवर्गणालम्बनकर्मादाननिमित्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगरहिताश्चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनोऽयोगिजिना भवन्ति । १४ । ततश्च निश्चयरत्नत्रयात्मककारणभूतसमयसारसंज्ञेन परमयथाख्यातचारित्रेण चतुर्दशगुणस्थानातीताः ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहिताः सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतनिर्नामनिर्गोत्राद्यनन्तगुणाः सिद्धा भवन्ति ।

ऐसे नवम गुणस्थानवर्ती जीव हैं ।।९।। सूक्ष्म परमात्मतत्त्वकी भावनाके बलसे, सूक्ष्म–अत्यन्त कृश हुए लोभकषायका उपशम अथवा क्षय करनेवाले जीव दशम गुणस्थानवर्ती हैं ।।१०।। परम-उपशममूर्ति निजात्माके स्वभावके अनुभवके बलसे संपूर्ण मोहका उपशम करनेवाले (जीव) ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती हैं ।।११।। उपशम श्रेणीसे विलक्षण ऐसे क्षपक श्रेणीके मार्गसे निष्कषाय शुद्धात्माकी भावनाके बलसे कषायका क्षय करनेवाले जीव बारहवें गुणस्थानवर्ती हैं ।।१२।। मोहका क्षय करनेके पश्चात् अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त, स्वशुद्धात्मसंवित्ति (संवेदन) जिसका लक्षण है ऐसे 'एकत्ववितर्क अवीचार' नामक द्वितीय शुक्लध्यानमें स्थिर होकर, उसके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनोंका एक साथ एक समयमें नाश करके, मेघ पटलमेंसे निकले हुए सूर्यकी भांति सकलनिर्मल केवलज्ञानकी किरणोंसे लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले, तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिन भास्कर हैं ।।१३।। मन, वचन, कायाकी वर्गणाका जिन्हें अवलंबन है और कर्मोंको ग्रहण करनेमें जो निमित्त हैं ऐसे आत्मप्रदेशोंके परिस्पंदस्वरूप जो योग, उनसे रहित चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगीजिन हैं ।।१४।। और उसके पश्चात् निश्चयरत्नत्रयात्मक 'कारणभूत समयसार' नामक जो परम यथाख्यातचारित्र है उसके द्वारा पूर्वोक्त चौदह गुणस्थानोंसे अतीत हुए, ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे रहित हुए तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणोंमें अंतर्भूत निर्नाम, निर्गोत्र आदि अनन्त गुणवाले 'सिद्ध' हैं ।

अत्राह शिष्यः—केवलज्ञानोत्पत्तौ मोक्षकारणभूतरत्नत्रयपरिपूर्णतायां सत्यां तस्मिन्नेव क्षणे मोक्षेण भाव्यं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये कालो नास्तीति ? परिहारमाह—यथाख्यातचारित्रं जातं परं किन्तु परमयथाख्यातं नास्ति । अत्र दृष्टांतः । यथा—चौरव्यापाराभावेऽपि पुरुषस्य चौरसंसर्गो दोषं जनयति तथा चारित्रविनाशकचारित्रमोहोदयाभावेऽपि सयोगिकेवलिनां निष्क्रियशुद्धात्माचरणविलक्षणो योगत्रयव्यापारश्चारित्रमलं जनयति, योगत्रयगते पुनरयोगिजिने चरमसमयं विहाय शेषाघातिकर्मतीव्रोदयश्चारित्रमलं जनयति, चरमसमये तु मन्दोदये सति चारित्रमलाभावात् मोक्षं गच्छति । इति चतुर्दशगुणस्थानव्याख्यानं गतम् । इदानीं मार्गणाः कथ्यन्ते । "गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य । संयम दंसण लेस्सा भविया समत्तसण्णि आहारे ।१।" इति गाथाकथितक्रमेण गत्यादिचतुर्दशमार्गणा ज्ञातव्याः । तद्यथा—स्वात्मोपलब्धि-

---

यहां शिष्य पूछता है कि केवलज्ञानकी उत्पत्ति होने पर मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयकी परिपूर्णता हो गई तो उसी क्षण मोक्ष होना चाहिये । अतः सयोगी और अयोगीजिन नामक दो गुणस्थानोंका काल नहीं रहता है । इस शंकाका उत्तर देते हैं:—यथाख्यातचारित्र तो हुआ परन्तु परम यथाख्यातचारित्र नहीं है । यहां दृष्टांत है—जैसे कोई मनुष्य चोरी नहीं करता है तो भी उसे चोरके संसर्गका दोष लगता है उसी प्रकार सयोग केवलियोंके चारित्रका नाश करनेवाले चारित्रमोहके उदयका अभाव होने पर भी निष्क्रिय शुद्धात्म-आचरणसे विलक्षण तीन योगका व्यापार चारित्रमें दोष उत्पन्न करता है; तथा तीन योगका जिसको अभाव है उस अयोगी जिनको, चरम समयके अतिरिक्त, शेष चार अघातिकर्मोंका तीव्र उदय चारित्रमें दोष उत्पन्न करता है । चरम समयमें मंद उदय होने पर, चारित्रमें दोषका अभाव होनेसे, वह मोक्षको प्राप्त करता है ।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अव मार्गणाओंका कथन किया जाता है:—"गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसा यणाणे य । संयम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे ।।" (गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञा और आहार)" इसप्रकार [1]गाथामें कथित क्रमानुसार गति आदि चौदह मार्गणाएं जानना । वे इसप्रकार:—निज आत्माकी उपलब्धिरूप सिद्धिसे विलक्षण ऐसी गतिमार्गणा नारक,

---

१–गोम्मटसार जीवकांड गाथा १४१

सिद्धिविलक्षणा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभेदेन चतुर्विधा गतिमार्गणा भवति । १ । अतीन्द्रियशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूताह्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन पञ्चप्रकारेन्द्रियमार्गणा ।२। अशरीरात्मतत्त्वविसदृशी पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदेन षड्भेदा कायमार्गणा ।३। निर्व्यापारशुद्धात्मपदार्थविलक्षणमनोवचनकाययोगभेदेन त्रिधा योगमार्गणा, अथवा विस्तरेण सत्यासत्योभयानुभयभेदेन चतुर्विधो मनोयोगो वचनयोगश्च, औदारिकौदारिकमिश्रवैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राहारकाहारकमिश्रकार्मणकायभेदेन सप्तविधो काययोगश्चेति समुदायेन पञ्चदशविधा वा योगमार्गणा । ४ । वेदोदयोद्भवरागादिदोषरहितपरमात्मद्रव्याद्भिन्ना स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन त्रिधा वेदमार्गणा । ५ । निष्कषायशुद्धात्मस्वभावप्रतिकूलक्रोधलोभमायामानभेदेन चतुर्विधा कषायमार्गणा, विस्तरेण कषायनोकषायभेदेन पञ्चविंशतिविधा वा । ६ । मत्यादिसंज्ञापञ्चकं कुमत्याद्यज्ञानत्रयं चेत्यष्टविधा ज्ञानमार्गणा ।७। सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदेन चारित्रं पञ्चविधम्,

---

तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिके भेदसे चार प्रकारकी है।।१।। अतीन्द्रिय शुद्धात्मतत्त्वसे प्रतिपक्षभूत इन्द्रियमार्गणा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियके भेदसे पांच प्रकारकी है ।।२।। अशरीरी आत्मतत्त्वसे विसदृश ऐसी कायमार्गणा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसकायके भेदसे छह प्रकारकी है ।।३।। निर्व्यापार शुद्धात्मपदार्थसे विलक्षण मन, वचन और काययोगके भेदसे योगमार्गणा तीन प्रकारकी है; अथवा विस्तारसे सत्य, असत्य, उभय और अनुभयरूप भेदसे चार प्रकारका मनोयोग है, इसी प्रकार (सत्य, असत्य, उभय और अनुभय) चार प्रकारका वचनयोग है, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्माण—ये काययोगके सात प्रकार हैं । इस प्रकार सब मिलकर पन्द्रह प्रकारकी योगमार्गणा है ।।४।। वेदके उदयसे उत्पन्न रागादिदोष रहित परमात्मद्रव्यसे भिन्न ऐसी वेदमार्गणा, स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदके भेदसे तीन प्रकार हैं ।।५।। निष्कषाय शुद्धात्मस्वभावसे प्रतिकूल क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारकी कषाय मार्गणा है; विस्तारसे कषाय और नोकषायके भेदसे पचीस प्रकारकी कषायमार्गणा है ।।६।। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि—इस प्रकार आठ प्रकारकी ज्ञानमार्गणा है ।।७।। सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यातरूप भेदसे पांच प्रकारका चारित्र तथा संयमासंयम और असंयम ये दो प्रतिपक्ष-

संयमासंयमस्तथैवासंयमश्चेति प्रतिपक्षद्वयेन सह सप्तप्रकारा संयममार्गणा । ८ । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदेन चतुर्विधा दर्शनमार्गणा । ९ । कषायोदयरञ्जितयोगप्रवृत्तिविसदृशपरमात्मद्रव्यप्रतिपन्थिनी[1] कृष्णनीलकापोततेजःपद्मशुक्लभेदेन षड्विधा लेश्यामार्गणा । १० । भव्याभव्यभेदेन द्विविधा भव्यमार्गणा ।११। अत्राह शिष्यः—शुद्धपारिणामिकपरमभावरूपशुद्धनिश्चयेन गुणस्थानमार्गणास्थानरहिता जीवा इत्युक्तं पूर्वम्, इदानीं पुनर्भव्याभव्यरूपेण मार्गणामध्येऽपि पारिणामिकभावो भणित इति पूर्वापरविरोधः ? अत्र परिहारमाह—पूर्वं शुद्धपारिणामिकभावापेक्षया गुणस्थानमार्गणानिषेधः कृतः, इदानीं पुनर्भव्याभव्यत्वद्वयमशुद्धपारिणामिकभावरूपं मार्गणामध्येऽपि घटते । ननु—शुद्धाशुद्धभेदेन पारिणामिकभावो द्विविधो नास्ति किन्तु शुद्ध एव ? नैवं यद्यपि सामान्यरूपेणोत्सर्गव्याख्यानेन शुद्धपारिणामिकभावः कथ्यते तथाप्यपवादव्याख्यानेनाशुद्धपारिणामिकभावोऽप्यस्ति । तथाहि—"जीवभव्याभव्यत्वानि च"

रूप भेद मिलकर सात प्रकारकी संयममार्गणा है ।।८।। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शनके भेदसे चार प्रकारकी दर्शनमार्गणा है ।।९।। कषायोदयरंजित योगप्रवृत्तिसे विसदृश (कषायके उदयसे रंजित योगकी प्रवृत्तिसे विपरीत) ऐसे परमात्मद्रव्यका विरोध करनेवाली लेश्यामार्गणा कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्याके भेदसे छह प्रकारकी है ।।१०।। भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारकी भव्यमार्गणा है ।।११।।

यहां शिष्य कहता है—शुद्ध पारिणामिकपरमभावरूप शुद्धनिश्चयसे जीव गुणस्थान और मार्गणास्थानसे रहित हैं—इस प्रकार [2]पहले कहा गया है और अब यहां मार्गणाके कथनमें भव्य और अभव्यरूपसे पारिणामिकभाव कहा है । इस प्रकार वहां पूर्वापर विरोध आता है । उसका यहां समाधान करते हैं—पहले शुद्ध पारिणामिकभावकी अपेक्षासे गुणस्थान और मार्गणास्थानका निषेध किया था परंतु यहां भव्यत्व और अभव्यत्व ये दो, अशुद्ध पारिणामिकभावरूप होनेसे, मार्गणाके कथनमें घटित होते हैं । यदि इस प्रकार कहा जाय कि "शुद्ध और अशुद्धके भेदसे पारिणामिकभाव दो प्रकारका नहीं है परन्तु एक शुद्ध ही है", तो ऐसा नहीं है; यद्यपि सामान्यरूपसे उत्सर्ग व्याख्यानसे शुद्ध पारिणामिकभाव कहा जाता है तो भी अपवाद व्याख्यानसे अशुद्ध पारिणामिक भाव भी है। जैसे—"जीवभव्याभव्यत्वानि च"

१—'प्रतिपक्षी' इति पाठान्तरं ।
२—इस गाथाकी सूचनिकामें कहा है ।

इति तत्त्वार्थसूत्रे त्रिधा पारिणामिकभावो भणितः, तत्र शुद्धचैतन्यरूपं जीवत्वमविनश्वरत्वेन शुद्धद्रव्याश्रितत्वाच्छुद्धद्रव्यार्थिकसंज्ञः शुद्धपारिणामिकभावो भण्यते, यत्पुनः कर्मजनितदशप्राणरूपं जीवत्वं, भव्यत्वम्, अभव्यत्वं चेति त्रयं, तद्विनश्वरत्वेन पर्यायाश्रितत्वात्पर्यायार्थिकसंज्ञस्त्वशुद्धपारिणामिकभाव उच्यते। अशुद्धत्वं कथमिति चेत्? यद्यप्येतदशुद्धपारिणामिकत्रयं व्यवहारेण संसारिजीवेऽस्ति तथापि "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" इति वचनाच्छुद्धनिश्चयेन नास्ति त्रयं, मुक्तजीवे पुनः सर्वथैव नास्ति, इति हेतोरशुद्धत्वं भण्यते। तत्र शुद्धाशुद्धपारिणामिकमध्ये शुद्धपारिणामिकभावो ध्यानकाले ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति, कस्मात् ध्यानपर्यायस्य विनश्वरत्वात्, शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूपत्वादविनश्वरः, इति भावार्थः। औपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वभेदेन त्रिधा सम्यक्त्वमार्गणा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रसंज्ञविपक्षत्रयभेदेन सह षड्विधा ज्ञातव्या। १२। संज्ञित्वासंज्ञित्वविसदृशपरमात्मस्वरूपा-

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रमें जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्वरूप तीन प्रकारसे पारिणामिकभाव कहा है। वहां शुद्ध चैतन्यरूप जीवत्व अविनश्वरपनेके कारण शुद्धद्रव्यके आश्रित होनेसे 'शुद्ध-द्रव्यार्थिक' ऐसी संज्ञावाला शुद्ध पारिणामिकभाव कहलाता है और कर्मजनित दश प्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व रूपसे तीन हैं वे विनश्वरपनेके कारण पर्यायाश्रित होनेसे 'पर्यायार्थिक' ऐसी संज्ञावाले अशुद्ध पारिणामिक भाव कहलाते हैं। प्रश्नः—अशुद्धपना कैसे है? उत्तरः—यद्यपि ये तीन अशुद्ध पारिणामिकभाव व्यवहारसे संसारी जीवमें हैं तो भी "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" [शुद्धनयसे सर्व (संसारी) जीव वास्तवमें शुद्ध हैं]" इस वचनसे शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे (संसारी जीवमें) ये तीनों भाव नहीं हैं और मुक्त जीवमें तो सर्वथा नहीं हैं, इस हेतुसे अशुद्धपना कहलाता है। वहां शुद्ध और अशुद्ध पारिणामिकभावमेंसे [1]शुद्ध पारिणामिकभाव ध्यानके समय ध्येयरूप होता है, ध्यानरूप नहीं होता है, क्योंकि ध्यानपर्याय विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिकभाव तो द्रव्यरूप होनेसे अविनश्वर है। ऐसा भावार्थ है।

औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्वके भेदसे सम्यक्त्वमार्गणा—मिथ्यादर्शन, सासादन और मिश्र इन तीन विपरीत भेदों सहित—छह प्रकारकी जानना ॥१२॥ संज्ञी और असंज्ञीपनेसे विसदृश ऐसे परमात्मस्वरूपसे भिन्न संज्ञी-

१—तीनों कालमें शुद्धता प्रगट करनेके लिये यह द्रव्यरूप शुद्ध पारिणामिकभाव आश्रय करने योग्य है।

द्विना संज्ञ्यसंज्ञिभेदेन द्विधा संज्ञिमार्गणा । १३ । आहारकानाहारकजीवभेदेनाहारक-मार्गणापि द्विधा । १४ । इति चतुर्दशमार्गणास्वरूपं ज्ञातव्यम् । एवं "पुढविजलतेय-वाऊ" इत्यादिगाथाद्वयेन, तृतीयगाथापादत्रयेण च "गुणजीवापज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओय । उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया । १ ।" इति गाथाप्रभृतिकथितस्वरूपं धवलजयधवलमहाधवलप्रबन्धाभिधानसिद्धान्तत्रयबीजपदं सूचि-तम् । "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" इति शुद्धात्मतत्त्वप्रकाशकं तृतीयगाथाचतुर्थपादेन पञ्चास्तिकायप्रवचनसारसमयसाराभिधानप्राभृतत्रयस्यापि बीजपदं सूचितमिति । अत्र गुणस्थानमार्गणादिमध्ये केवलज्ञानदर्शनद्वयं क्षायिकसम्यक्त्वमनाहारकशुद्धात्मस्वरूपं च साक्षादुपादेयं, यत्पुनश्च शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणं कारणसमयसारस्वरूपं तत्तस्यैवोपादेयभूतस्य विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन साधकत्वात्पारम्पर्येणोपादेयं शेषं तु

मार्गणा संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे दो प्रकारकी है ।।१३।। आहारक और अना-हारक जीवोंके भेदसे आहारमार्गणा भी दो प्रकारकी है ।।१४।।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंका स्वरूप जानना ।

इस प्रकार "पुढविजलतेयवाऊ" इत्यादि दो गाथाओंसे और तीसरी गाथाके तीन पादोंसे ग्रंथकारने धवल-जयधवल-महाधवल प्रवंध नामक तीन सिद्धांतग्रंथोंके वीजपदको सूचित किया है—जिसका स्वरूप (जिस बीजपदका स्वरूप) "गुणजीवा-पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओय । उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया ।" गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग—इस प्रकार क्रमपूर्वक वीस [1]प्ररूपणा कही हैं ।" इस (गोम्मटसारकी) गाथा आदिमें कहा । "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" (शुद्धनयसे सर्व जीव वास्तवमें शुद्ध हैं)" इस तीसरी गाथाके चौथे पादसे—जो शुद्धात्मतत्त्वका प्रकाशक है उससे—पंचास्तिकाय, प्रव-चनसार और समयसार इन तीन प्राभृतोंके बीजपदको सूचित किया है ।

यहां गुणस्थान और मार्गणास्थान आदिमें केवलज्ञान और केवलदर्शन—ये दो, क्षायिकसम्यक्त्व, अनाहारक शुद्धात्मस्वरूप [2]साक्षात् उपादेय हैं और शुद्धात्माके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप कारणसमयसार है वही उपादेयभूतका (केवलज्ञा-नादिका) विवक्षित एकदेश शुद्धनयकी अपेक्षासे साधक होनेसे परंपरासे उपादेय है;

१–गोम्मटसार जीवकांड गाथा–२
२–'प्रगट करने योग्य' उपादेय है ।

हेयमिति । यच्चाध्यात्मग्रन्थस्य बीजपदभूतं शुद्धात्मस्वरूपमुक्तं तत्पुनरुपादेयमेव । अनेन प्रकारेण जीवाधिकारमध्ये शुद्धाशुद्धजीवकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथात्रयं गतम् ॥१३॥

अथेदानीं गाथापूर्वार्द्धेन सिद्धस्वरूपमुत्तरार्द्धेन पुनरूर्ध्वगतिस्वभावं च कथयति—

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥

निष्कर्म्माणः अष्टगुणाः किंचिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः ।
लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः ॥१४॥

व्याख्या—'सिद्धा' सिद्धा भवन्तीति क्रियाध्याहारः । किं विशिष्टाः ? "णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो" निष्कर्माणोऽष्टगुणाः किञ्चिदूनाश्चरमदेहतः

इसके अतिरिक्त सब हेय हैं। अध्यात्म-ग्रन्थके बीजपदभूत जो शुद्धात्मस्वरूप कहा है वह तो उपादेय ही है।

इस प्रकार जीवाधिकारमें शुद्ध और अशुद्ध जीवके कथनकी मुख्यतासे सप्तम स्थलमें तीन गाथाएं पूर्ण हुईं ॥१३॥

अब, यहां गाथाके पूर्वार्धसे सिद्धोंका स्वरूप और उत्तरार्धसे उनका उर्ध्वगमन स्वभाव कहते हैं:—

गाथा–१४

गाथार्थः—सिद्ध भगवान कर्मोंसे रहित हैं, आठ गुणोंके धारक हैं, अन्तिम शरीरसे कुछ न्यून (कम) आकारवाले हैं, लोकके अग्रभागमें स्थित हैं, नित्य हैं और उत्पाद-व्ययसे युक्त हैं।

टीकाः—"सिद्धा" सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यहां 'भवन्ति' (होते हैं) क्रिया अध्याहार है। कैसे होते हैं? "णिक्कम्मा अट्ठगुणाः किंचूणा चरमदेहदो" कर्मोंसे

अष्टकर्म हति अठ गुण पाय, चरमदेहतैं किछू उनाय ।
लोकअंत थित सिद्ध कहाय, नित उत्पाद नाश हू भाय ॥१४॥

सकाशादिति सूत्रपूर्वार्द्धेन सिद्धस्वरूपमुक्तम् । ऊर्ध्वगमनं कथ्यते "लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता" ते च सिद्धा लोकाग्रस्थिता नित्या उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः । अतो विस्तरः—कर्मारिविध्वंसकस्वशुद्धात्मसंवित्तिबलेन ज्ञानावरणादिमूलोत्तरगतसमस्त-कर्मप्रकृतिविनाशकत्वादष्टकर्मरहिताः "सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं । अगुरुलहुअव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं । १ । इति गाथाकथितक्रमेण तेषामष्ट-कर्मरहितानामष्टगुणाः कथ्यन्ते । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणास्पदनिजशुद्धात्मैवोपादेयं इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं यत्पूर्वं तपश्चरणावस्थायां भावितं तस्य फलभूतं समस्त-जीवादितत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशरहितपरिणतिरूपं परमक्षायिकसम्यक्त्वं भण्यते । पूर्वं छद्मस्थावस्थायां भावितस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य फलभूतं युगपल्लोकालोक-समस्तवस्तुगतविशेषपरिच्छेदकं केवलज्ञानम् । निर्विकल्पस्वशुद्धात्मसत्तावलोकनरूपं यत्पूर्वं

रहित, आठ गुणोंसे सहित, अंतिम शरीरसे कुछ न्यून ऐसे सिद्ध हैं–होते हैं; इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धसे सिद्धोंका स्वरूप कहा । अब, उनका उर्ध्वगमन स्वभाव कहा जाता है : "लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता" वे सिद्ध भगवान लोकके अग्र-भागमें स्थित हैं, नित्य हैं और उत्पाद-व्ययसे संयुक्त हैं ।

अब विस्तार कहा जाता है:—कर्मशत्रुओंके विध्वंसक स्वशुद्धात्माकी संवित्तिके (संवेदनके) बलसे ज्ञानावरणादि मूल और उत्तर समस्त कर्मप्रकृतियोंका विनाश करनेके कारण सिद्ध भगवान आठ कर्मसे रहित हैं । "सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं । अगुरुलहुअव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।१।" (सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध–ये सिद्धोंके आठ गुण होते हैं)" इस [1]गाथामें कथित क्रमपूर्वक, आठ कर्मरहित सिद्धोंके आठ गुण कहे जाते हैं :

'केवलज्ञानादि गुणोंके स्थानरूप निज शुद्धात्मा ही उपादेय है' ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व जो पहले तपश्चर्याकी अवस्थामें भावित किया था (भावनाकी थी, अनुभव किया था) उसके फलभूत, समस्त जीवादि तत्त्वोंके विषयमें विपरीत–अभिनिवेशरहित परिणतिरूप 'परम क्षायिक सम्यक्त्व' कहलाता है ।।१।।

पहले छद्मस्थ अवस्थामें भावित किया हुआ (भावनामें आया हुआ, अनुभव किया हुआ) निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानके फलभूत, युगपद् लोक और अलोककी समस्त वस्तुओंके विशेषोंका ज्ञाता 'केवलज्ञान' है ।।२।। जो निर्विकल्प स्वशुद्धात्म-

---

१–वसुनन्दि श्रावकाचार गाथा–५३७

दर्शनं भावितं तस्यैव फलभूतं युगपल्लोकालोकसमस्तवस्तुगतसामान्यग्राहकं केवल-दर्शनम् । कस्मिंश्चित्स्वरूपचलनकारणे जाते सति घोरपरीषहोपसर्गादौ निजनिरञ्जन-परमात्मध्याने पूर्वं यत् धैर्यमवलम्बितं तस्यैव फलभूतमनन्तपदार्थपरिच्छित्तिविषये खेद-रहितत्वमनन्तवीर्यम् । सूक्ष्मातीन्द्रियकेवलज्ञानविषयत्वात्सिद्धस्वरूपस्य सूक्ष्मत्वं भण्यते । एकदीपप्रकाशे नानादीपप्रकाशवदेकसिद्धक्षेत्रे सङ्करव्यतिकरदोषपरिहारेणानन्तसिद्धावकाश-दानसामर्थ्यमवगाहनगुणो भण्यते । यदि सर्वथा गुरुत्वं भवति तदा लोहपिण्डवदधःपतनं, यदि च सर्वथा लघुत्वं भवति तदा वाताहतार्कतूलवत्सर्वदैव भ्रमणमेव स्यान्न च तथा तस्मादगुरुलघुत्वगुणोऽभिधीयते । सहजशुद्धस्वरूपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभावरहितसुखा-मृतस्य यदेकदेशसंवेदनं कृतं पूर्वं तस्यैव फलभूतमव्याबाधमनन्तसुखं भण्यते । इति मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं भणितम् । विस्तररुचिशिष्यं प्रति पुन-र्विशेषभेदनयेन निर्गतित्वं, निरिन्द्रियत्वं, निष्कायत्वं, निर्योगत्वं, निर्वेदत्वं, निष्कषायत्वं,

---

सत्ताके अवलोकनरूप दर्शन पहले भावित किया था उसीके फलभूत, युगपद् लोका-लोककी समस्त वस्तुओंके सामान्यको ग्रहण करनेवाला 'केवलदर्शन' है ।।३।। आत्म-स्वरूपसे चलित होनेका कोई कारण उत्पन्न होनेपर घोर परीषह अथवा उपसर्गादि में निजनिरंजन परमात्माके ध्यानमें पहले जो धैर्यका अवलंबन किया था उसीके फलभूत, अनंत पदार्थोको जाननेमें खेदके अभावरूप 'अनंतवीर्य' है ।।४।। सूक्ष्म अतीन्द्रिय केवलज्ञानका विषय होनेके कारण सिद्धोंके स्वरूपको 'सूक्ष्मत्व' कहते हैं ।।५।। जैसे एक दीपकके प्रकाशमें अनेक दीपकोंका प्रकाश समा जाता है उसीप्रकार एक सिद्धके क्षेत्रमें संकर-व्यतिकर दोष विना अनंत सिद्धोंको अवकाश देनेका सामर्थ्य वह 'अवगाहन' गुण कहलाता है ।।६।। यदि सिद्ध सर्वथा गुरु हों तो लोहेके पिंडकी भांति नीचे गिरें; और यदि सर्वथा लघु हों तो पवनसे प्रेरित आककी रुईकी भांति सदा उड़ते ही रहें; परन्तु ऐसा है नहीं । अतः उनके 'अगुरुलघु' गुण कहा जाता है ।।७।। सहज शुद्धस्वरूप-अनुभवसे उत्पन्न, रागादि विभावरहित सुखामृतका एक-देश संवेदन जो पहले किया था उसके ही फलभूत 'अव्याबाध अनन्तसुख' कहा जाता है ।।८।। इस प्रकार मध्यमरुचियुक्त शिष्यके लिये सम्यक्त्वादि आठ गुणोंका कथन किया ।

विस्ताररुचि शिष्यके लिये विशेष भेदनयसे निर्गतित्व (गतिरहितपना), निरिन्द्रियत्व (इन्द्रियरहितपना), निष्कायत्व (शरीररहितपना), निर्योगत्व (योग-रहितपना), निर्वेदत्व (वेदरहितपना), निष्कषायत्व (कषायरहितपना), निर्नामत्व

निर्नामत्वं, निर्गोत्रत्वं, निरायुषत्वमित्यादिविशेषगुणास्तथैवास्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वादि-सामान्यगुणाः स्वागमाविरोधेनानन्ता ज्ञातव्याः। संक्षेपरुचिशिष्यं प्रति पुनर्विवक्षिताभेदनयेनानन्तज्ञानादिचतुष्टयम्, अनन्तज्ञानदर्शनसुखत्रयं, केवलज्ञानदर्शनद्वयं, साक्षादभेदनयेन शुद्धचैतन्यमेवैको गुण इति। पुनरपि कथंभूताः सिद्धाः? चरमशरीरात् किञ्चिदूना भवन्ति। तत् किञ्चिदूनत्वं शरीरोपाङ्गजनितनासिकादिछिद्राणामपूर्णत्वे सति यस्मिन्नेव क्षणे सयोगिचरमसमये त्रिंशत्प्रकृति-उदयविच्छेदमध्ये शरीरोपाङ्गनामकर्मविच्छेदो जातस्तस्मिन्नेव क्षणे जातमिति ज्ञातव्यम्। कश्चिदाह—यथा प्रदीपस्य भाजनाद्यावरणे गते प्रकाशस्य विस्तारो भवति तथा देहाभावे लोकप्रमाणेन भाव्यमिति? तत्र परिहारमाह—प्रदीपसम्बन्धी योऽसौ प्रकाशविस्तारः पूर्वं स्वभावेनैव तिष्ठति पश्चादावरणं जातं; जीवस्य तु लोकमात्रासंख्येयप्रदेशत्वं स्वभावो भवति यस्तु प्रदेशानां सम्बन्धी विस्तारः स स्वभावो न भवति। कस्मादिति चेत्, पूर्वं लोकमात्रप्रदेशा विस्तीर्णा निरावरणास्तिष्ठन्ति, पश्चात् प्रदीपवदावरणं जातमेव। तन्न,

---

(नामरहितपना), निर्गोत्रत्व (गोत्ररहितपना), निरायुषत्व (आयुष्यरहितपना) —इत्यादि विशेष गुण तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि सामान्य गुण स्व-आगमसे अविरोधरूपसे (जैनागम अनुसार) अनंत जानना।

संक्षेपरुचि शिष्यके लिये विवक्षित अभेदनयसे (सिद्धको) अनंतज्ञान आदि चार गुण अथवा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन और अनंतसुख ये तीन गुण अथवा केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो गुण हैं; साक्षात् अभेदनयसे शुद्धचैतन्य ही एक गुण है।

तथा वे सिद्ध कैसे हैं? चरम (अंतिम) शरीरसे कुछ न्यून हैं। वह किंचित् न्यूनपना, शरीर-उपांगजनित नासिकादि छिद्र अपूर्ण होनेसे जिस क्षण सयोगी गुणस्थानके चरम समयमें तीस प्रकृतियोंके उदयका नाश हुआ, उनमें शरीरोपांग नामकर्मका भी नाश हुआ, उसी क्षण हो गया ऐसा जानना। कोई शंका करता है कि—जिस प्रकार दीपकको ढकनेवाले पात्र आदि दूर होने पर, दीपकके प्रकाशका विस्तार हो जाता है उसी प्रकार शरीरका अभाव होने पर सिद्धोंका आत्मा भी फैलकर लोकप्रमाण हो जाना चाहिये। उसका समाधान किया जाता है:—दीपकके प्रकाशका जो विस्तार है वह पहलेसे स्वभावसे ही होता है, पश्चात् उस दीपकका आवरण हुआ है; परंतु जीवका तो लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशीपना स्वभाव है, प्रदेशोंका विस्तार वह स्वभाव नहीं है। प्रश्नः—'ऐसा किसलिये? जीवके लोकप्रमाण प्रदेश पहले विस्तीर्ण (—लोकमें फैले हुए), निरावरण होते हैं और पश्चात् दीपककी

किन्तु पूर्वमेवानादिसन्तानरूपेण शरीरेणावृतास्तिष्ठन्ति ततः कारणात्प्रदेशानां संहारो न भवति, विस्तारश्च शरीरनामकर्माधीन एव, न च स्वभावस्तेन कारणेन शरीराभावे विस्तारो न भवति । अपरमप्युदाहरणं दीयते—यथा हस्तचतुष्टयप्रमाणवस्त्रं पुरुषेण मुष्टौ बद्धं तिष्ठति पुरुषाभावे सङ्कोचविस्तारौ वा न करोति, निष्पत्तिकाले सार्द्रं मृन्मयभाजनं वा शुष्कं सज्जलाभावे सति; तथा जीवोऽपि पुरुषस्थानीयजलस्थानीय शरीराभावे विस्तारसंकोचौ न करोति । यत्रैव मुक्तस्तत्रैव तिष्ठतीति ये केचन वदन्ति, तन्निषेधार्थं पूर्वप्रयोगादसंङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामात् चेति हेतुचतुष्टयेन तथैवाविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टान्तचतुष्टयेन च स्वभावोर्द्धगमनं ज्ञातव्यं, तच्च लोकाग्रपर्यन्तमेव, न च परतो धर्मास्तिकायाभावादिति । 'नित्या' इति विशेषणं तु, मुक्तात्मनां कल्पशतप्रमितकाले गते

भांति आवरण हुआ है ।' उत्तरः—इस प्रकार नहीं है । परन्तु जीवके प्रदेश तो पहलेसे ही अनादि संतानरूपसे शरीरसे आवृत्त रहे हैं अतः (जीवके) प्रदेशोंका संकोच (बादमें) नहीं होता है । तथा विस्तार शरीरनामकर्मके आधीन ही है, स्वभाव नहीं है; इस कारण शरीरका अभाव होने पर प्रदेशोंका विस्तार नहीं होता है । यहां अन्य उदाहरण दिया जाता है:—(१) जैसे चार हाथ लम्बा वस्त्र किसी मनुष्यने मुट्ठीमें रखा हो वह, (मुट्ठी खोलनेके बादमें) पुरुषके अभावमें संकोच या विस्तार नहीं करता है, अथवा (२) जैसे गीली मिट्टीका बर्तन बनते समय संकोच और विस्तारको प्राप्त होता है परंतु जब वह सूख जाता है तब जलका अभाव होनेसे संकोच और विस्तारको प्राप्त नहीं होता; उसी प्रकार (मुक्त) जीव भी (१) पुरुषस्थानीय अथवा (२) जलस्थानीय शरीरका अभाव होने पर संकोच-विस्तारको प्राप्त नहीं होता ।

कोई कहता है कि "जीव जहां मुक्त होता है वहां ही रहता है" उसका निषेध करनेके लिये, पूर्वके प्रयोगसे, असंग होनेसे, बंधका छेद होनेसे तथा गति परिणामसे –इन चार हेतुओं द्वारा तथा कुम्हारके घूमते हुए चाककी भांति, जिसका मिट्टीका लेप दूर हुआ है ऐसी तूंबीकी भांति, एरंडके बीजकी भांति और अग्निकी शिखाकी भांति–इन चार दृष्टांतों द्वारा, जीवको 'स्वभावसे ही उर्ध्वगमन जानना' और वह (उर्ध्वगमन) लोकके अग्रभाग तक ही होता है, उससे आगे नहीं होता क्योंकि धर्मास्तिकायका (आगे) अभाव है ।

'सिद्ध भगवान नित्य हैं' ऐसा जो 'नित्य' विशेषण है वह, सदाशिववादी

जगति शून्ये जाते सति पुनरागमनं भवतीति सदाशिववादिनो वदन्ति, तन्निषेधार्थं विज्ञेयम् । 'उत्पादव्ययसंयुक्तत्वं', विशेषणं सर्वथैवापरिणामित्वनिषेधार्थमिति । किञ्च विशेषः निश्चलाविनश्वरशुद्धात्मस्वरूपाद्भिन्नं सिद्धानां नारकादिगतिषु भ्रमणं नास्ति कथमुत्पादव्ययत्वमिति ? तत्र परिहारः—आगमकथितागुरुलघुषट्स्थानपतितहानिवृद्धिरूपेण येऽर्थपर्यायास्तदपेक्षया अथवा येन येनोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण प्रतिक्षणं ज्ञेयपदार्थाः परिणमन्ति तत्परिच्छित्त्याकारेणानीहितवृत्त्या सिद्धज्ञानमपि परिणमति तेन कारणेनोत्पादव्ययत्वम्, अथवा व्यञ्जनपर्यायापेक्षया संसारपर्यायविनाशः सिद्धपर्यायोत्पादः, शुद्धजीवद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति । एवं नयविभागेन नवाधिकारैर्जीवद्रव्यं ज्ञातव्यम् अथवा तदेव वहिरात्मान्तरात्मपरमात्मभेदेन त्रिधा भवति । तद्यथा—स्वशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नवास्तवसुखात्प्रतिपक्षभूतेनेन्द्रियसुखेनासक्तो वहिरात्मा, तद्विलक्षणोऽन्तरात्मा । अथवा देहरहितनिजशुद्धात्मद्रव्यभावनालक्षणभेदज्ञानरहितत्वेन

कहता है कि 'कल्पप्रमाण समय बीतने पर जब जगत शून्य हो जाता है तब मुक्त जीवोंका संसारमें पुनरागमन होता है', उसका निषेध करनेके लिये है, ऐसा जानना।

सिद्ध भगवानका एक विशेषण 'उत्पाद-व्यय संयुक्तपना' है वह सर्वथा अपरिणामीपनेका निषेध करनेके लिये है ।

तथा यहां विशेष समझाया जाता है कि—निश्चल अविनश्वर शुद्धात्मस्वरूपसे भिन्न नारकादि गतियोंमें सिद्धोंका भ्रमण नहीं होतातो सिद्धोंमें उत्पाद-व्यय किस प्रकार होता है ? उसका समाधानः—(१) आगममें कहे अनुसार अगुरुलघुगुणकी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धिरूप जो अर्थपर्यायें हैं उनकी अपेक्षासे (सिद्ध भगवानको उत्पाद-व्यय घटित होता है), अथवा (२) ज्ञेय पदार्थ अपने जिस-जिस उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूपसे प्रति समय परिणमित होते हैं उनकी ज्ञप्तिके आकारसे अनीहितवृत्तिसे (विना इच्छा) सिद्धका ज्ञान भी परिणमित होता है इस कारण सिद्धभगवानको उत्पाद-व्यय घटित होता है, अथवा (३) व्यंजन पर्यायकी अपेक्षासे सिद्धोंके संसार पर्यायका विनाश, सिद्धपर्यायका उत्पाद और शुद्ध जीवद्रव्यरूपसे ध्रौव्य है ।

इस प्रकार नयविभागसे नौ अधिकारों द्वारा जीवद्रव्य जानना ।

अथवा वही (जीव) बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्माके भेदसे तीन प्रकारका है । वह इस प्रकारः—स्वशुद्धात्मसंवित्तिसे उत्पन्न वास्तविक सुखसे प्रतिपक्षभूत इन्द्रियसुखमें आसक्त (जीव) बहिरात्मा है और उससे विलक्षण जीव अंतरात्मा है; अथवा देहरहित निज शुद्धात्मद्रव्यकी भावना जिसका लक्षण है ऐसे भेद-

देहादिपरद्रव्येष्वेकत्वभावनापरिणतो बहिरात्मा, तस्मात्प्रतिपक्षभूतोऽन्तरात्मा । अथवा हेयोपादेयविचारकचित्तं, निर्दोषपरमात्मनो भिन्ना रागादयो दोषाः, शुद्धचैतन्यलक्षण आत्मा, इत्युक्तलक्षणेषु चित्तदोषात्मसु त्रिषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतेषु अन्येषु वा पदार्थेषु यस्य परस्परसापेक्षनयविभागेन श्रद्धानं ज्ञानं च नास्ति स बहिरात्मा, तस्माद्विसदृशोऽन्तरात्मेति रूपेण बहिरात्मान्तरात्मनोर्लक्षणं ज्ञातव्यम् । परमात्मलक्षणं कथ्यते—सकलविमलकेवलज्ञानेन येन कारणेन समस्तं लोकालोकं जानाति व्याप्नोति तेन कारणेन विष्णुर्भण्यते । परमब्रह्मसंज्ञनिजशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसुखामृततृप्तस्य सत उर्वशीरम्भातिलोत्तमाभिर्देवकन्याभिरपि यस्य ब्रह्मचर्यव्रतं न खण्डितं स परमब्रह्म भण्यते । केवलज्ञानादिगुणैश्वर्ययुक्तस्य सतो देवेन्द्रादयोऽपि तत्पदाभिलाषिणः सन्तो यस्याज्ञां कुर्वन्ति स ईश्वराभिधानो भवति । केवलज्ञानशब्दवाच्यं गतं ज्ञानं यस्य स सुगतः, अथवा शोभनमविनश्वरं मुक्तिपदं गतः सुगतः । "शिवं परमकल्याणं निर्वाणं [1]ज्ञानमक्षयम् । प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्त्तितः । १ ।" इति श्लोककथित-

ज्ञानसे रहित होनेसे देहादि परद्रव्योंमें एकत्व भावनारूप परिणमित जीव बहिरात्मा है, उससे प्रतिपक्षभूत अंतरात्मा है। अथवा हेय और उपादेयका विचार करनेवाला 'चित्त', निर्दोष परमात्मासे भिन्न रागादि 'दोष' और शुद्धचैतन्यलक्षण 'आत्मा';—इन तीनोंका तथा वीतराग-सर्वज्ञ प्रणीत अन्य पदार्थोंका जिसे परस्पर सापेक्ष नय-विभागसे श्रद्धान और ज्ञान नहीं है वह बहिरात्मा है, उससे विरुद्ध अंतरात्मा है—इस प्रकार बहिरात्मा और अंतरात्माका लक्षण जानना।

(अब) परमात्माका लक्षण कहा जाता है:—सकलविमल केवलज्ञान द्वारा समस्त लोकालोकको जानता है—व्याप्त होता है अतः 'विष्णु' कहलाता है। परम-ब्रह्म नामक निजशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सुखामृत द्वारा तृप्त होनेसे उर्वशी, रंभा, तिलोत्तमा आदि देवकन्याओं द्वारा भी जिसका ब्रह्मचर्यव्रत खंडित नहीं होता वह 'परमब्रह्म' कहलाता है। केवलज्ञानादि गुणरूप ऐश्वर्य सहित होनेके कारण देवेन्द्रादि भी उस पदकी अभिलाषा करते हुए जिनकी आज्ञा मानते हैं, उन्हें 'ईश्वर' नाम होता है। केवलज्ञान शब्दसे वाच्य, 'सु' अर्थात् उत्तम, 'गत' अर्थात् ज्ञान जिसको है वह 'सुगत' है, अथवा जिसने शोभायमान अविनश्वर मुक्तिपदको प्राप्त किया है वह 'सुगत' है। 'शिवं परमकल्याणं निर्वाणं ज्ञानमक्षयम् । प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्त्तितः ।१।" (शिव अर्थात् परमकल्याण, निर्वाण और अक्षयज्ञान-

१–'शांतम्' इति पाठान्तरम् ।

लक्षणः शिवः । कामक्रोधादिदोषजयेनानन्तज्ञानादिगुणसहितो जिनः । इत्यादिपरमागम-कथिताष्टोत्तरसहस्रसंख्यनामवाच्यः परमात्मा ज्ञातव्यः । एवमेतेषु त्रिविधात्मसु मध्ये मिथ्यादृष्टिभव्यजीवे बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण तिष्ठति, अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेण भाविनैगमनयापेक्षया व्यक्तिरूपेण च । अभव्यजीवे पुनर्बहिरात्मा व्यक्तिरूपेण अन्तरात्मपरमात्मद्वयं शक्तिरूपेणैव, न च भाविनैगमनयेनेति । यद्यभव्यजीवे परमात्मा शक्तिरूपेण वर्तते तर्हि कथमभव्यत्वमिति चेत् ? परमात्मशक्तेः केवलज्ञानादिरूपेण व्यक्तिः न भविष्यतीत्यभव्यत्वं, शक्तिः पुनः शुद्धनयेनोभयत्र समाना । यदि पुनः शक्तिरूपेणाप्यभव्यजीवे केवलज्ञानं नास्ति तदा केवलज्ञानावरणं न घटते । भव्याभव्यद्वयं पुनरशुद्धनयेनेति भावार्थः । एवं यथा मिथ्यादृष्टिसंज्ञे बहिरात्मनि नयविभागेन दर्शितमात्मत्रयं तथा शेषगुणस्थानेष्वपि । तद्यथा—बहिरात्मावस्थायामन्तरात्मपरमात्मद्वयं

रूप मुक्तिपदको जिसने प्राप्त किया है वह [1]"शिव' कहलाता है)"—इस श्लोकमें कथित लक्षणयुक्त 'शिव' हैं । काम-क्रोधादि दोषका जय करनेसे अनन्तज्ञानादि गुण-सहित वह 'जिन' हैं—इत्यादि परमागममें कहे हुए एक हजार और आठ नामोंसे वाच्य परमात्मा जानना ।

इस प्रकार इन त्रिविध आत्माओंमें, मिथ्यादृष्टि भव्यजीवमें बहिरात्मा व्यक्त-रूपसे रहता है, अंतरात्मा और परमात्मा ये दो शक्तिरूपसे रहते हैं और भावि-नैगमनयकी अपेक्षासे व्यक्तिरूपसे भी रहते हैं । अभव्यजीवमें बहिरात्मा व्यक्तरूपसे तथा अंतरात्मा और परमात्मा—ये दो शक्तिरूपसे ही रहते हैं; भाविनैगमनयकी अपेक्षासे भी उसमें अंतरात्मा और परमात्मा व्यक्तिरूपसे नहीं रहते हैं । प्रश्नः—यदि अभव्यजीवमें परमात्मा शक्तिरूपसे रहता है तो उसमें अभव्यत्व किस प्रकार है ? उत्तरः—अभव्यजीवमें परमात्म शक्तिकी व्यक्तता केवलज्ञानादिरूपसे नहीं होती है अतः उसमें अभव्यत्व है और शक्ति तो (परमात्मशक्ति तो) शुद्धनयकी अपेक्षासे अभव्य और भव्य दोनोंमें समान है । तथा यदि अभव्यजीवमें शक्तिरूपसे भी केवलज्ञान नहीं हो तो उसे केवलज्ञानावरण कर्म सिद्ध नहीं होता है । भव्यत्व और अभव्यत्व—ये दोनों अशुद्धनयकी अपेक्षासे हैं ऐसा भावार्थ है ।

इस प्रकार जैसे 'मिथ्यादृष्टि' संज्ञक बहिरात्मामें नयविभागसे तीनों आत्मा दिखलाये हैं, वैसे ही शेष गुणस्थानोंमें भी समझना । वह इसप्रकार—बहिरात्म-अवस्थामें अंतरात्मा और परमात्मा—ये दोनों शक्तिरूपसे और भाविनैगमनयसे

१-आप्तस्वरूप गाथा २४

शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च विज्ञेयम्, अन्तरात्मावस्थायां तु बहिरात्मा भूतपूर्वनयेन घृतघटवत्, परमात्मस्वरूपं तु शक्तिरूपेण भाविनैगमनयेन व्यक्तिरूपेण च। परमात्मावस्थायां पुनरन्तरात्मबहिरात्मद्वयं भूतपूर्वनयेनेति। अथ त्रिधात्मानं गुणस्थानेषु योजयति। मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्यन्यूनाधिकभेदेन बहिरात्मा ज्ञातव्यः, अविरतगुणस्थाने तद्योग्याशुभलेश्यापरिणतो जघन्यान्तरात्मा, क्षीणकषायगुणस्थाने पुनरुत्कृष्टः, अविरतक्षीणकषाययोर्मध्ये मध्यमः, सयोग्ययोगिगुणस्थानद्वये विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन सिद्धसदृशः परमात्मा, सिद्धस्तु साक्षात्परमात्मेति। अत्र बहिरात्मा हेयः, उपादेयभूतस्यानन्तसुखसाधकत्वादन्तरात्मोपादेयः, परमात्मा पुनः साक्षादुपादेय इत्यभिप्रायः। एवं षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकप्रथमाधिकारमध्ये नमस्कारादिचतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्जीवद्रव्यकथनरूपेण प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः ॥ १४ ॥

व्यक्तिरूपसे भी रहते हैं, ऐसा जानना। अंतरात्म-अवस्थामें बहिरात्मा भूतपूर्वनयसे तथा घीके घड़ेकी भांति और परमात्मस्वरूप शक्तिरूपसे तथा भाविनैगमनयसे व्यक्तिरूपसे भी रहता है। परमात्म-अवस्थामें अंतरात्मा और बहिरात्मा दोनों भूतपूर्वनयसे रहते हैं।

अब तीन प्रकारके आत्माओंको गुणस्थानोंमें घटित करते हैं: मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र—इन तीन गुणस्थानोंमें तारतम्यरूप न्यूनाधिक भेदसे बहिरात्मा जानना। अविरत गुणस्थानमें उसके योग्य अशुभ लेश्यारूपसे परिणमित (जीव) जघन्य अंतरात्मा हैं और क्षीणकषाय गुणस्थानमें उत्कृष्ट अंतरात्मा है; अविरत और क्षीणकषाय गुणस्थानके बीचके गुणस्थानोंमें मध्यम अंतरात्मा हैं; सयोगी और अयोगी गुणस्थानमें विवक्षित एकदेश शुद्धनयकी अपेक्षासे सिद्ध सदृश परमात्मा हैं और सिद्ध तो साक्षात् परमात्मा है।

यहां बहिरात्मा हेय है, उपादेयभूत अनंतसुखका साधक होनेसे अंतरात्मा [1]उपादेय है और परमात्मा तो साक्षात् [1]उपादेय है—ऐसा अभिप्राय है।

इस प्रकार षड्द्रव्य-पंचास्तिकायके प्रतिपादक प्रथम अधिकारमें नमस्कार–गाथादि चौदह गाथाओं द्वारा नौ अंतरस्थलों द्वारा जीवद्रव्यके कथनरूपसे प्रथम अंतराधिकार पूर्ण हुआ ॥१४॥

१–यह, प्रगट करने योग्य रूपसे उपादेय है। वह पर्याय होनेसे आश्रय करने योग्य नहीं है। आश्रय करने योग्य तो सदा निज त्रिकाली ध्रुव शुद्धात्मा ही है। देखो गाथा १५ की भूमिका तथा नियमसार गाथा–५०

अतः परं यद्यपि शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यमुपादेयं भवति तथापि हेयरूपस्याजीवद्रव्यस्य गाथाष्टकेन व्याख्यानं करोति । कस्मादिति चेत् ? हेयतत्त्व-परिज्ञाने सति पश्चादुपादेयस्वीकारो भवतीति हेतोः । तद्यथा—

अज्जीवो पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु (हु) ॥१५॥

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशम् ।
कालः पुद्गलः मूर्त्तः रूपादिगुणः अमूर्त्ताः शेषाः तु ॥१५॥

व्याख्या—"अज्जीवो पुण णेओ" अजीवः पुनर्ज्ञेयः । सकलविमलकेवल-ज्ञानदर्शनद्वयं शुद्धोपयोगः, मतिज्ञानादिरूपो विकलोऽशुद्धोपयोग इति द्विविधोपयोगः, अव्यक्तसुखदुःखानुभवनरूपा कर्मफलचेतना, तथैव मतिज्ञानादिमनःपर्ययपर्यन्तमशुद्धो-

इसके पश्चात्, यद्यपि शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव जिसका है वैसा परमात्मद्रव्य [1]उपादेय है तो भी [2]हेयरूप अजीव द्रव्यका आठ गाथाओं द्वारा व्याख्यान करते हैं। किसलिये ? प्रथम हेयतत्त्वका परिज्ञान होने पर फिर उपादेय तत्त्वका स्वीकार होता है इस कारणसे । वह व्याख्यान इस प्रकार है :—

गाथा–१५

गाथार्थः—पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल–ये अजीव द्रव्य जानना, रूपादि गुणका धारक पुद्गल मूर्त द्रव्य है और शेष (चार) अमूर्त हैं ।

टीकाः—"अज्जीवो पुण णेओ" तथा, अजीव जानने योग्य है । सकलविमल केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों शुद्ध उपयोग हैं, मतिज्ञानादिरूप विकल-अशुद्ध उपयोग है; इस प्रकार उपयोग दो प्रकार है । अव्यक्त सुख-दुःखके अनुभवरूप 'कर्मफल चेतना' है, और मतिज्ञानसे मनःपर्ययज्ञान पर्यंत अशुद्धोपयोगरूप ऐसी, स्व-

१–यह आश्रय करने योग्यरूपसे सदा उपादेय है ।
२–उसका आश्रय छोड़ने योग्य होनेसे हेय है ।

अब अजीव कौ सुनौ विलास, पुद्गल धर्म अधर्म अकास ।
काल, तहां मूरत पुद्गला, रूपादिक युत, शेष न रला ॥१५॥

पयोग इति, स्वेहापूर्वेष्टानिष्टविकल्परूपेण विशेषरागद्वेषपरिणमनं कर्मचेतना, केवलज्ञानरूपा शुद्धचेतना इत्युक्तलक्षणोपयोगश्चेतना च यत्र नास्ति स भवत्यजीव इति विज्ञेयः । 'पुण' पुनः पश्चाज्जीवाधिकारानन्तरं । "पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं कालो" स च पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्यभेदेन पञ्चधा । पूरणगलनस्वभावत्वात्पुद्गल इत्युच्यते । गतिस्थित्यवगाहवर्त्तनालक्षणा धर्माधर्माकाशकालाः, "पुग्गल मुत्तो" पुद्गलो मूर्त्तः । कस्मात् ? "रूवादिगुणो" रूपादिगुणसहितो यतः । "अमुत्ति सेसा हु" रूपादिगुणाभावादमूर्त्ता भवन्ति पुद्गलाच्छेषाश्चत्वार इति । तथाहि—यथा अनन्त ज्ञानदर्शनसुखवीर्यगुणचतुष्टयं सर्वजीवसाधारणं तथा रूपरसगन्धस्पर्शगुणचतुष्टयं सर्वपुद्गलसाधारणं, यथा च शुद्धबुद्धैकस्वभावसिद्धजीवे अनन्तचतुष्टयमतीन्द्रियं तथैव शुद्धपुद्गलपरमाणुद्रव्ये रूपादिचतुष्टयमतीन्द्रियं, यथा रागादिस्नेहगुणेन कर्मबन्धावस्थायां ज्ञानादिचतुष्टयस्याशुद्धत्वं तथा स्निग्धरूक्षत्वगुणेन द्व्यणुकादिबन्धावस्थायां रूपादिचतुष्टयस्याशुद्धत्वं, यथा निःस्नेहनिजपरमात्मभावनाबलेन रागादिस्निग्धत्वविनाशे सत्यनंतचतु-

---

ईहापूर्वक इष्ट-अनिष्ट विकल्परूपसे विशेष राग-द्वेषके परिणमनरूप 'कर्मचेतना' है, केवलज्ञानरूप 'शुद्धचेतना' है । इस प्रकार उपरोक्त प्रकारके लक्षणयुक्त उपयोग और चेतना जिसमें नहीं है वह अजीव है, ऐसा जानना; 'पुण' पश्चात्, अर्थात् जीव अधिकारके पश्चात् "पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं कालो" और वह (अजीव) पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यके भेदसे पांच प्रकारका है ।

पूरण और गलनका स्वभाव होनेसे पुद्गल कहलाता है । गति, स्थिति, अवगाह और वर्तना (हेतुरूप) लक्षणयुक्त (क्रमपूर्वक) धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य हैं । "पुग्गल मुत्तो" पुद्गल मूर्त है । किसलिये ? "रूवादिगुणो" रूपादि गुणयुक्त है इसलिये । "अमुत्ति सेसा हु" पुद्गलके अतिरिक्त शेष चार द्रव्य रूपादि गुण रहित होनेसे अमूर्त हैं । वह इस प्रकार—

जैसे अनंतज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य—ये चारों गुण सर्व जीवोंमें सामान्य हैं वैसे ही रूप, रस, गंध और स्पर्श—ये चारों गुण सर्व पुद्गलोंमें सामान्य हैं और जिस प्रकार शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावयुक्त सिद्ध जीवमें अनंतचतुष्टय अतीन्द्रिय है उसी प्रकार शुद्ध पुद्गल परमाणु द्रव्यमें रूपादि चतुष्टय अतीन्द्रिय है । जिस प्रकार रागादि स्नेहगुणसे कर्मबंधकी अवस्थामें ज्ञानादि चतुष्टयका अशुद्धपना है, उसी प्रकार स्निग्ध-रुक्षत्वगुणसे द्वि-अणुकादि बंध-अवस्थामें रूपादि चतुष्टयका अशुद्धपना है । जिस प्रकार स्नेह रहित निजपरमात्मभावनाके बलसे रागादि स्निग्धत्वका विनाश

ष्टयस्य शुद्धत्वं तथा जघन्यगुणानां बन्धो न भवतीति वचनात्परमाणुद्रव्ये स्निग्धरूक्षत्व-गुणस्य जघन्यत्वे सति रूपादिचतुष्टयस्य शुद्धत्वमवबोद्धव्यमित्यभिप्रायः ॥१५॥

अथ पुद्गलद्रव्यस्य विभावव्यञ्जनपर्यायान्प्रतिपादयतिः—

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः संस्थानभेदतमश्छायाः।
उद्योतातपसहिताः पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥१६॥

व्याख्या—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतसहिताः पुद्-गलद्रव्यस्य पर्याया भवन्ति। अथ विस्तरः—भाषात्मकोऽभाषात्मकश्च द्विविधः शब्दः। तत्राक्षरानक्षरात्मभेदेन भाषात्मको द्विधा भवति। तत्राप्यक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतापभ्रंश-पैशाचिकादिभाषाभेदेनार्यम्लेच्छमनुष्यादिव्यवहारहेतुर्बहुधा। अनक्षरात्मकस्तु द्वीन्द्रियादि-

---

होने पर अनंतचतुष्टय शुद्ध होता है उसी प्रकार "जघन्य गुणोंका बंध नहीं होता" इस वचनके अनुसार परमाणुद्रव्यमें स्निग्ध-रुक्षत्वगुणकी जघन्यता होने पर रूपादि चतुष्टयका शुद्धपना होता है ऐसा जानना। ऐसा अभिप्राय है ॥१५॥

अब पुद्गल द्रव्यकी विभावव्यंजनपर्यायोंका प्रतिपादन करते हैं :—

गाथा—१६

गाथार्थः—शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें हैं।

टीकाः—शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें हैं।

अब विस्तार करते हैं:—भाषात्मक और अभाषात्मकके भेदसे शब्द दो प्रकारके हैं; वहां अक्षररूप और अनक्षररूप भेदसे भाषात्मक शब्दके दो भेद हैं। उनमें भी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रन्श, पिशाची आदि भाषाके भेदसे, आर्य अथवा म्लेच्छ मनुष्योंके व्यवहारके कारण अक्षरात्मक भाषा अनेक प्रकारकी है। अनक्षरात्मक भाषा दो इन्द्रियादि तिर्यंच जीवोंमें और सर्वज्ञकी दिव्यध्वनिमें होती है। अभाषात्मक

शब्द बंध सूक्षम अरु थूल, संसथान अरु भेद समूल।
तम, छाया, आताप, उजास, पुद्गल के पर्याय समास ॥१६॥

तिर्यग्जीवेषु सर्वज्ञदिव्यध्वनौ च । अभाषात्मकोऽपि प्रायोगिकवैस्रसिकभेदेन द्विविधः । "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः । १ ।" इति श्लोककथितक्रमेण प्रयोगे भवः प्रायोगिकश्चतुर्धा भवति । विस्रसा स्वभावेन भवो वैस्रसिको मेघादिप्रभवो वहुधा । किञ्च शब्दातीतनिजपरमात्मभावनाच्युतेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपञ्चेन्द्रियविषयासक्तेन च जीवेन यदुपार्जितं सुस्वर-दुःस्वरनामकर्म तदुदयेन यद्यपि जीवे शब्दो दृश्यते तथापि स जीवसंयोगेनोत्पन्नत्वाद् व्यवहारेण जीवशब्दो भण्यते, निश्चयेन पुनः पुद्गलस्वरूप एवेति । बन्धः कथ्यते— मृत्पिण्डादिरूपेण योऽसौ बहुधा बंधः स केवलः पुद्गलबंधः, यस्तु कर्मनोकर्मरूपः स जीवपुद्गलसंयोगबंधः । किञ्च विशेषः—कर्मबंधपृथग्भूतस्वशुद्धात्मभावनारहितजीवस्यानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यबंधः, तथैवाशुद्धनिश्चयेन योऽसौ रागादिरूपो भाव-

---

शब्द भी 'प्रायोगिक' और 'वैस्रसिक'के भेदसे दो प्रकार हैं । "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः ।।" (वीणा आदिके शब्दको 'तत', ढोल आदिके शब्दको 'वितत', मंजीरा आदिकी ध्वनिको 'घन' और वंशी आदिके शब्दको 'सुषिर' कहते हैं ।)[1]" इस श्लोकमें कथित क्रमानुसार प्रयोगसे हुए 'प्रायोगिक' शब्द चार प्रकारके हैं । विस्रसा अर्थात् स्वभावसे हुए ऐसे 'वैस्रसिक' शब्द बादलों आदि द्वारा होते हैं वे अनेक प्रकारके हैं ।

विशेषः—शब्दातीत निज परमात्माकी भावनासे च्युत हुए, शब्दादि मनोज्ञ और अमनोज्ञ पांच इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त जीवोंने जो सुस्वर और दुःस्वर नामक नामकर्म उपार्जित किया था उसके उदयसे यद्यपि जीवमें शब्द दिखलाई देता है तो भी उस जीवके संयोगसे उत्पन्न हुआ होनेसे व्यवहारसे 'जीवका शब्द' कहलाता है, परन्तु निश्चयसे तो वह शब्द पुद्गल स्वरूप ही है ।

अब बंधका कथन किया जाता है—मिट्टीके पिंडादिरूप जो यह अनेक प्रकारका बंध है वह तो केवल पुद्गलबंध ही है और जो कर्म–नोकर्मरूप बंध है वह जीव और पुद्गलके संयोगरूप बंध है । तथा विशेषः—कर्मबंधसे पृथग्भूत स्वशुद्धात्माकी भावनासे रहित जीवको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे द्रव्यबंध कहलाता है उसी प्रकार अशुद्धनिश्चयनयसे जो यह रागादिरूप भावबंध कहलाता है वह भी शुद्ध-

---

१–श्री पंचास्तिकाय तात्पर्यवृत्ति गाथा ७९ टीका ।

वंधः कथ्यते सोऽपि शुद्धनिश्चयनयेन पुद्‌गलवंध एव । विल्वाद्यपेक्षया वदरादीनां सूक्ष्मत्वं, परमाणोः साक्षादिति; वदराद्यपेक्षया विल्वादीनां स्थूलत्वं, जगद्‌व्यापिनि महास्कन्धे सर्वोत्कृष्टमिति । समचतुरस्रन्यग्रोधसातिककुब्जवामनहुण्डभेदेनषट्‌प्रकारसंस्थानं यद्यपि व्यवहारनयेन जीवस्यास्ति तथाप्यसंस्थानाच्चिच्चमत्कारपरिणतेर्भिन्नत्वान्निश्चयेन पुद्‌गलसंस्थानमेव; यदपि जीवादन्यत्र वृत्तत्रिकोणचतुष्कोणादिव्यक्ताव्यक्तरूपं वहुधा संस्थानं तदपि पुद्‌गल एव । गोधूमादिचूर्णरूपेण घृतखण्डादिरूपेण वहुधा भेदो ज्ञातव्यः । दृष्टिप्रतिवन्धकोऽन्धकारस्तम इति भण्यते । वृक्षाद्याश्रयरूपा मनुष्यादिप्रतिविम्वरूपा च छाया विज्ञेया । उद्योतश्चंद्रविमाने खद्योतादितिर्यग्जीवेषु च भवति । आतप आदित्यविमाने अन्यत्रापि सूर्यकान्तमणिविशेषादौ पृथ्वीकाये ज्ञातव्यः । अयमत्रार्थः—यथा जीवस्य शुद्धनिश्चयेन स्वात्मोपलब्धिलक्षणे सिद्धस्वरूपे स्वभाव-

---

निश्चयनयसे पुद्‌गलवंध ही है ।

विल्वफल आदिकी अपेक्षासे वेर आदिका सूक्ष्मपना है और परमाणुको साक्षात् सूक्ष्मपना है । वेर आदिकी अपेक्षासे विल्व आदिका स्थूलपना है और तीनोंलोकमें व्याप्त महास्कन्धमें सवसे अधिक स्थूलता है ।

समचतुरस्र, न्यग्रोध, सातिक, कुब्जक, वामन और हुंडकके भेदसे छह प्रकारका संस्थान यद्यपि जीवको व्यवहारनयसे है तो भी संस्थानरहित चैतन्यचमत्कारकी परिणतिसे भिन्न होनेसे निश्चयनयसे वह संस्थान पुद्‌गलका ही है । जीवसे भिन्न जो गोल, त्रिकोण, चतुष्कोण आदि व्यक्त-अव्यक्तरूप अनेक प्रकारके संस्थान हैं वे भी पुद्‌गल ही हैं । गेहूँ आदिके चूर्णरूप तथा घी, शक्कर आदिरूप अनेक प्रकारके (संस्थान) भेद जानना ।

दृष्टिको रोकनेवाले अंधकारको 'तम' कहा जाता है ।

वृक्षादिके आश्रयसे होनेवाले तथा मनुष्यादिकी प्रतिच्छायारूप जो है उसे छाया जानना ।

चन्द्रके विमानमें तथा जुगनू आदि तिर्यंच जीवोंमें उद्योत होता है ।

सूर्यके विमानमें और अन्य भी सूर्यकान्तमणि आदि विशेष प्रकारके पृथ्वी-कायमें आतप जानना ।

सारांश यह है कि—जिस प्रकार जीवको शुद्धनिश्चयनयसे स्वात्मोपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसी सिद्धस्वरूप स्वभावव्यंजनपर्याय विद्यमान होने पर भी,

व्यञ्जनपर्याये विद्यमानेऽप्यनादिकर्मबंधवशात् स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणामे सति स्वाभाविकपरमानंदैकलक्षणस्वास्थ्यभावभ्रष्टं नरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्याया भवन्ति तथापुद्गलस्यापि निश्चयनयेन शुद्धपरमाण्ववस्थालक्षणे स्वभावव्यञ्जनपर्याये सत्यपि स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधो भवतीति वचनाद्रागद्वेषस्थानीयबंधयोग्यस्निग्धरूक्षत्वपरिणामे सत्युक्तलक्षणाच्छब्दादन्येऽपि आगमोक्तलक्षणाआकुञ्चनप्रसारणदधिदुग्धादयो विभाव-व्यञ्जनपर्याया ज्ञातव्याः । एवमजीवाधिकारमध्ये पूर्वसूत्रोदितरूपादिगुणचतुष्टययुक्तस्य तथैवात्र सूत्रोदितशब्दादिपर्यायसहितस्य संक्षेपेणाणुस्कंधभेदभिन्नस्य पुद्गलद्रव्यस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥१६॥

अथ धर्मद्रव्यमाख्याति :—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंत्ताणेव सो णेई ॥१७॥

अनादि कर्मबंधके वशसे स्निग्धरुक्षस्थानीय (–जिसप्रकार पुद्गल और पुद्गलके बंधमें स्निग्धरुक्षत्व निमित्तभूत होता है उसी प्रकार जीव-पुद्गलोंके बंधमें जो निमित्तभूत होते हैं ऐसे–) राग-द्वेष परिणाम होने पर स्वाभाविक परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे स्वास्थ्यभावसे भ्रष्ट नर-नारकादि विभावव्यंजनपर्यायें होती हैं; उसी प्रकार पुद्गलको भी निश्चयनयसे शुद्धपरमाणुरूप अवस्था जिसका लक्षण है ऐसी स्वभावव्यंजनपर्याय होने पर भी, 'स्निग्ध-रुक्षत्वसे बंध होता है' इस वचनसे राग-द्वेषस्थानीय बंधयोग्य स्निग्ध-रुक्षत्वपरिणाम होनेपर ऊपर कहे हुए शब्दादिकसे अन्य भी, आगमोक्त लक्षणयुक्त संकोच-विस्तार, दही-दूध आदि विभावव्यंजनपर्यायें जानना ।

इस प्रकार अजीव अधिकारमें पूर्वसूत्रमें कहे हुए रूपादि चार गुणयुक्त और इस सूत्रमें कही हुई शब्दादि पर्यायसहित, अणु और स्कन्धरूप भेदवाले पुद्गलद्रव्यके संक्षेपव्याख्यानकी मुख्यतासे प्रथम स्थलमें दो गाथायें पूर्ण हुईं ॥१६॥

अब धर्मद्रव्यका व्याख्यान करते हैं :—

जीव रु पुद्गल गमन कराहि, सहकारी तब गिनिये ताहि ।
धर्मद्रव्य जिम जल माछला, बैठेकूं न चलावै बला ॥१७॥

गतिपरिणतानां धम्मः पुद्गलजीवानां गमनसहकारी ।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छतां नैव सः नयति ।।१७।।

व्याख्या—गतिपरिणतानां धर्मो जीवपुद्गलानां गमनसहकारिकारणं भवति । दृष्टान्तमाह—तोयं यथा मत्स्यानाम् । स्वयं तिष्ठतो नैव स नयति तानिति । तथाहि—यथा सिद्धो भगवानमूर्त्तोऽपि निष्क्रियस्तथैवाप्रेरकोऽपि सिद्धवदनन्तज्ञानादिगुणस्वरूपोऽहमित्यादिव्यवहारेण सविकल्पसिद्धभक्तियुक्तानां निश्चयेन निर्विकल्पसमाधिरूपस्वकीयोपादानकारणपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति । तथा निष्क्रियोऽमूर्तो निष्प्रेरकोऽपि धर्मास्तिकायः स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति । लोकप्रसिद्धदृष्टान्तेन तु मत्स्यादीनां जलादिवदित्यभिप्रायः । एवं धर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण गाथा गता ।।१७।।

गाथा–१७

गाथार्थः—गमन करनेमें परिणत पुद्गल और जीवोंको गमनमें सहकारी धर्मद्रव्य है; जिस प्रकार मछलियोंको गमन करनेमें जल सहकारी है उसी प्रकार गमन नहीं करते हुए जीव और पुद्गलोंको वह (धर्मद्रव्य) गमन नहीं कराता ।

टीकाः—गतिरूपसे परिणमित जीव और पुद्गलोंको गति करनेमें [1]सहकारी कारण धर्मद्रव्य है । उसका दृष्टांत कहते हैं : जिस प्रकार मछलियोंको गमन करनेमें सहायक जल है उसीकी भांति । अपने आप स्थित हो (–स्वयं गति न करता हो) उनको (–ऐसे जीव-पुद्गलोंको) वह गमन नहीं कराता है । वह इस प्रकारः–जिस प्रकार सिद्ध भगवान अमूर्त होने पर भी, निष्क्रिय और अप्रेरक होने पर भी 'मैं सिद्धसमान अनंत ज्ञानादिगुणस्वरूप हूँ' इत्यादि व्यवहारसे सविकल्प सिद्धभक्तियुक्त ऐसे जीवोंकी ओर निश्चयसे निर्विकल्पसमाधिरूप निज-उपादानकारण परिणत जीवोंको सिद्धगतिके सहकारी कारण हैं, उसी प्रकार निष्क्रिय, अमूर्त्त और अप्रेरक होने पर भी धर्मद्रव्य, अपने उपादानकारणसे गति करते हुए जीव और पुद्गलोंको गतिमें सहकारी कारण हैं—जैसे मछली आदिको जल आदिके गमनमें सहायक होनेके लोकप्रसिद्ध दृष्टांतकी भांति । ऐसा अभिप्राय है ।

इस प्रकार धर्मद्रव्यके व्याख्यानरूपसे यह गाथा पूर्ण हुई ।।१७।।

१–सहकारी कारण=निमित्त कारण

अथाधर्मद्रव्यमुपदिशति :—

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

स्थानयुतानां अधर्म्मः पुद्गलजीवानां स्थानसहकारी ।
छाया यथा पथिकानां गच्छतां नैव सः धरति ॥१८॥

व्याख्या—स्थानयुक्तानामधर्मः पुद्गलजीवानां स्थितेः सहकारिकारणं भवति । तत्र दृष्टान्तः— छाया यथा पथिकानाम् । स्वयं गच्छतो जीवपुद्गलान् स नैव धरतीति । तद्यथा—स्वसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरूपं परमस्वास्थ्यं यद्यपि निश्चयेन स्वरूपे स्थितिकारणं भवति तथा "सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणंतणाणाइगुणसमिद्धोऽहं । देहपमाणो णिच्चो असंखदेसो अमुत्तो य । १ ।" इति गाथाकथितसिद्धभक्तिरूपेणेह पूर्वं सवि-

---

अब अधर्मद्रव्यको कहते हैं :—

गाथा–१८

गाथार्थः—स्थितियुक्त पुद्गल और जीवोंको स्थितिमें सहकारीकारण अधर्मद्रव्य है; जिस प्रकार छाया यात्रियोंकी स्थितिमें सहकारी है उसी प्रकार । गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य स्थिर नहीं करता है ।

टीकाः—स्थितियुक्त पुद्गल और जीवोंको स्थितिमें सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है । वहां दृष्टांत :—जिस प्रकार छाया यात्रियोंकी स्थितिमें सहकारी है उसी प्रकार । स्वयं गति करते हुए जीव और पुद्गलोंको वह स्थिर नहीं करता है । वह इस प्रकार—स्वसंवेदनसे उत्पन्न सुखामृतरूप परम स्वास्थ्य यद्यपि निश्चयनयसे स्वरूपमें स्थितिका कारण है तथा "सिद्धोऽहं सुद्धोऽहं अणंतणाणाइगुणसमिद्धोऽहं । देहपमाणो णिच्चो असंखदेशो अमुत्तो च ।" (मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, अनंतज्ञानादि गुणोंका मैं धारक हूँ, मैं देहप्रमाण, नित्य, असंख्यप्रदेशी और अमूर्त्त हूँ ।)" इस गाथामें कथित सिद्धभक्तिरूपसे पहले सविकल्प अवस्थामें सिद्ध भी जिस प्रकार भव्योंको

तिष्ठै पुद्गल जीव सु जबै, थिति-सहकारी होय सु तबै ।
छाया जिम पंथीकू जानि, द्रव्य अधर्म, गमन न विभानि ॥१८॥

कल्पावस्थायां सिद्धोऽपि यथा भव्यानां बहिरङ्गसहकारिकारणं भवति तथैव स्वकीयोपादानकारणेन स्वयमेव तिष्ठतां जीवपुद्‌गलानामधर्मद्रव्यं स्थितेः सहकारिकारणम् । लोकव्यवहारेण तु छायावद्वा पृथिवीवद्वेति सूत्रार्थः । एवम् धर्मद्रव्यकथनेन गाथा गता ॥१८॥

अथाकाशद्रव्यमाह :—

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१६॥

अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहि आकाशम् ।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशं इति द्विविधम् ॥१९॥

व्याख्या—जीवादीनामवकाशदानयोग्यमाकाशं विजानीहि हे शिष्य ! किं विशिष्टं ? "जेण्हं" जिनस्येदं जैनं, जिनेन प्रोक्तं वा जैनम् । तच्च लोकालोकाकाशभेदेन द्विविधमिति । इदानीं विस्तरः—सहजशुद्धसुखामृतरसास्वादेन परमसमरसी-

---

सहकारी कारण होते हैं उसी प्रकार अपने उपादानकारणसे स्वयमेव स्थिति करते हुए जीव और पुद्‌गलोंको अधर्मद्रव्य स्थितिका सहकारी कारण है; लोकव्यवहारसे छाया अथवा पृथ्वीकी भांति । इस प्रकार सूत्रार्थ है ।

इस प्रकारसे अधर्मद्रव्यके कथनकी गाथा पूर्ण हुई ॥१८॥

अब आकाशद्रव्यका कथन करते हैं :—

गाथा–१९

गाथार्थः—जो जीवादि द्रव्योंको अवकाश देनेके योग्य है उसे जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आकाशद्रव्य जानो । लोकाकाश और अलोकाकाश इस भांति आकाश दो प्रकारका है ।

टीकाः—हे शिष्य ! जिसमें जीवादिको अवकाश देनेकी योग्यता है उसे जिनेन्द्रकथित आकाशद्रव्य जानो । वह लोक और अलोकरूप आकाशके भेदसे दो प्रकारका है ।

अब इसका विस्तार कहा जाता है:—सहज शुद्ध सुखामृतरसके आस्वादवाले

जीवादिक सबकूं अवकाश, देय द्रव्य सो गिनूं आकाश ।
लोक–अलोक दोय विधि अख्या; देव जिनेश्वर जैसैं लख्या ॥१९॥

भावेन भरितावस्थेषु केवलज्ञानाद्यनन्तगुणाधारभूतेषु लोकाकाशप्रमितासंख्येयस्वकीय-शुद्धप्रदेशेषु यद्यपि निश्चयनयेन सिद्धास्तिष्ठन्ति, तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण मोक्ष-शिलायां तिष्ठन्तीति भण्यते इत्युक्तोऽस्ति । स च ईदृशो मोक्षो यत्र प्रदेशे परम-ध्यानेनात्मा स्थितः सन् कर्मरहितो भवति, तत्रैव भवति नान्यत्र । ध्यानप्रदेशे कर्मपुद्गलान् त्यक्त्वा ऊर्ध्वगमनस्वभावेन गत्वा मुक्तात्मानो यतो लोकाग्रे तिष्ठन्तीति तत उपचारेण लोकाग्रमपि मोक्षः प्रोच्यते, यथा तीर्थभूतपुरुषसेवितस्थानमपि भूमि-जलादिरूपमुपचारेण तीर्थं भवति । सुखबोधार्थं कथितमास्ते । यथा तथैव सर्वद्रव्याणि यद्यपि निश्चयनयेन स्वकीयप्रदेशेषु तिष्ठन्ति तथाप्युपचरितासद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशे तिष्ठन्तीत्यभिप्रायो भगवतां श्रीनेमिचंद्रसिद्धान्तदेवानामिति ॥१९॥

तमेव लोकाकाशं विशेषेण द्रढयति :—

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्ति ॥२०॥

परमसमरसीभावसे भरितावस्थ, केवलज्ञानादि अनंतगुणके आधाररूप, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात निज शुद्ध प्रदेशोंमें यद्यपि निश्चयनयसे सिद्धभगवंत रहते हैं तो भी उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे 'सिद्ध भगवान मोक्षशिला पर रहते हैं' ऐसा कहा जाता है; इस प्रकार पहले कहा गया है । ऐसा मोक्ष जिस प्रदेशमें परमध्यान द्वारा आत्मा स्थिर होकर कर्मरहित होता है, वहां ही होता है, अन्यत्र नहीं; ध्यान करनेके स्थानमें कर्मपुद्गलोंको छोड़कर उर्ध्वगमन स्वभावसे गति करके मुक्तात्मायें लोकाग्रमें स्थिर होती हैं अतः उपचारसे लोकके अग्रभागको भी मोक्ष कहते हैं । तीर्थस्वरूप पुरुषके द्वारा सेवित भूमि-जलादिरूप स्थान भी उपचारसे तीर्थ (कहा जाता) है । इस प्रकार सरलतासे बोध होनेके लिये कहा जाता है । उसी प्रकार सर्व द्रव्य, यद्यपि निश्चयनयसे अपने प्रदेशोंमें रहते हैं तो भी, उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे लोकाकाशमें रहते हैं । इस प्रकार भगवान श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेवका अभिप्राय जानना चाहिए ॥१९॥

उसी लोकाकाशको विशेषरूपसे दृढ़ करते हैं :—

धर्म—अधर्म जीव पुद्गला, कालद्रव्य ये सब ही रला ।
जेतेमैं है लोकाकाश, तातैं परैं अलोक अकाश ॥२०॥

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके ।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥२०॥

व्याख्या—धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाश्च सन्ति यावत्याकाशे स लोकः । तथा चोक्तं—लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इति । तस्माल्लोकाकाशात्-परतो वहिर्भागे पुनरनन्ताकाशमलोक इति । अत्राह सोमाभिधानो राजश्रेष्ठी । हे भगवन् ! केवलज्ञानस्यानन्तभागप्रमितमाकाशद्रव्यं तस्याप्यनन्तभागे सर्वमध्यमप्रदेशे लोकस्तिष्ठति । स चानादिनिधनः केनापि पुरुषविशेषेण न कृतो न हृतो न धृतो न च रक्षितः । तथैवासंख्यातप्रदेशस्तत्रासंख्यातप्रदेशे लोकेऽनन्तजीवास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणाः पुद्गलाः, लोकाकाशप्रमितासंख्येयकालाणुद्रव्याणि, प्रत्येकं लोकाकाशप्रमाणं धर्माधर्मद्वयमित्युक्त-लक्षणाः पदार्थाः कथमवकाशं लभन्त इति ? भगवानाह—एकप्रदीपप्रकाशे नानाप्रदीप-प्रकाशवदेकगूढरसनागगद्याणके वहुसुवर्णवद्भस्मघटमध्ये सूचिकोष्ट्रदुग्धवदित्यादिदृष्टान्तेन

गाथा–२०

गाथार्थः—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव—ये पांच द्रव्य जितने आकाशमें रहते हैं वह लोकाकाश है; उस लोकाकाशसे बाहर अलोकाकाश है ।

टीकाः—धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जितने आकाशमें हैं वह लोकाकाश है । कहा भी है किः—जहां जीवादि पदार्थ देखनेमें आते हैं वह लोक है । उस लोकाकाशसे बाहर अनंत आकाश है वह 'अलोकाकाश' है ।

यहां सोम नामक राजश्रेष्ठी प्रश्न करता है : हे भगवन् ! केवलज्ञानके अनन्तवें भागप्रमाण आकाशद्रव्य है, उसके भी अनंतवें भागमें सर्व मध्यम प्रदेशमें (वीचमें) लोकाकाश है और वह अनादिनिधन है, किसी भी विशिष्ट पुरुष द्वारा न रचा गया है, न नष्ट होता है, न धारण किया जाता है और न रक्षा किया जाता है; तथा वह असंख्यातप्रदेशी है । उस असंख्यातप्रदेशी लोकमें अनंतजीव, उनसे भी अनंतगुणे पुद्गल, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य, प्रत्येक लोकाकाशप्रमाण ऐसे धर्म और अधर्म दो द्रव्य—ये पदार्थ किस प्रकार अवकाश प्राप्त करते हैं ?

भगवान उत्तर देते हैंः—एक दीपकके प्रकाशमें अनेक दीपकोंका प्रकाश, एक गूढ रसके शीशीमें वहुतसा स्वर्ण, राखसे भरे घड़ेमें सूई और ऊंटनीका दूध जिस प्रकार समा जाता है—इत्यादि दृष्टांतसे, विशिष्ट अवगाहन शक्तिके कारण असंख्य-प्रदेशी लोकमें भी पूर्वोक्त पदार्थोंके अवगाहमें विरोध नहीं आता है । तथा यदि इस

विशिष्टावगाहनशक्तिवशादसंख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽवस्थानमवगाहो न विरुध्यते । यदि पुनरित्थंभूतावगाहनशक्तिर्न भवति तर्ह्यसंख्यातप्रदेशेष्वसंख्यातपरमाणूनामेव व्यवस्थानं, तथा सति सर्वे जीवा यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण निरावरणाः शुद्धबुद्धैकस्वभावास्तथा व्यक्तिरूपेण व्यवहारनयेनापि, न च तथा प्रत्यक्षविरोधादागमविरोधाच्चेति । एवमाकाशद्रव्यप्रतिपादनरूपेण सूत्रद्वयं गतम् ॥२०॥

अथ निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथयति :—

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः ।
परिणामादिलक्ष्यः वर्तनालक्षणः च परमार्थः ॥२१॥

व्याख्या—"दव्वपरिवट्टरूवो जो" द्रव्यपरिवर्त्तरूपो यः "सो कालो हवेइ

प्रकारकी अवगाहनशक्ति न हो तो लोकके असंख्य प्रदेशोंमें असंख्य परमाणुओंका ही समावेश होता और ऐसा होने पर जिस प्रकार शुद्धनिश्चयनयसे शक्तिरूपसे सब जीव निरावरण और शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभावयुक्त हैं उसी प्रकार व्यक्तिरूपसे व्यवहारनयसे भी हो जाते ! परंतु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष और आगम—दोनों प्रकारसे उसमें विरोध है ।

इस प्रकार आकाशद्रव्यके प्रतिपादनरूपसे दो गाथायें समाप्त हुई ॥२०॥

अब निश्चयकाल और व्यवहारकालका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा—२१

गाथार्थः—जो द्रव्योंके परिवर्तनरूप है (अर्थात् द्रव्य परिवर्तनकी स्थितिरूप है) और परिणामादिसे लक्षित होता है वह व्यवहारकाल है; वर्तना लक्षणयुक्त काल निश्चयकाल है ।

टीकाः—"दव्वपरिवट्टरूवो जो" जो द्रव्यके परिवर्तनरूप है (अर्थात् द्रव्यकी

द्रव्यनिके परिवर्तनरूप, काल लखो व्यवहार विरूप ।
लख्यो पढै परिणामनि एह, निश्चय वर्तन लक्षण तेह ॥२१॥

ववहारो" स कालो भवति व्यवहाररूप: । स च कथंभूतः ? "परिणामादीलक्खो" परिणामक्रियापरत्वापरत्वेन लक्ष्यत इति परिणामादिलक्ष्यः । इदानीं निश्चयकालः कथ्यते "वट्टणलक्खो य परमट्ठो" वर्त्तनालक्षणश्च परमार्थकाल इति । तद्यथा—जीवपुद्गलयोः परिवर्त्तो नवजीर्णपर्यायस्तस्य या समयघटिकादिरूपा स्थितिः स्वरूपं यस्य स भवति द्रव्यपर्यायरूपो व्यवहारकालः । तथाचोक्तं संस्कृतप्राभृतेन—"स्थितिः कालसंज्ञका" तस्य पर्यायस्य सम्बन्धिनी याऽसौ समयघटिकादिरूपा स्थितिः सा व्यवहारकालसंज्ञा भवति, न च पर्याय इत्यभिप्रायः । यत एव पर्यायसम्बन्धिनी स्थितिर्व्यवहारकालसंज्ञां भजते तत एव जीवपुद्गलसम्बन्धिपरिणामेन पर्यायेण तथैव देशान्तरचलनरूपया गोदोहनपाकादिपरिस्पन्दलक्षणरूपया वा क्रियया तथैव दूरासन्न-चलनकालकृतपरत्वापरत्वेन च लक्ष्यते ज्ञायते यः, स परिणामक्रियापरत्वापरत्वलक्षण इत्युच्यते । अथ द्रव्यरूपनिश्चयकालमाह । स्वकीयोपादानरूपेण स्वयमेवपरिणममानानां

पर्यायके साथ संबंधवाली कालावधिरूप है) "सो कालो हवेइ ववहारो" वह काल व्यवहाररूप है । और वह कैसा है ? "परिणामादीलक्खो" परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्वसे लक्षित होता है–ज्ञात होता है अतः वह परिणामादिसे लक्ष्य है ।

अव निश्चयकालका कथन किया जाता है । "वट्टणलक्खो य परमट्ठो" जो वर्तना लक्षणवाला है वह परमार्थकाल है ।

उसे स्पष्ट किया जाता है:—जीव और पुद्गलके परिवर्तनरूप जो नवीन और नष्ट पर्याय उसकी समय-घड़ी इत्यादिरूप 'स्थिति' जिसका स्वरूप है, वह द्रव्य-पर्यायरूप व्यवहारकाल है । वही संस्कृतप्राभृतमें भी कहा है—"स्थितिः कालसंज्ञकाः (स्थितिको 'काल' संज्ञा है) ।" उस पर्यायसे संबंधित जो समय, घड़ी आदिरूप स्थिति है वह 'स्थिति' व्यवहारकाल है, (पुद्गलादिके परिवर्तनरूप) पर्याय व्यवहार-काल नहीं है–ऐसा अभिप्राय है । पर्यायसंबंधी स्थितिको व्यवहारकाल ऐसा नाम मिलता है इसीलिए जीव और पुद्गलके परिणामसे–पर्यायसे तथा एक प्रदेशसे अन्य प्रदेशको चलनेरूप अथवा गाय दोहना, रसोई करना आदि परिस्पन्दरूप क्रियासे, उसी प्रकार दूर अथवा समीप चलनेरूप कालकृत परत्व और अपरत्वसे वह लक्षित होता है–ज्ञात होता है अतः वह व्यवहारकाल परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व लक्षणयुक्त कहलाता है ।

अव द्रव्यरूप निश्चयकालका कथन कहते हैं:—अपने उपादानरूपसे स्वयमेव

पदार्थानां कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलावत्, शीतकालाध्ययने अग्निवत्, पदार्थपरिणतेर्यत्सहकारित्वं सा वर्त्तना भण्यते । सैव लक्षणं यस्य स वर्त्तनालक्षणः कालाणुद्रव्यरूपो निश्चयकालः, इति व्यवहारकालस्वरूपं निश्चयकालस्वरूपं च विज्ञेयम् ।

कश्चिदाह "समयरूप एव निश्चयकालस्तस्मादन्यः कालाणुद्रव्यरूपो निश्चयकालो नास्त्यदर्शनात् ?" तत्रोत्तरं दीयते—समयस्तावत्कालस्तस्यैव पर्यायः । स कथं पर्याय इति चेत् ? पर्यायस्योत्पन्नप्रध्वंसित्वात् । तथाचोक्तं "समओ उप्पण्ण पद्धंसी" । स च पर्यायो द्रव्यं विना न भवति, पश्चात्तस्य समयरूपपर्यायकालस्योपादानकारणभूतं द्रव्यं तेनापि कालरूपेण भाव्यम् । इन्धनाग्निसहकारिकारणोत्पन्नस्यौदनपर्यायस्य तन्दुलोपादानकारणवत्, अथ कुम्भकारचक्रचीवरादिबहिरंगनिमित्तोत्पन्नस्य मृण्मयघटपर्यायस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत्, अथवा नरनारकादिपर्यायस्य जीवोपादानकारणवदिति । तदपि कस्मादुपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । अथ मतं "समयादिकाल-

परिणमित पदार्थोंको—कुम्हारके चाकको फिरनेमें नीचेकी कीलीके सहकारीपनेकी भांति, शीतकालमें अध्ययन करते हुए विद्यार्थीको अध्ययनमें अग्निके सहकारीपनेकी भांति—पदार्थपरिणतिमें जो सहकारीपना उसे 'वर्तना' कहते हैं; यह 'वर्तना' जिसका लक्षण है वह, वर्तनालक्षणवाला कालाणुद्रव्यरूप 'निश्चयकाल' है ।

इस प्रकार व्यवहारकाल और निश्चयकालका स्वरूप जानना ।

कोई कहता है कि समयरूप ही निश्चयकाल है; उससे भिन्न अन्य कालाणुद्रव्यरूप निश्चयकाल नहीं है क्योंकि वह देखनेमें नहीं आता है । उसका उत्तर देते हैं:—प्रथम तो समयकालकी ही पर्याय है । समयकालकी पर्याय किस प्रकार है ? पर्याय उत्पन्नध्वंसी होती है इसलिये । तथा कहा है कि "[1]समओ उप्पण्ण पद्धंसी । (समय उत्पन्न होता है और नाशको प्राप्त होता है ।)" और वह पर्याय द्रव्य के विना नहीं होती है । उस समयरूप पर्यायकालके उपादानकारणरूप द्रव्य वह भी कालरूप होना चाहिये । ईन्धन, अग्नि आदि सहकारी कारणसे उत्पन्न भातरूप पर्यायके उपादानकारण धानकी भांति, कुम्हार, चाक, डोरी आदि वहिरंग निमित्तसे उत्पन्न मिट्टीके घटपर्यायके उपादानकारण मिट्टीके पिंडकी भांति । अथवा नर-नारकादि पर्यायके उपादानकारण जीवकी भांति समय, घड़ी आदि कालका उपादानकारण कालद्रव्य होना चाहिये । वह भी किसलिये ? 'उपादानकारणके जैसा ही कार्य होता है' ऐसा वचन होनेसे ।

१—श्री प्रवचनसार गाथा—१३९ अन्तिम भाग

पर्यायाणां कालद्रव्यमुपादानकारणं न भवति; किन्तु समयोत्पत्तौ मन्दगतिपरिणत-पुद्गलपरमाणुस्तथा निमेषकालोत्पत्तौ नयनपुटविघटनं, तथैव घटिकाकालपर्यायोत्पत्तौ घटिकासामग्रीभूतजलभाजनपुरुषहस्तादिव्यापारो, दिवसपर्याये तु दिनकरविम्बमुपादान-कारणमिति ।" नैवम् । यथा तन्दुलोपादानकारणोत्पन्नस्य सदोदनपर्यायस्य शुक्ल-कृष्णादिवर्णा, सुरभ्यसुरभिगन्ध—स्निग्धरूक्षादिस्पर्श—मधुरादिरसविशेषरूपा गुणा दृश्यन्ते । तथा पुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनजलभाजनपुरुषव्यापारादिदिनकरविम्बरूपैः पुद्गलपर्यायैरुपादानभूतैः समुत्पन्नानां समयनिमिषघटिकादिकालपर्यायाणामपि शुक्ल-कृष्णादिगुणाः प्राप्नुवन्ति, न च तथा । उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । किं बहुना । योऽसावनाद्यनिधनस्तथैवामूर्तो नित्यः समयाद्युपादानकारणभूतोऽपि समयादिविकल्परहितः कालाणुद्रव्यरूपः स निश्चयकालो, यस्तु सादिसान्तसमयघटिका-प्रहरादिविवक्षितव्यवहारविकल्परूपस्तस्यैव द्रव्यकालस्य पर्यायभूतो व्यवहारकाल इति ।

अब कोई ऐसा मानता है कि "समय आदि कालके पर्यायोंका उपादानकारण कालद्रव्य नहीं है, परन्तु समयरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें मंदगतिपरिणत पुद्गलपरमाणु, निमेषरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें आंखोंका बंद होना और खुलना, घड़ीरूप कालपर्यायकी उत्पत्तिमें घड़ीकी सामग्रीरूप जलका बर्तन, मनुष्यके हाथ आदिके व्यापार और दिवसरूप पर्यायकी उत्पत्तिमें सूर्यका बिंब उपादानकारण है ।" परन्तु ऐसा नहीं है । यदि ऐसा हो तो, जिस प्रकार चावलरूप उपादानकारणसे उत्पन्न भातरूप पर्यायमें सफेद, काला आदि रंग, सुगंध अथवा दुर्गंध, स्निग्ध अथवा रूक्षादि स्पर्श, मधुर आदि रस इत्यादि विशेष गुण दिखाई पड़ते हैं; उसी प्रकार पुद्गलपरमाणु, आंखोंका खुलना अथवा बन्द होना, जलका कटोरा और मनुष्यका व्यापार आदि, तथा सूर्य बिंबरूप उपादानभूत पुद्गल पर्यायोंसे उत्पन्न समय, निमिष, घड़ी, दिवस आदि कालपर्यायोंमें भी सफेद, कृष्ण आदि गुण प्राप्त होने चाहिये ! परन्तु ऐसा तो होता नहीं क्योंकि उपादानकारणके समान कार्य होता है ऐसा वचन है ।

बहुत कहनेसे क्या ? जो अनादिनिधन है, अमूर्त्त है, नित्य है, समयादिके उपादानकारणभूत होने पर भी समयादिके भेदरहित है; वह कालाणुद्रव्यरूप निश्चयकाल है । और जो सादि-सान्त है, समय, घड़ी, प्रहर आदि विवक्षित व्यव-हारनयके भेदरूप है वही द्रव्यकालकी पर्यायरूप व्यवहारकाल है ।

अयमत्र भावः । यद्यपि काललब्धिवशेनानन्तसुखभाजनो भवति जीवस्तथापि विशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानसमस्तबहिर्द्रव्येच्छानिवृत्ति-लक्षणतपश्चरणरूपा या निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोपादानकारणं ज्ञातव्यम् न च कालस्तेन स हेय इति ॥२१॥

अथ निश्चयकालस्यावस्थानक्षेत्रं द्रव्यगणनां च प्रतिपादयति :—

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताः हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिः इव ते कालाणवः असंख्यद्रव्याणि ॥२२॥

व्याख्या—"लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का" लोकाकाश-प्रदेशेष्वेकैकेषु ये स्थिता एकैकसंख्योपेता "हु" स्फुटं । क इव ? "रयणाणं रासी इव"

सारांश यह है कि—यद्यपि काललब्धिके वशसे जीव अनंतसुखका भाजन होता है, तो भी विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निजपरमात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप तथा समस्त बहिर्द्रव्यकी इच्छाकी निवृत्ति जिसका लक्षण है ऐसे तप-श्चरणरूप जो निश्चय चतुर्विध आराधना है वही उसमें उपादानकारण जानना, काल नहीं; अतः वह (काल) हेय है ॥२१॥

अब निश्चयकालके रहनेके क्षेत्रका तथा द्रव्यकी संख्याका प्रतिपादन करते हैं :—

गाथा—२२

गाथार्थः—जो लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर रत्नोंकी राशिकी भांति भिन्न-भिन्नरूपसे एक-एक स्थित हैं वे कालाणु असंख्य द्रव्य हैं ।

टीकाः—"लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का" लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर जो एक-एक संख्यामें स्थित हैं, "हु" स्पष्टरूपसे, किसके समान ? "रयणाणं रासी इव" परस्पर तादात्म्यरहित रत्नोंकी राशिकी भांति । "ते कालाणू"

लोकाकाश-प्रदेशनि मांहि, एक एक परि जुंदे गिणांहि ।
जे असंख्य तिष्ठै थिररूप, कालाणू जिम रत्ननि तूप ॥२२॥

परस्परतादात्म्यपरिहारेण रत्नानां राशिरिव । "ते कालाणू" ते कालाणवः । कति संख्योपेताः ? "असंखदव्वाणि" लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणीति । तथाहि—यथा अंगुलिद्रव्यस्य यस्मिन्नेव क्षणे वक्रपर्यायोत्पत्तिस्तस्मिन्नेव क्षणे पूर्वप्राञ्जलपर्याय-विनाशोऽङ्गुलिरूपेण ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । यथैव च केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपेण कार्यसमयसारस्योत्पादो निर्विकल्पसमाधिरूपकारणसमयसारस्य विनाशस्तदुभयाधारपर-मात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति वा द्रव्यसिद्धिः । तथा कालाणोरपि मन्दगतिपरिणतपुद्गल-परमाणुना व्यक्तीकृतस्य कालाणूपादानकारणोत्पन्नस्य य एव वर्तमानसमयस्योत्पादः स एवातीतसमयापेक्षया विनाशस्तदुभयाधारकालाणुद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मककालद्रव्यसिद्धिः । लोकवहिर्भागेकालाणुद्रव्याभावात्कथमाकाशद्रव्यस्य परिणति-रिति चेत् ? अखण्डद्रव्यत्वादेकदेशदण्डाहतकुम्भकारचक्रभ्रमणवत्, तथैवैकदेशमनोहर-स्पर्शनेन्द्रियविषयानुभवसर्वाङ्गसुखवत्, लोकमध्यस्थितकालाणुद्रव्यधारणैकदेशेनापि सर्वत्र

वे कालाणु हैं । उनकी कितनी संख्या है ? "असंखदव्वाणि" लोकाकाशके प्रदेश-प्रमाण असंख्य द्रव्य हैं । विशेष—जिसप्रकार अंगुलिकी वक्र पर्यायकी उत्पत्ति जिस क्षण होती है उसी क्षण पूर्वकी सीधी पर्यायका व्यय होता है और अंगुलिरूपसे ध्रौव्य रहता है—इस प्रकार द्रव्यकी सिद्धि होती है; तथा जिस प्रकार केवल-ज्ञानादिकी व्यक्तिरूपसे कार्य-समयसारका उत्पाद, निर्विकल्प समाधिरूप कारण सम-यसारका विनाश और उन दोनोंके आधारभूत परमात्मद्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य है—इस प्रकार भी द्रव्यकी सिद्धि है; उसी प्रकार कालाणुको भी मंदगतिसे परिणमित पुद्गलपरमाणु द्वारा प्रगट किये गये और कालाणुरूप उपादानकारणसे उत्पन्न हुए जो वर्तमान समयका उत्पाद है वही भूतकालके समयकी अपेक्षासे विनाश है और उन दोनोंके आधारभूत कालाणुद्रव्यरूपसे ध्रौव्य है—इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक कालद्रव्यकी सिद्धि है ।

शंकाः—लोकाकाशके वाह्य भागमें कालाणुद्रव्यका अभाव होनेसे आकाश-द्रव्यका परिणमन (अलोकाकाशमें) किस प्रकार होता है ?

समाधानः—आकाश अखंड द्रव्य होनेसे, जिस प्रकार कुम्हारके चाकके एक भागमें लकड़ीसे प्रेरणा करने पर पूरा चाक भ्रमण करता है, तथा स्पर्शेन्द्रियके विषयका एक भागमें मनोहर अनुभव करनेसे समस्त शरीरमें सुखका अनुभव होता है, उसी प्रकार लोकाकाशमें रहे हुए कालाणुद्रव्य आकाशके एक भागमें स्थित होने पर भी सम्पूर्ण आकाशमें परिणमन होता है ।

परिणमनं भवतीति कालद्रव्यं शेषद्रव्याणां परिणतेः सहकारिकारणं भवति । कालद्रव्यस्य किं सहकारिकारणमिति ? यथाकाशद्रव्यमशेषद्रव्याणामाधारः स्वस्यापि, तथा कालद्रव्यमपि परेषां परिणतिसहकारिकारणं स्वस्यापि । अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वस्योपादानकारणं परिणतेः सहकारिकारणं च भवति तथा सर्वद्रव्याणि, कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति ? नैवम्; यदि पृथग्भूतसहकारिकारणेनप्रयोजनं नास्ति तर्हि सर्वद्रव्याणां साधारणगतिस्थित्यवगाहनविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैरपि सहकारिकारणभूतैः प्रयोजनं नास्ति । किञ्च, कालस्य घटिकादिवसादिकार्यं प्रत्यक्षेण दृश्यते; धर्मादीनां पुनरागमकथनमेव, प्रत्यक्षेण किमपि कार्यं न दृश्यते; ततस्तेषामपि कालद्रव्यस्यैवाभावः प्राप्नोति । ततश्च जीवपुद्गलद्रव्यद्वयमेव, स चागमविरोधः । किञ्च, सर्वद्रव्याणां परिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुणः, घ्राणेन्द्रियस्य रसास्वादनमिवान्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति द्रव्यसंकरदोषप्रसंगादिति ।

शंकाः—कालद्रव्य शेष अन्य द्रव्योंके परिणमनको सहकारी कारण होता है; कालद्रव्यके परिणमनमें सहकारी कारण कौन होता है ?

समाधानः—जिसप्रकार आकाशद्रव्य अन्य सब द्रव्योंका आधार है और अपना भी आधार है, उसी प्रकार कालद्रव्य भी अन्य द्रव्योंके परिणमनमें सहकारी कारण है और अपने परिणमनमें भी सहकारी कारण है ।

शंकाः—जिसप्रकार कालद्रव्य अपने परिणमनमें उपादान कारण है और सहकारी कारण भी है उसीप्रकार सब द्रव्य भी अपने परिणमनमें उपादान और सहकारी कारण होवें; उन द्रव्योंके परिणमनमें कालद्रव्यका क्या प्रयोजन है ?

समाधानः—ऐसा नहीं है । यदि अपनेसे भिन्न सहकारी कारणका प्रयोजन न हो तो सर्वद्रव्योंके सामान्य गति, स्थिति और अवगाहनके विषयमें सहकारी कारणभूत धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्यका भी कोई प्रयोजन न रहे । तथा, कालद्रव्यका घड़ी, दिवस आदि कार्य तो प्रत्यक्षरूपसे दिखाई पड़ता है, परंतु धर्म आदि द्रव्योंका तो आगम कथन ही है, प्रत्यक्षरूपसे उनका कोई कार्य दिखाई नहीं देता है, अतः कालद्रव्यकी भांति उनका भी अभाव प्राप्त होगा; तत्पश्चात् जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रहते हैं और वह तो (ऐसा मानना तो) आगमसे विरुद्ध है । तथा, सर्वद्रव्योंको परिणमनमें सहकारी होना यह कालद्रव्यका ही गुण है; जिसप्रकार घ्राणइन्द्रियसे रसास्वाद नहीं हो सकता है उसीप्रकार अन्य द्रव्यका गुण अन्य द्रव्य द्वारा नहीं हो सकता है क्योंकि ऐसा माननेसे द्रव्यसंकररूप दोषका प्रसंग आता है ।

कश्चिदाह—यावत्कालेनैकाकाशप्रदेशं परमाणुरतिक्रामति ततस्तावत् कालेन समयो भवतीत्युक्तमागमे एकसमयेन चतुर्दशरज्जुगमने यावंत आकाशप्रदेशास्तावन्तः समयाः प्राप्नुवन्ति । परिहारमाह—एकाकाशप्रदेशातिक्रमेण यत् समयव्याख्यानं कृतं तन्मन्दगत्यपेक्षया, यत्पुनरेकसमये चतुर्दशरज्जुगमनव्याख्यानं तत्पुनः शीघ्रगत्यपेक्षया । तेन कारणेन चतुर्दशरज्जुगमनेऽप्येकसमयः । तत्र दृष्टान्तः—कोऽपि देवदत्तो योजनशतं मन्दगत्या दिनशतेन गच्छति । स एव विद्याप्रभावेण शीघ्रगत्या दिनेनैकेनापि गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति । किन्त्वेक एव दिवसः । तथा चतुर्दशरज्जुगमनेऽपि शीघ्रगमनेनैक एव समयः ।

किञ्च—स्वयं विषयानुभवरहितोऽप्ययं जीवः परकीयविषयानुभवं दृष्टम् श्रुतं च मनसि स्मृत्वा यद्विषयाभिलाषं करोति तदपध्यानं भण्यते, तत्प्रभृतिसमस्तजालरहितं स्वसंवित्तिसमुत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादसहितं यत्तद्वीतरागचारित्रं भवति ।

कोई कहता है—'जितनेकालमें आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें परमाणु गमन करता है उतने कालको समय कहते हैं' इस प्रकार आगममें कहा है तो एक समयमें चौदह राजू गमन करता हुआ परमाणु जितने आकाश प्रदेशोंको पार करता है उतना समय होना चाहिये ! उसका समाधान करते हैं:—परमाणु एक आकाश प्रदेशसे अन्य प्रदेश पर जाता है उतने कालको शास्त्रमें समय कहा है वह परमाणुकी मंदगतिकी अपेक्षासे है और परमाणुका एक समयमें चौदह राजू गमन करता है तो भी एक समय ही होता है । यहां यह दृष्टांत है कि कोई देवदत्त नामक पुरुष मंदगतिसे चलकर सौ दिनोंमें सौ योजन चलता है, और वही पुरुष विद्याके प्रभावसे शीघ्र गति करके एक दिनमें भी सौ योजन जाता है तो (तब) क्या उसको सौ योजन चलनेमें सौ दिन लगते हैं ? नहीं, परन्तु एक ही दिन लगता है; उसीप्रकार चौदह राजू गमन करनेमें भी शीघ्रगमनके कारण परमाणुको एक ही समय लगता है ।

तथा विशेष—स्वयं विषयोंके अनुभवरहित होने पर भी यह जीव दूसरोंके द्वारा देखे हुए, सुने हुए, अनुभव किये हुए विषयका मनमें स्मरण करके जो विषयोंकी अभिलाषा करता है उसे अपध्यान कहा जाता है । उस विषय-अभिलाषरूप अपध्यानादि समस्त जाल रहित, स्वसंवेदनसे उत्पन्न सहजानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखके रसास्वाद सहित जो है वह वीतरागचारित्र है और उसके साथ जो अविनाभावी होता है वह निश्चयसम्यक्त्व अथवा वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है ।

यत्पुनस्तदविनाभूतं तन्निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागसम्यक्त्वं चेति भण्यते । तदेव कालत्रयेऽपि मुक्तिकारणम् । कालस्तु तदभावे सहकारिकारणमपि न भवति ततः स हेय इति । तथाचोक्तम्—"किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले । सिद्धिहंहि जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥" इदमत्र तात्पर्यम्—कालद्रव्यमन्यद्वा परमागमाविरोधेन विचारणीयं परं किन्तु वीतरागसर्वज्ञवचनं प्रमाणमिति मनसि निश्चित्य विवादो न कर्तव्यः । कस्मादिति चेत् ? विवादे रागद्वेषौ भवतस्ततश्च संसारवृद्धिरिति ॥२२॥

एवं कालद्रव्यव्याख्यानमुख्यतया पञ्चमस्थले सूत्रद्वयं गतं । इतिगाथाष्टकसमुदायेन पंचभिः स्थलैः पुद्गलादिपंचविधाजीवद्रव्यकथनरूपेण द्वितीयो अन्तराधिकारः समाप्तः ।

अतः परं सूत्रपञ्चकपर्यन्तं पञ्चास्तिकायव्याख्यानं करोति । तत्रादौ गाथा-

---

वही (निश्चयसम्यक्त्व ही) तीनों कालमें मुक्तिका कारण है। उसके अभावमें काल तो सहकारी कारण भी नहीं होता है; अतः वह हेय है। इसी प्रकार कहा भी है कि—"किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले । सिद्धिहंहि जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥" (बहुत कहनेसे क्या ? जो श्रेष्ठ पुरुष भूतकालमें सिद्ध हुए हैं, होते हैं और भविष्यकालमें होंगे वह सम्यक्त्वका [1]माहात्म्य जानो।)"

यहां तात्पर्य यह है कि—कालद्रव्य तथा अन्य द्रव्यमें परमागमके अविरोधरूपसे विचार करना परंतु 'वीतराग सर्वज्ञका वचन सत्य है' इस प्रकार मनमें निश्चय करके विवाद न करना। किसलिये ? क्योंकि विवाद करनेसे राग-द्वेष होता है और राग-द्वेषसे संसारकी वृद्धि होती है ॥२२॥

इस प्रकार कालद्रव्यके व्याख्यानकी मुख्यतासे पांचवें स्थलमें दो गाथायें पूर्ण हुई। इस प्रकार आठ गाथाओंके समुदायसे पांच स्थलोंमें पुद्गल आदि पांच प्रकारके अजीव द्रव्योंके कथनरूपसे दूसरा अंतराधिकार पूर्ण हुआ।

अब पांच गाथाओं तक पंचास्तिकायका व्याख्यान करते हैं। उनमें भी प्रथम

१—द्वादश अनुप्रेक्षा—गाथा ९०

पूर्वार्द्धेन षड्द्रव्यव्याख्यानोपसंहार उत्तरार्धेन तु पंचास्तिकायव्याख्यानप्रारम्भः कथ्यतेः—

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।
उक्तं कालवियुक्तम् ज्ञातव्याः पञ्च अस्तिकायाः तु ॥२३॥

व्याख्या—"एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं उत्तं" एवं पूर्वोक्त-प्रकारेण षड्भेदमिदं जीवाजीवप्रभेदतः सकाशाद्द्रव्यमुक्तं कथितं प्रतिपादितम् । "काल-विजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु" तदेव षड्विधं द्रव्यं कालेन वियुक्तं रहितं ज्ञातव्याः पञ्चास्तिकायास्तु पुनरिति ॥२३॥

पञ्चेति संख्या ज्ञाता तावदिदानीमस्तित्वं कायत्वं च निरूपयतिः—

संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

गाथाके पूर्वार्धसे छह द्रव्योंके व्याख्यानका उपसंहार और उत्तरार्धसे पंचास्तिकायके व्याख्यानका प्रारंभ करते हैं :—

गाथा–२३

गाथार्थः—इस प्रकार जीव और अजीवके प्रभेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं । कालद्रव्यके अतिरिक्त शेष पांच द्रव्योंको अस्तिकाय जानना ।

टीकाः—"एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं उत्तं" इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे जीव और अजीवके प्रभेदसे ये छह प्रकारके द्रव्य कहे हैं । "कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु" उन्हीं छह प्रकारके द्रव्योंमेंसे पंचास्तिकाय रूपसे जानना ॥२३॥

पांच ऐसी संख्या तो ज्ञात हुई; अब इनके अस्तित्व और कायत्वका निरूपण करते हैं :—

ऐसैं द्रव्य कहे छह भेद, जीव-अजीवतणे, बिन खेद ।
काल बिना पण अस्ति जु काय, जानूं जिन भाषे समुदाय ॥२३॥
एते 'है' ऐसें जिनदेव, भाषे अस्तिरूप स्वयमेव ।
बहु प्रदेश काय जिम लखै, अस्तिकाय पांचूं इम अखै ॥२४॥

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।
काया इव बहुदेशाः तस्मात् कायाः च अस्तिकायाः च ॥२४॥

व्याख्या—"संति जदो तेणेदे अत्थिचि भणंति जिणवरा" सन्ति विद्यन्ते यत एते जीवाद्याकाशपर्यन्ताः पञ्च तेन कारणेनैतेऽस्तीति भणंति जिणवराः सर्वज्ञाः । "जह्मा काया इव बहुदेसा तह्मा काया य" यस्मात्काया इव बहुप्रदेशास्तस्मात्कारणात्कायाश्च भणंति जिनवराः । "अत्थिकाया य" एवं न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेणास्तित्वेन युक्ता अस्तिसंज्ञास्तथैव कायत्वेन युक्ताः कायसंज्ञा भवन्ति किन्तूभयमेलापकेनास्तिकायसंज्ञाश्च भवन्ति । इदानीं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽप्यस्तित्वेन सहाभेदं दर्शयति । तथाहि शुद्धजीवास्तिकाये सिद्धत्वलक्षणः शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः, केवलज्ञानादयो विशेषगुणाः,अस्तित्ववस्तुत्वागुरुलघुत्वादयः सामान्यगुणाश्च । तथैवाव्याबाधानन्तसुखाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादो रागादिविभावरहितपरमस्वास्थ्यरूपस्य कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणैर्गुणपर्यायैरुत्पाद-

---

गाथा–२४

गाथार्थः—क्योंकि वे विद्यमान हैं अतः जिनवरोंने इन्हें 'अस्ति' कहा है और ये कायकी भांति बहुप्रदेशी हैं अतः इनको 'काय' कहा है । दोनों मिलकर 'अस्तिकाय' होते हैं ।

टीकाः—"संति जदो तेणेदे अत्थिचि भणंति जिणवरा" जीवसे आकाशतकके पांच द्रव्य विद्यमान हैं इस कारणसे इनको सर्वज्ञ जिनवर 'अस्ति' कहते हैं । "जह्मा काया इव बहुदेसा तह्मा काया य" और वे कायाकी भांति बहुप्रदेशी हैं अतः जिनवर उनको 'काय' कहते हैं । "अत्थिकाया य" इस प्रकार पहले कहा है उसी प्रकार 'अस्तित्व'युक्त होनेसे केवल 'अस्ति' संज्ञा नहीं है, तथा 'कायत्व'युक्त होनेसे केवल 'काय' संज्ञा भी नहीं है; परन्तु दोनोंके मिलापसे 'अस्तिकाय' संज्ञा है ।

अब संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिका भेद होने पर भी अस्तित्वके साथ (ये पांचों) अभेद हैं ऐसा बतलाते हैं:—शुद्ध जीवास्तिकायमें (मुक्त दशामें) सिद्धत्वलक्षणरूप शुद्धद्रव्य-व्यंजनपर्याय, केवलज्ञान आदि विशेष गुण और अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण हैं, तथा (मुक्त दशामें) अव्याबाध अनंतसुखादि अनंत गुणकी व्यक्ततारूप कार्य-समयसारका उत्पाद, रागादि विभावरहित परमस्वास्थ्यरूप कारण-समयसारका व्यय और उन दोनोंके आधारभूत परमात्मद्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य है; शुद्ध जीवास्तिकायको इस भांति उपरोक्त लक्षणवाले गुण-पर्याय

व्ययध्रौव्यैश्च सह मुक्तावस्थायां संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सत्तारूपेण प्रदेशरूपेण च भेदो नास्ति । कस्मादिति चेत् ? मुक्तात्मसत्तायां गुणपर्यायाणामुत्पादव्ययध्रौव्याणां चास्तित्वं सिद्ध्यति, गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यसत्तायाश्च मुक्तात्मास्तित्वं सिद्ध्यतीति परस्परसाधितसिद्धत्वादिति । कायत्वं कथ्यते—बहुप्रदेशप्रचयं दृष्ट्वा यथा शरीरं कायो भण्यते तथानन्तज्ञानादिगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशानां प्रचयं समूहं संघातं मेलापकं दृष्ट्वा मुक्तात्मनि कायत्वं भण्यते । यथा शुद्धगुणपर्यायोत्पाद-व्ययध्रौव्यैः सह मुक्तात्मनः सत्तारूपेण निश्चयेनाभेदो दर्शितस्तथा यथासंभवं संसारिजीवेषु पुद्गलधर्माधर्माकाशकालेषु च द्रष्टव्यः । कालद्रव्यं विहाय कायत्वं चेति सूत्रार्थः ॥२४॥

अथ कायत्वव्याख्याने पूर्वं यत्प्रदेशास्तित्वं सूचितं तस्य विशेषव्याख्यानं करोतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कस्य द्रव्यस्य कियन्तः प्रदेशा भवन्तीति प्रतिपादयतिः—

और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तअवस्थामें संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिका भेद होने पर भी सत्तारूपसे और प्रदेशरूपसे भेद नहीं है । भेद किसलिये नहीं है ? मुक्तात्माकी सत्तामें गुण-पर्यायोंका और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है तथा गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी सत्तासे मुक्तात्माका अस्तित्व सिद्ध होता है; इस प्रकार परस्पर साधित सिद्धत्व (–साध्यसाधनपना) है ।

अब इनके कायत्वका कथन किया जाता है:—जिस प्रकार बहुत प्रदेशोंके समूहको देखकर शरीरको 'काय' कहा जाता है, उसी प्रकार अनंत ज्ञानादि गुणोंके आधारभूत लोकाकाशप्रमाण असंख्य शुद्ध प्रदेशोंका समूह देखकर मुक्तात्मामें 'कायत्व' कहा जाता है ।

जिस प्रकार शुद्ध गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तात्माको सत्तारूपसे निश्चयनयसे अभेदपना कहा (दर्शाया), उसी प्रकार यथासंभव संसारी जीवोंमें तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें भी जानना, और काल-द्रव्यके अतिरिक्त कायत्व भी जानना ।

—इस प्रकार इस गाथाका अर्थ है ॥२४॥

अब कायत्वके व्याख्यानमें पहले जो प्रदेशोंका अस्तित्व सूचित किया था उसका विशेष व्याख्यान करते हैं। [एक पातनिका (उत्थानिका) तो इसप्रकार है, दूसरी पातनिका इसप्रकार है कि,] किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं इसका प्रतिपादन करते हैं :—

व्ययध्रौव्यैश्च सह मुक्तावस्थायां संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि सत्तारूपेण प्रदेशरूपेण च भेदो नास्ति । कस्मादिति चेत् ? मुक्तात्मसत्तायां गुणपर्यायाणामुत्पादव्ययध्रौव्याणां चास्तित्वं सिद्ध्यति, गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यसत्तायाश्च मुक्तात्मास्तित्वं सिद्ध्यतीति परस्परसाधितसिद्धत्वादिति । कायत्वं कथ्यते—बहुप्रदेशप्रचयं दृष्ट्वा यथा शरीरं कायो भण्यते तथानन्तज्ञानादिगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशानां प्रचयं समूहं संघातं मेलापकं दृष्ट्वा मुक्तात्मनि कायत्वं भण्यते । यथा शुद्धगुणपर्यायोत्पाद-व्ययध्रौव्यैः सह मुक्तात्मनः सत्तारूपेण निश्चयेनाभेदो दर्शितस्तथा यथासंभवं संसारिजीवेषु पुद्गलधर्माधर्माकाशकालेषु च द्रष्टव्यः । कालद्रव्यं विहाय कायत्वं चेति सूत्रार्थः ॥२४॥

अथ कायत्वव्याख्याने पूर्वं यत्प्रदेशास्तित्वं सूचितं तस्य विशेषव्याख्यानं करोतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कस्य द्रव्यस्य कियन्तः प्रदेशा भवन्तीति प्रतिपादयतिः—

और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तअवस्थामें संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिका भेद होने पर भी सत्तारूपसे और प्रदेशरूपसे भेद नहीं है । भेद किसलिये नहीं है ? मुक्तात्माकी सत्तामें गुण-पर्यायोंका और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है तथा गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी सत्तासे मुक्तात्माका अस्तित्व सिद्ध होता है; इस प्रकार परस्पर साधित सिद्धत्व (–साध्यसाधनपना) है ।

अब इनके कायत्वका कथन किया जाता है:—जिस प्रकार बहुत प्रदेशोंके समूहको देखकर शरीरको 'काय' कहा जाता है, उसी प्रकार अनंत ज्ञानादि गुणोंके आधारभूत लोकाकाशप्रमाण असंख्य शुद्ध प्रदेशोंका समूह देखकर मुक्तात्मामें 'कायत्व' कहा जाता है ।

जिस प्रकार शुद्ध गुण-पर्याय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यके साथ मुक्तात्माको सत्तारूपसे निश्चयनयसे अभेदपना कहा (दर्शाया), उसी प्रकार यथासंभव संसारी जीवोंमें तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें भी जानना, और काल-द्रव्यके अतिरिक्त कायत्व भी जानना ।

—इस प्रकार इस गाथाका अर्थ है ॥२४॥

अब कायत्वके व्याख्यानमें पहले जो प्रदेशोंका अस्तित्व सूचित किया था उसका विशेष व्याख्यान करते हैं। [एक पातनिका (उत्थानिका) तो इसप्रकार है, दूसरी पातनिका इसप्रकार है कि,] किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं इसका प्रतिपादन करते हैं :—

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।
मूर्त्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥२५॥

व्याख्या—"होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे" भवन्ति लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशाः प्रदीपवदुपसंहारविस्तारयुक्तेऽप्येकजीवे, नित्यं स्वभावविस्तीर्णयोर्धर्माधर्मयोरपि । "अणंत आयासे" अनन्तप्रदेशा आकाशे भवन्ति । "मुत्ते तिविह पदेसा" मूर्त्ते पुद्गलद्रव्ये संख्यातासंख्यातानन्ताणूनां पिण्डाः स्कन्धास्त एव त्रिविधाः प्रदेशा भण्यन्ते, न च क्षेत्रप्रदेशाः । कस्मात् ? पुद्गलस्यानन्तप्रदेशक्षेत्रे अवस्थानाभावादिति । "कालस्सेगो" कालाणुद्रव्यस्यैक एव प्रदेशः । "ण तेण सो काओ" तेन कारणेन स कायो न भवति । कालस्यैकप्रदेशत्वविषये युक्तिं प्रदर्शयति । तद्यथा—किञ्चिदून-

---

गाथा–२५

गाथार्थः—जीव, धर्म तथा अधर्मद्रव्यके असंख्य प्रदेश हैं, आकाशके अनंत प्रदेश हैं; मूर्तिके (पुद्गलके) तीन प्रकारके (संख्यात, असंख्यात और अनंत) प्रदेश हैं । कालका एक प्रदेश है अतः वह 'काय' नहीं है ।

टीकाः—"होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे" दीपककी भांति संकोच-विस्तारयुक्त एक जीवमें और सदा स्वभावसे विस्तृत धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यमें भी लोकाकाशप्रमाण असंख्य प्रदेश होते हैं । "अणंत आयासे" आकाशमें अनंत प्रदेश होते हैं । "मुत्ते तिविह पदेसा" मूर्त्त-पुद्गल द्रव्यमें संख्यात, असंख्यात और अनंत परमाणुओंके पिंड अर्थात् स्कंध होते हैं उन्हींको तीन प्रकारके प्रदेश कहे जाते हैं, क्षेत्र प्रदेशोंको नहीं; क्योंकि पुद्गल अनंत प्रदेशी क्षेत्रमें नहीं रहता है । "कालस्सेगो" कालाणुको एक ही प्रदेश है । "ण तेण सो काओ" इस कारण वह काय नहीं है । कालद्रव्यके एक प्रदेश होनेके विषयमें युक्ति दिखलाते हैं । वह इस प्रकार—जिस प्रकार अंतिम शरीरसे कुछ न्यून प्रमाणवाली सिद्धत्व पर्यायका उपादानकारणभूत जो शुद्धात्मद्रव्य

देश असंख्य जीव एककै, धर्म-अधर्म तथा गिनि तकै ।
नभ अनंत, पुद्गल बहु भाय, एक कालकै, इम बिन-काय ॥२५॥

चरमशरीरप्रमाणस्य सिद्धत्वपर्यायस्योपादानकारणभूतं शुद्धात्मद्रव्यं तत्पर्यायप्रमाणमेव । यथा वा मनुष्यदेवादिपर्यायोपादानकारणभूतं संसारिजीवद्रव्यं तत्पर्यायप्रमाणमेव, तथा कालद्रव्यमपि समयरूपस्य कालपर्यायस्य विभागेनोपादानकारणभूतमविभाग्येकप्रदेश एव भवति । अथवा मन्दगत्या गच्छतः पुद्गलपरमाणोरेकाकाशप्रदेशपर्यन्तमेव कालद्रव्यं गतेः सहकारिकारणं भवति ततो ज्ञायते तदप्येकप्रदेशमेव ।

कश्चिदाह—पुद्गलपरमाणोर्गतिसहकारिकारणं धर्मद्रव्यं तिष्ठति, कालस्य किमायातम् ? नैवं वक्तव्यम्—धर्मद्रव्ये गतिसहकारिकारणे विद्यमानेऽपि मत्स्यानां जलवन्मनुष्याणां शकटारोहणादिवत्सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति इति । अथ मतं कालद्रव्यं पुद्गलानां गतिसहकारिकारणं कुत्र भणितमास्ते ? तदुच्यते—"पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणादु" इत्युक्तं श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवैः पञ्चास्तिकायप्राभृते । अस्यार्थः कथ्यते—धर्मद्रव्ये विद्यमानेऽपि जीवानाम् कर्मनोकर्मपुद्गला गतेः सहकारिकारणं भवन्ति, अणुस्कन्धभेदभिन्नपुद्गलानां तु कालद्रव्यमित्यर्थः ॥२५॥

है वह सिद्धत्वपर्याय प्रमाण (उसके समान) ही है, अथवा जिस प्रकार मनुष्य, देव आदि पर्यायोंका उपादानकारणभूत जो संसारी जीवद्रव्य है वह इस मनुष्यादि पर्यायप्रमाण ही (उसके बराबर ही) है, उसीप्रकार कालद्रव्य भी समयरूप कालपर्यायके अविभागपनेसे उपादानकारणभूत अविभागी एक प्रदेश ही होता है । अथवा मंदगतिसे गमन करते हुए पुद्गलपरमाणुको एक आकाश प्रदेश तक ही कालद्रव्य गतिका सहकारी कारण होता है अतः ज्ञात होता है कि वह कालद्रव्य भी एक प्रदेशी ही है ।

शंकाः—कोई प्रश्न करता है कि पुद्गलपरमाणुको गतिमें सहकारी कारण धर्मद्रव्य है उसमें कालद्रव्यका क्या प्रयोजन है ?

समाधानः—ऐसा नहीं कहना चाहिए । गतिमें सहकारी कारण धर्मद्रव्य विद्यमान होने पर भी मछलीको गति करनेमें जलकी भांति और मनुष्योंको शकट-आरोहण आदिकी भांति अन्य भी बहुतसे सहकारी कारण होते हैं । कोई कहता है कि कालद्रव्य पुद्गलोंकी गतिमें सहकारी कारण है ऐसा कहां पर कहा है ? उसका उत्तर देते हैं:—श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने पंचास्तिकाय प्राभृतमें कहा है कि "पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु" इसका अर्थ कहा जाता है:—धर्मद्रव्य विद्यमान होने पर भी, जीवोंको गतिमें कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल सहकारी कारण होते हैं और अणु तथा स्कंध—इन दो भेदवाले पुद्गलोंको गमनमें कालद्रव्य सहकारी कारण होता है ॥२५॥

अथैकप्रदेशस्यापि पुद्गलपरमाणोरुपचारेण कायत्वमुपदिशति :—

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

एकप्रदेशः अपि अणुः नानास्कन्धप्रदेशतः भवति ।
बहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञः ॥२६॥

व्याख्या—"एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि बहुदेसो" एकप्रदेशोऽपि पुद्गलपरमाणुर्नानास्कन्धरूपबहुप्रदेशतः सकाशाद्बहुप्रदेशो भवति । "उवयारा" उपचाराद् व्यवहारनयात्, "तेण य काओ भणंति सव्वण्हु" तेन कारणेन कायमिति सर्वज्ञा भणन्तीति । तथाहि—यथायं परमात्मा शुद्धनिश्चयनयेन द्रव्यरूपेण शुद्धस्तथैकोऽप्यनादिकर्मबन्धवशात्स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषाभ्यां परिणम्य नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण व्यवहारेण बहुविधो भवति । तथा पुद्गलपरमाणुरपि स्वभावेनैको-

---

अब पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है तो भी उपचारसे उसे कायत्व है ऐसा उपदेश देते हैं :—

गाथा—२६

गाथार्थः—एक प्रदेशी (होने पर) भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुप्रदेशी हो सकता है इस कारण सर्वज्ञदेव उपचारसे परमाणुको 'काय' कहते हैं ।

टीकाः—"एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि बहुदेसो" पुद्गल-परमाणु एक प्रदेशी है तो भी भिन्न-भिन्न स्कंधरूप बहुप्रदेशी होता है; "उवयारा" उपचार अर्थात् व्यवहारनयसे; "तेण य काओ भणंति सव्वण्हु" इस कारण सर्वज्ञदेव उस पुद्गल परमाणुको 'काय' कहते हैं ।

विशेषः—जिस प्रकार यह परमात्मा शुद्ध निश्चयनयसे द्रव्यरूपसे शुद्ध तथा एक है तो भी अनादि कर्मबंधके वश स्निग्ध-रूक्षगुणस्थानीय राग-द्वेषरूप परिणमित होकर व्यवहारसे नर-नारकादि विभाव-पर्यायरूपसे अनेक प्रकारका होता है, उसी प्रकार पुद्गल परमाणु भी स्वभावसे एक और शुद्ध होने पर भी राग-द्वेष स्थानीय

पुद्गल-अणु एक परदेश, खंध रूक्ष चीकणतैं वेश ।
बहुदेशी उपचार कहाव, कायरूप इम कह्यौ स्वभाव ॥२६॥

ऽपि शुद्धोऽपि रागद्वेषस्थानीयबन्धयोग्यस्निग्धरूक्षगुणाभ्यां परिणम्य द्विअणुकादिस्कन्धरूपविभावपर्यायैर्बहुविधोबहुप्रदेशो भवति तेन कारणेन बहुप्रदेशलक्षणकायत्वकारणत्वादुपचारेण कायो भण्यते । अथ मतं यथा पुद्गलपरमाणोर्द्रव्यरूपेणैकस्यापि द्व्यणुकादिस्कन्धपर्यायरूपेण वहुप्रदेशरूपं कायत्वं जातं तथा कालाणोरपि द्रव्येणैकस्यापि पर्यायेण कायत्वं भवत्विति ? तत्र परिहारः—स्निग्धरूक्षहेतुकस्य वन्धस्याभावान्न भवति । तदपि कस्मात् ? स्निग्धरूक्षत्वं पुद्गलस्यैव धर्मो यतः कारणादिति । अणुत्वं पुद्गलसंज्ञा, कालस्याणुसंज्ञा कथमिति चेद् ? तत्रोत्तरम्—अणुशब्देन व्यवहारेण पुद्गला उच्यन्ते निश्चयेन तु वर्णादिगुणानां पूरणगलनयोगात्पुद्गला इति वस्तुवृत्या पुनरणुशब्दः सूक्ष्मवाचकः । तद्यथा—परमेण प्रकर्षेणाणुः । अणुः कोऽर्थः ? सूक्ष्म, इति व्युत्पत्त्या परमाणुः । स च सूक्ष्मवाचकोऽणुशब्दो निर्विभागपुद्गलविवक्षायां पुद्गलाणुं वदति । अविभागिकालद्रव्यविवक्षायां तु कालाणुं कथयतीत्यर्थः ॥२६॥

वंधयोग्य स्निग्ध-रूक्षगुणरूपसे परिणमित होकर द्वि-अणुक आदि स्कंधरूप विभावपर्यायरूपसे अनेक प्रकारसे बहुप्रदेशी होता है इस कारण 'बहुप्रदेशत्व' जिसका लक्षण है ऐसे कायत्वके कारण उपचारसे 'काय' कहलाता है ।

कोई मानता है कि जिसप्रकार पुद्गलपरमाणुको, उसके द्रव्यरूपसे एक होने पर भी, द्वि-अणुक आदि स्कन्धपर्यायरूपसे बहुप्रदेशरूप कायत्व है, उसी प्रकार कालाणुको भी, उसके द्रव्यसे एक होने पर भी, पर्यायोंसे कायत्व हो ! उसका परिहार किया जाता है :—स्निग्ध-रूक्षत्व जिसका कारण है ऐसे बंधका (कालमें) अभाव होनेसे वैसा नहीं होता है । वह किसलिये है ? क्योंकि स्निग्ध-रूक्षत्व पुद्गलका ही धर्म है ।

शंकाः—'अणु' पुद्गलकी संज्ञा है, कालको अणु संज्ञा किसप्रकार है ?

उत्तरः—'अणु' शब्द द्वारा व्यवहारनयसे पुद्गलोंका कथन किया जाता है, निश्चयसे तो वर्णादि गुणोंके पूरण और गलनके संबंधसे उनको पुद्गल कहा जाता है । वास्तविकरूपसे 'अणु' शब्द सूक्ष्मताका वाचक है । जैसे कि परमपने अर्थात् प्रकृष्टपने जो अणु है वह 'परमाणु' है । 'अणु' का अर्थ क्या ? 'सूक्ष्म', इस व्युत्पत्तिसे 'परमाणु' शब्द 'अतिसूक्ष्म' को कहता है । और वह सूक्ष्मतावाचक 'अणु' शब्द निर्विभाग पुद्गलकी विवक्षामें 'पुद्गलाणु'को कहता है और अविभागी कालद्रव्यकी विवक्षामें 'कालाणु' को कहता है ॥२६॥

अथ प्रदेशलक्षणमुपलक्षयति :—

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

यावतिकं आकाशं अविभागिपुद्गलाण्ववष्टब्धम् ।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्व्वाणुस्थानदानार्हम् ॥२७॥

व्याख्या—"जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुउट्ठद्धं तं खु पदेसं जाणे" यावत्प्रमाणमाकाशमविभागिपुद्गलपरमाणुना विष्टब्धं व्याप्तं तदाकाशं खु स्फुटं प्रदेशं जानीहि । हे शिष्य ! कथंभूतं "सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं" सर्वाणूनां सर्वपरमाणूनां सूक्ष्मस्कन्धानां च स्थानदानस्यावकाशदानस्यार्हं योग्यं समर्थमिति । यत एवेत्थंभूताव-गाहनशक्तिरस्त्याकाशस्य तत एवासंख्यातप्रदेशेऽपि लोके अनन्तानन्तजीवास्तेभ्योऽप्य-नन्तगुणपुद्गला अवकाशं लभन्ते । तथा चोक्तम्, जीवपुद्गलविषयेऽवकाशदान-

---

अब प्रदेशका लक्षण कहते हैं :—

गाथा–२७

गाथार्थः—जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसे सर्व अणुओंको स्थान देनेमें योग्य प्रदेश जानो ।

टीकाः—"जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुउट्ठद्धं तं खु पदेसं जाणे" हे शिष्य ! जितना आकाश अविभागी पुद्गलपरमाणुसे व्याप्त हो उतने आकाशको स्पष्टरूपसे प्रदेश जानो । कैसा है वह ? "सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं" वह प्रदेश सर्व अणुओंको–सर्व परमाणुओंको और सूक्ष्म स्कन्धोंको–स्थान अर्थात् अवकाश देनेमें योग्य है । आकाशद्रव्यमें ऐसी अवगाहनशक्ति है इसी कारण ही असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशमें भी अनंतानंत जीव और उनसे भी अनंतगुणे पुद्गल अवकाश प्राप्त करते हैं । इसीप्रकार जीवों और पुद्गलोंके संबंधमें अवकाश देनेका सामर्थ्य (अन्यत्र इस प्रकार) कहा है :—"एक निगोदके शरीरमें भूतकालमें हो गये सर्व

पुद्गल-अणू जितो आकाश, रोकै सो परदेश विकास ।
सर्व अणूकूं दे अवगाह, शक्ति ऐसी धारै जु अथाह ॥२७॥

सामर्थ्यम् "एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा । सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥१॥ ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो । सुहमेहिं वादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं ॥२॥" अथ मतं मूर्त्तपुद्गलानां विभागो भेदो भवतु नास्ति विरोधः, अमूर्त्ताखण्डस्याकाशद्रव्यस्य कथं विभागकल्पनेति ? तन्न । रागाद्युपाधिरहितस्वसंवेदनप्रत्यक्षभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्तस्य मुनियुगलस्यावस्थानक्षेत्रमेकमनेकं वा । यद्येकं, तर्हि द्वयोरेकत्वं प्राप्नोति, न च तथा । भिन्नं चेत्तदा निर्विभागद्रव्यस्यापि विभागकल्पनमायातं घटाकाशपटाकाशमित्यादिवदिति ॥२७॥ एवं सूत्रपञ्चकेन पञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा तृतीयोऽन्तराधिकारः ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे नमस्कारादिसप्तविंशतिगाथाभिरन्तराधिकारत्रयसमुदायेन षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकारः समाप्तः ।

सिद्धोंसे अनंतगुणे जीव द्रव्यप्रमाणसे [1]देखे गये हैं ॥१॥ यह लोक सब ओरसे विविध तथा अनंतानंत सूक्ष्म और वादर पुद्गलोंसे ठसाठस [2]भरा है ॥२॥

शंकाः—मूर्त ऐसे पुद्गलोंमें भेद हो, इसमें विरोध नहीं है; परंतु अमूर्त और अखंड आकाशद्रव्यमें भेद कल्पना किस प्रकार संभव है ?

समाधानः—यह शंका योग्य नहीं है। रागादि उपाधिरहित, स्वसंवेदन-प्रत्यक्षभावनासे उत्पन्न सुखामृतके रसास्वादसे तृप्त दो मुनियोंके रहनेका क्षेत्र एक है या अनेक ? यदि दोनोंके रहनेका क्षेत्र एक हो तो दोनों एकत्वको प्राप्त होते हैं; परंतु ऐसा तो है नहीं। और यदि कहो कि दोनोंका निवास क्षेत्र भिन्न है तो निर्विभाग ऐसे आकाशद्रव्यमें भी घटाकाश, पटाकाश इत्यादिकी भांति विभागकल्पना सिद्ध हुई ॥२७॥

इस प्रकार पांच सूत्रोंसे पंचास्तिकायका प्रतिपादन करनेवाला तीसरा अंतराधिकार पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव विरचित द्रव्यसंग्रह ग्रन्थमें नमस्कारादि सत्ताईस गाथाओं द्वारा, तीन अंतराधिकारों द्वारा छह द्रव्य और पंचास्तिकायका प्रतिपादन करनेवाला प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

१—गोम्मटसार जीवकांड गाथा—१९५

२—पंचास्तिकाय गाथा—१६४

चूलिका

अतः परं पूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते । तद्यथा—

परिणामि जीव-मुत्तं, सपदेसं एय-खेत्त-किरिया य ।
णिच्चं कारण कत्ता, सव्वगदमिदरंहि यपवेसे ॥१॥

दुण्णि य एयं एयं, पंच त्तिय एय दुण्णि चउरो य ।
पंच य एयं एयं, एदेसं एय उत्तरं णेयं ॥२॥ (युग्मम्)

व्याख्या—"परिणामि" इत्यादिव्याख्यानं क्रियते । "परिणामि" परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां कृत्वा, शेष चत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनीति । "जीव" शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः । व्यवहारनयेन

इसके पश्चात् पूर्वोक्त छह द्रव्योंका चूलिकारूपसे (उपसंहार रूपसे) विशेष व्याख्यान करते हैं :—

चूलिका

गाथार्थः—छह द्रव्योंमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिणामी हैं, चेतनद्रव्य एक जीव है, मूर्तिक एक पुद्गल है, प्रदेश सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पांच द्रव्य हैं, एक-एक संख्यावाले धर्म, अधर्म और आकाश—ये तीन द्रव्य हैं, क्षेत्रवान एक आकाश द्रव्य है, क्रियासहित जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य हैं, नित्यद्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये चार हैं, कारणद्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये पांच हैं, कर्त्ता एक जीवद्रव्य है, सर्वव्यापक द्रव्य एक आकाश है, (एक क्षेत्रावगाह होने पर भी) इन छहों द्रव्योंको परस्पर प्रवेश नहीं है । इस प्रकार छहों मूल द्रव्योंके उत्तरगुण जानना ।

टीकाः—"परिणामि" स्वभाव तथा विभाव परिणामोंसे जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य परिणामी हैं, शेष चार द्रव्य विभावव्यंजनपर्यायके अभावकी मुख्यतासे अपरिणामी हैं ।

"जीव" शुद्धनिश्चयनयसे विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी शुद्धचैतन्यको 'प्राण' शब्दसे कहा जाता है; उस शुद्धचैतन्यरूप प्राणसे जो जीता है वह जीव है । व्यवहार-

पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति, जीविष्यति, जीवितपूर्वो वा जीवः। पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि। "मुत्तं" अमूर्त शुद्धात्मनो विलक्षण-स्पर्शरसगन्धवर्णवती मूर्त्तिरुच्यते, तत्सद्भावान्मूर्त्तः पुद्गलः। जीवद्रव्यं पुनरनुपचरिता-सद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तमपि, शुद्धनिश्चयनयेनामूर्त्तम्, धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्त्तानि। "सपदेसं" लोकमात्रप्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि। कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशत्वलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशम्। "एय" द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति। जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि भवन्ति। "खेत्त" सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात् क्षेत्रमाकाशमेकम्। शेषपञ्चद्रव्याण्यक्षेत्राणि। "किरियाय" क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरगमनरूपा परिस्पन्दवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावन्तौ जीवपुद्गलौ। धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि। "णिच्चं" धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि,

---

नयसे कर्मोदयजनित द्रव्य और भावरूप चारप्रकारके (इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास) प्राणोंसे जो जीता है, जीयेगा और पहले जीता था वह जीव है। पुद्गल आदि पांच द्रव्य अजीवरूप हैं।

"मुत्तं" अमूर्त शुद्धात्मासे विलक्षण स्पर्श, रस, गंध और वर्णरूप मूर्ति कहलाता है, उसके सद्भावसे पुद्गल मूर्त है। जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहारसे मूर्त है परन्तु शुद्धनिश्चयनयसे अमूर्त है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य अमूर्त हैं।

"सपदेसं" लोकमात्रप्रमाण असंख्य प्रदेशयुक्त जीवद्रव्यसे लेकर पांच द्रव्य (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश) 'पंचास्तिकाय' संज्ञक सप्रदेश हैं। कालद्रव्यको, वहुप्रदेश जिसका लक्षण है ऐसे कायत्वका, अभाव होनेसे वह अप्रदेश है।

"एय" द्रव्यार्थिकनयसे धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक-एक हैं। जीव, पुद्गल, काल द्रव्य अनेक हैं। "खेत्त" सर्व द्रव्योंको अवकाश देनेमें समर्थ होनेसे क्षेत्र एक आकाशद्रव्य है, शेष पांच द्रव्य अक्षेत्र हैं।

"किरिया य" जिनमें एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें गमन करनेरूप, परिस्पन्दरूप अथवा चलनेरूप क्रिया है वे क्रियावान जीव और पुद्गल—ये दो द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल–ये चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। "णिच्चं" धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य यद्यपि अर्थपर्यायवाले होनेकी अपेक्षासे अनित्य हैं तो भी मुख्यरूपसे

तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्नित्यानि, द्रव्यार्थिकनयेन च; जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिस्वरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये। "कारण" पुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्यशरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्त्तनाकार्याणि कुर्वन्तीति कारणानि भवंति । जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपंचद्रव्याणां किमपि न करोतीत्यकारणम् । "कत्ता" शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्त्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्त्ता तत्फलभोक्ता च भवति। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्त्ता तत्फलभोक्ता चेति । शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति। पुद्गलादिपंचद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वम्, वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणा-

---

उनमें विभावव्यञ्जनपर्यायका अभाव होनेसे वे नित्य हैं, द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे भी नित्य हैं। जीव और पुद्गल द्रव्य यद्यपि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे नित्य हैं तो भी अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभावपर्यायकी अपेक्षासे तथा विभावव्यंजनपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य हैं।

"कारण" पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य व्यवहारनयसे जीवके शरीर-वाणी-मन-प्राण-उच्छ्वास, गति, स्थिति, अवगाहन और वर्तनारूप कार्य करते हैं अतः कारण हैं। जीवद्रव्य यद्यपि गुरु-शिष्यादिरूपसे परस्पर उपकार करते हैं तो भी पुद्गलादि पांच द्रव्योंका कुछ भी कार्य नहीं करते हैं अतः जीव 'अकारण' है।

"कत्ता" शुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव यद्यपि बंध-मोक्ष, द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप और घट-पटादिका अकर्ता है तो भी अशुद्धनिश्चयसे शुभ और अशुभोपयोगरूप परिणमित होकर पुण्य-पापबंधका कर्ता और उनके फलका भोक्ता होता है; विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज शुद्धात्मद्रव्यके सम्यक्श्रद्धानज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्धोपयोगसे परिणत होता हुआ मोक्षका भी कर्ता और उसके फलका भोक्ता होता है। सर्वत्र जीवको शुभ, अशुभ तथा शुद्ध परिणामोंके परिणमनरूपही कर्तृत्व जानना। पुद्गलादि पांच द्रव्योंको तो अपने-अपने परिणामसे जो परिणमन है वही कर्तृत्व है; वास्तवमें पुण्य-पापादिरूपसे अकर्तृत्व ही है।

कर्तृत्वमेव । "सव्वगदं" लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते । लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौं च । जीवद्रव्यं पुनरेकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं, नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कन्धापेक्षया सर्वगतं, शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया सर्वगतं, न भवति, लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं भवति । "इदरंहि य पवेसे" यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयनयेन चेतनादिस्वकीयस्वरूपं न त्यजन्तीति । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानन्दैकादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ।

अत ऊर्ध्वं पुनरपि षड्द्रव्याणां मध्ये हेयोपादेयस्वरूपं विशेषेण विचारयति । तत्र शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वात् सर्वे जीवा उपादेया भवन्ति ।

"सव्वगदं" लोक और अलोकमें व्याप्त होनेकी अपेक्षासे आकाशको 'सर्वगत' कहा जाता है । लोकाकाशमें व्याप्त होनेकी अपेक्षासे धर्म और अधर्मद्रव्य सर्वगत हैं । जीवद्रव्य, एक जीवकी अपेक्षासे लोकपूरण नामक समुद्घातकी अवस्थाके अतिरिक्त असर्वगत है परन्तु भिन्न-भिन्न जीवोंकी अपेक्षासे सर्वगत ही है । पुद्गलद्रव्य लोकव्यापक महास्कन्धकी अपेक्षासे सर्वगत है और शेष पुद्गलोंकी अपेक्षासे सर्वगत नहीं है । कालद्रव्य, एक कालाणुद्रव्यकी अपेक्षासे सर्वगत नही है, लोकाकाशके प्रदेशके वराबर भिन्न-भिन्न कालाणुओंकी विवक्षासे कालद्रव्य लोकमें सर्वगत हैं ।

"इदरंहि य पवेसे" यद्यपि सर्व द्रव्य व्यवहारनयसे एक क्षेत्र अवगाह होनेसे एक दूसरेमें प्रवेश करके रहते हैं तो भी निश्चयनयसे चेतना आदि अपने-अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते हैं ।

सारांश यह है कि इन छह द्रव्योंमें वीतराग, चिदानंद, एक आदि गुणस्वभावी और शुभाशुभ मन, वचन और कायाके व्यापाररहित निज शुद्धात्मद्रव्य ही उपादेय है ।

(हेय–उपादेयस्वरूपका विशेष विचार)

इसके पश्चात्, पुनः छह द्रव्योंमें हेय-उपादेय स्वरूपका विशेष विचार करते हैं । ाहां शुद्धनिश्चयनयसे शक्तिरूपसे सर्व जीव शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावी होनेसे उपादेय हैं

व्यक्तिरूपेण पुनः पञ्चपरमेष्ठिन एव । तत्राप्यर्हत्सिद्धद्वयमेव । तत्रापि निश्चयेन सिद्ध एव । परमनिश्चयेन तु भोगाकांक्षादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमसमाधिकाले सिद्ध-सदृशः स्वशुद्धात्मैवोपादेयः, शेषद्रव्याणि हेयानीति तात्पर्यम् । शुद्धबुद्धैकस्वभाव इति कोऽर्थः ? मिथ्यात्वरागादिसमस्तविभावरहितत्वेन शुद्ध इत्युच्यते, केवलज्ञानाद्यनन्तगुण-सहितत्वाद् बुद्धः । इति शुद्धबुद्धैकलक्षणम् सर्वत्र ज्ञातव्यम् ।

चूलिकाशब्दार्थः कथ्यते—चूलिका विशेषव्याख्यानम्, अथवा उक्तानुक्त-व्याख्यानम्, उक्तानुक्तसंकीर्णव्याख्यानम् चेति ।

॥ इति षड्द्रव्यचूलिका समाप्ता ॥

और व्यक्तिरूपसे पंच परमेष्ठी ही उपादेय हैं । उनमें भी (पंचपरमेष्ठियोंमें भी) अर्हंत और सिद्ध–ये दो ही उपादेय हैं । इन दोनोंमें भी निश्चयसे सिद्ध ही उपादेय हैं और परम निश्चयनयसे तो भोगाकांक्षादिरूप समस्त विकल्पजालरहित परम-समाधिकालमें सिद्धसमान स्वशुद्धात्मा ही उपादेय हैं, अन्य सर्व द्रव्य हेय हैं—यह तात्पर्य है ।

'शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव' इस पदका क्या अर्थ है ? मिथ्यात्व-रागादि समस्त विभावरहित होनेसे आत्मा 'शुद्ध' कहलाता है और केवलज्ञानादि अनंतगुणोंसे सहित होनेसे आत्मा 'बुद्ध' कहलाता है । 'शुद्धबुद्ध'का लक्षण सर्वत्र इसप्रकार जानना ।

अब 'चूलिका' शब्दका अर्थ कहा जाता है—किसी पदार्थके विशेष व्याख्यानको, कथन किये गये विषयमें अकथित विषयके व्याख्यानको और कहे गये तथा नहीं कहे गये विषयके मिश्र व्याख्यानको 'चूलिका' कहते हैं ।

इस प्रकार छह द्रव्योंकी चूलिका समाप्त हुई ।



– २ –

सप्ततत्त्व–नवपदार्थ अधिकार

अथ द्वितीयः अधिकारः ।

अतः परं जीवपुद्गलपर्यायरूपाणामास्रवादिसप्तपदार्थानामेकादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्रादौ "आसवबंधण" इत्याद्यधिकारसूत्रगाथैका, तदनन्तरमास्रव-पदार्थव्याख्यानरूपेण "आसवदि जेण" इत्यादि गाथात्रयम्, ततः परं बन्धव्याख्यान-कथनेन "बज्झदि कम्मं" इति प्रभृतिगाथाद्वयं, ततोऽपि संवरकथनरूपेण "चेदणपरिणामो" इत्यादि सूत्रद्वयं, ततश्च निर्जराप्रतिपादनरूपेण "जहकालेण तवेण य" इति प्रभृति-सूत्रमेकं, तदनन्तरं मोक्षस्वरूपकथनेन "सव्वस्स कम्मणो" इत्यादि सूत्रमेकं, ततश्च पुण्यपापद्वयकथनेन "सुहअसुह" इत्यादि सूत्रमेकं चेत्येकादशगाथाभिः स्थलसप्तक-समुदायेन द्वितीयाधिकारे समुदायपातनिका ।

अब द्वितीय अधिकार कहा जाता है :—

इसके पश्चात् जीव और पुद्गल द्रव्यके पर्यायरूप आस्रव आदि सात पदार्थोंका ग्यारह गाथाओंमें व्याख्यान करते हैं । उनमें प्रथम "आसवबन्धण" इत्यादि अधि-कारकी सूचनारूप एक गाथा है, तत्पश्चात् आस्रव पदार्थके व्याख्यानरूपसे "आसवादि जेण" इत्यादि तीन गाथायें हैं । तत्पश्चात् बंधका व्याख्यान करनेके लिये "बज्झदि कम्मं" आदि दो गाथायें हैं । तत्पश्चात् संवरका कथन करनेके लिये "चेदणपरिणामो" इत्यादि दो गाथायें, तत्पश्चात् निर्जराके प्रतिपादनरूप "जहकालेण तवेण य" आदि एक गाथा, तत्पश्चात् मोक्षस्वरूपके कथनके लिये "सव्वस्स कम्मणो" आदि एक गाथा और इसके बाद पुण्य और पाप—इन दोनोंके कथनके लिये "सुहअसुह" इत्यादि एक गाथा है । इस प्रकार ग्यारह गाथाओंमें सात स्थलोंके द्वारा द्वितीय अधिकारमें समुदायपातनिका (–समुदायभूमिका) कही गई ।

अत्राह शिष्यः—यद्येकान्तेन जीवाजीवौ परिणामिनौ भवतस्तदा संयोगपर्यायरूप एक एव पदार्थः, यदि पुनरेकान्तेनापरिणामिनौ भवतस्तदा जीवाजीवद्रव्यरूपौ द्वावेव पदार्थौ, तत आस्रवादिसप्तपदार्थाः कथं घटन्त इति । तत्रोत्तरं—कथंचित्परिणामित्वाद् घटन्ते । कथंचित्परिणामित्वमिति कोऽर्थः ? यथा स्फटिकमणिविशेषो यद्यपि स्वभावेन निर्मलस्तथापि जपापुष्पाद्युपाधिजनितं पर्यायान्तरं परिणति [1]गृह्णाति । यद्यप्युपाधिं गृह्णाति तथापि निश्चयेन शुद्धस्वभावं न त्यजति तथा जीवोऽपि यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सहजशुद्धचिदानन्दैकस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबन्धपर्यायवशेन रागादिपरद्रव्योपाधिपर्यायं गृह्णाति । यद्यपि परपर्यायेण परिणमति तथापि निश्चयेन शुद्धस्वरूपं न त्यजति । पुद्गलोऽपि तथेति । परस्परसापेक्षत्वं कथंचित्परिणामित्वशब्दस्यार्थः । एवं कथंचित्परिणामित्वे सति जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिनिर्वृत्तत्वादास्रवादिसप्तपदार्था घटन्ते । ते च पूर्वोक्तजीवाजीवपदार्थाभ्यां सह नव भवन्ति ततः एव नव पदार्थाः । पुण्यपापपदार्थद्वयस्याभेदनयेन कृत्वा पुण्यपापयोरास्रवपदार्थस्य,

---

यहां शिष्य प्रश्न करता है—यदि एकांतसे जीव और अजीव ये दो द्रव्य परिणामी हों तो संयोगपर्यायरूप एक ही पदार्थ सिद्ध हो और यदि एकांतसे अपरिणामी हों तो जीव और अजीव द्रव्यरूप दो ही पदार्थ सिद्ध हों, अतः आस्रव आदि सात पदार्थ किस प्रकार सिद्ध होते हैं ? उसका उत्तरः—कथंचित परिणामीपनेके कारण सात पदार्थ सिद्ध होते हैं । 'कथंचित परिणामीपने'का क्या अर्थ है ? जिस प्रकार स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल है तो भी जपापुष्पादि उपाधिजनित पर्यायांतररूप परिणतिको ग्रहण करता है यद्यपि (स्फटिकमणि) उपाधि ग्रहण करता है तो भी निश्चयसे शुद्धस्वभावको नहीं छोड़ता है; उसीप्रकार जीव भी यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे सहज शुद्ध चिदानंद एकस्वभावी है तो भी अनादि-कर्मबंधपर्यायके वश रागादि परद्रव्य-उपाधिपर्यायको ग्रहण करता है, यद्यपि (जीव) परपर्यायरूपसे परिणमित होता है तो भी निश्चयसे शुद्धस्वरूपको नहीं छोड़ता है । पुद्गल भी इसीप्रकार है । ऐसा परस्पर सापेक्षपना 'कथंचित् परिणामीपना' शब्दका अर्थ है । इसप्रकार कथंचित् परिणामीपना होनेसे जीव और पुद्गलके संयोगरूप परिणतिसे रचित होनेके कारण आस्रवादि सात पदार्थ सिद्ध होते हैं और वे सात पदार्थ पूर्वोक्त जीव और अजीव द्रव्यके साथ मिलकर नौ होते हैं अतः नौ पदार्थ कहनेमें

१–'परिणमति' इति पाठान्तरं

बन्धपदार्थस्य वा मध्ये अन्तर्भावविवक्षया सप्ततत्त्वानि भण्यन्ते । हे भगवन् ! यद्यपि कथंचित्परिणामित्वबलेन भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन नवपदार्थाः सप्ततत्त्वानि वा सिद्धानि तथापि तैः किं प्रयोजनम् । यथैवाभेदनयेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्यान्तर्भावो जातस्तथैव विशेषाभेदनयविवक्षायामास्रवादिपदार्थानामपि जीवाजीवद्वयमध्येऽन्तर्भावे कृते जीवाजीवौ द्वावेव पदार्थाविति । तत्र परिहारः—हेयोपादेयतत्त्वपरिज्ञानप्रयोजनार्थमास्रवादिपदार्थाः व्याख्येया भवन्ति । तदेव कथयति—उपादेयतत्त्वमक्षयानन्तसुखं, तस्य कारणं मोक्षः, मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जराद्वयं , तस्य कारणं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणलक्षणं निश्चयरत्नत्रयस्वरूपं, तत्साधकं व्यवहार-

---

आते हैं । अभेदनयसे पुण्य और पाप—इन दो पदार्थोंका आस्रव पदार्थमें अथवा वंध पदार्थमें समावेश करनेकी अपेक्षासे सात तत्त्व कहे जाते हैं ।

प्रश्नः— हे भगवान ! यद्यपि कथंचित् परिणामीपनेके बलसे, भेदप्रधान पर्यायार्थिकनयसे नौ पदार्थ और सात तत्त्व सिद्ध हुए तो भी उनसे क्या प्रयोजन है ? जिस प्रकार अभेदनयसे पुण्य और पापपदार्थका अंतर्भाव सात तत्त्वोंमें हो गया उसी प्रकार विशेष अभेदनयकी विवक्षामें आस्रवादि पदार्थोंका भी जीव और अजीव इन दो द्रव्योंमें अंतर्भाव करने पर जीव और अजीव ये दो पदार्थ ही सिद्ध होते हैं । इस शंकाका परिहार करते हैं:—हेय और उपादेय तत्त्वका परिज्ञान करानेरूप प्रयोजनके लिये आस्रवादि पदार्थोंका व्याख्यान करना योग्य है । वही कहते हैं:—अक्षय–अनंत सुख वह उपादेयतत्त्व है, उसका कारण मोक्ष है, मोक्षका कारण संवर और निर्जरा—ये दो हैं, उसका कारण विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निजात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–अनुचरणरूप लक्षणयुक्त [1]निश्चयरत्नत्रयस्वरूप और उसका [2]साधक व्यवहाररत्नत्रयरूप है । अव, हेयतत्त्व कहा जाता है—

१–आत्माश्रित निश्चयनय है । [देखो, श्री समयसार गाथा २७२ की श्री आत्मख्याति टीका ।]

२–यहां साधक कहा है वह 'भिन्न साधक'के अर्थमें समझना । भिन्न साध्य-साधनपना है वह वास्तविक साध्य-साधनपना नहीं है, मात्र उपचरित है । [देखो, श्री पंचास्तिकाय संग्रह पृष्ठ २३० (भिन्न साध्यसाधनभाव); श्री समयसार गाथा ४१४ की तात्पर्यवृत्ति टीका बहिरंग सहकारी कारण (अर्थात् निमित्त); श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४८-२४९ (जो मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्गका निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचारसे मोक्षमार्ग कहते हैं, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है ।)]

रत्नत्रयरूपं चेति। इदानीं हेयतत्त्वं कथ्यते—आकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं निश्चयेनेन्द्रियसुखं च हेयतत्त्वम्। तस्य कारणं संसारः, संसारकारणमास्रवबन्धपदार्थ-द्वयं, तस्य कारणं पूर्वोक्तंव्यवहारनिश्चयरत्नत्रयाद्विलक्षणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति। एवं हेयोपादेयतत्त्वव्याख्याने कृते सति सप्ततत्त्वनवपदार्थाः स्वयमेव सिद्धाः।

इदानीं कस्य पदार्थस्य कः कर्त्तेति कथ्यते—निजनिरञ्जनशुद्धात्मभावनोत्पन्न-परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादपराङ्मुखो बहिरात्मा भण्यते। स चास्रवबन्धपाप-पदार्थत्रयस्य कर्ता भवति। क्वापि काले पुनर्मन्दमिथ्यात्वमन्दकषायोदये सति भोगा-कांक्षादिनिदानबंधेन भाविकाले पापानुबंधिपुण्यपदार्थस्यापि कर्त्ता भवति। यस्तु पूर्वोक्तबहिरात्मनो विलक्षणः सम्यग्दृष्टिः स संवरनिर्जरामोक्षपदार्थत्रयस्य कर्त्ता भवति। रागादिविभावरहितपरमसामायिके यदा स्थातुं समर्थो न भवति तदा विषयकषायो-त्पन्नदुर्ध्यानवञ्चनार्थं संसारस्थितिच्छेदं कुर्वन् पुण्यानुबंधितीर्थंकरनामप्रकृत्यादिविशिष्ट-

---

आकुलता उत्पन्न करनेवाला नरकगति आदिका दुःख और निश्चयसे इन्द्रियजनित सुख हेयतत्त्व है। उसका कारण संसार है, संसारका कारण आस्रव और बंध—दो पदार्थ हैं, उनका कारण पूर्वोक्त, [1]व्यवहार और निश्चयरत्नत्रयसे विलक्षण मिथ्या-दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीन हैं। इसप्रकार हेय और उपादेयतत्त्वका व्याख्यान करने पर सात तत्त्व और नौ पदार्थ स्वयमेव सिद्ध हुए।

अब, किस पदार्थका कर्ता कौन है उसका कथन किया जाता है:—निज निरं-जन शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न परम आनंद जिसका एक लक्षण है वैसे सुखामृतके रसा-स्वादसे पराङ्मुख जीव बहिरात्मा कहलाता है; वह बहिरात्मा आस्रव, बंध और पाप—इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है; और किसी समय मिथ्यात्व और कषायका मंद उदय होने पर भोगोंकी आकांक्षा आदि निदान बंधसे भविष्यकालमें पापानुबंधी पुण्य पदार्थका भी कर्ता होता है। जो पूर्वोक्त बहिरात्मासे विपरीत लक्षणवाले सम्यग्-दृष्टि हैं वह संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है; जब वह रागादि विभावरहित परम सामायिकमें स्थिर होनेमें समर्थ नहीं होता है तब विषयकषायोंसे उत्पन्न दुर्ध्यानसे बचनेके लिये, संसारकी स्थितिका छेद करता हुआ पुण्यानुबंधी तीर्थंकर नामकर्मकी प्रकृति आदि विशिष्ट पुण्यपदार्थका भी कर्ता होता है।

१—देखो—श्री समयसार गाथा २७२ की श्री आत्मख्याति टीका। (पराश्रित व्यवहारनय है।); श्रीसमयसार गाथा २७२ की तात्पर्यवृत्ति टीकामें उत्थानिका (परम-अभेद-रत्नत्रयात्मक निर्वि-कल्पसमाधिरूप निश्चयनय द्वारा विकल्पात्मक व्यवहारनय वास्तवमें बाधित किया जाता है।)

पुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति । कर्तृत्वविषये नयविभागः कथ्यते । मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य पुद्‌गलद्रव्यपर्यायरूपाणामास्रवबंधपुण्यपापपदार्थानां कर्तृत्वमनुपचरितासद्‌भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणां पुनरशुद्धनिश्चयनयेनेति । सम्यग्दृष्टेस्तु संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां द्रव्यरूपाणां यत्कर्तृत्वं तदप्यनुपचरितासद्‌भूतव्यवहारेण, जीवभावपर्यायरूपाणां तु विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेनेति । परमशुद्धनिश्चयेन तु "ण वि उप्पज्जइ, ण वि मरइ, बन्धु ण मोक्खु करेइ । जिउ परमत्थे जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ ।" इति वचनाद्-बन्धमोक्षौ न स्तः । स च पूर्वोक्तविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चय आगमभाषया किं भण्यते—स्वशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण भविष्यतीति भव्यः, एवंभूतस्य भव्यत्वसंज्ञस्य पारिणामिकभावस्य संबन्धिनी व्यक्तिर्भण्यते । अध्यात्मभाषया पुनर्द्रव्यशक्तिरूपशुद्ध-पारिणामिकभावविषये भावना भण्यते, पर्यायनामान्तरेण निर्विकल्पसमाधिर्वा शुद्धो-पयोगादिकं चेति । यतः एव भावना मुक्तिकारणं ततः एव शुद्धपारिणामिकभावो

अब, कर्तृत्वके विषयमें नयविभागका कथन करते हैं : मिथ्यादृष्टि जीवको पुद्‌गल-द्रव्यके पर्यायरूप आस्रव, वंध, पुण्य और पाप पदार्थोका कर्तृत्व अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनयसे है और जीवभाव पर्यायरूप आस्रव-बंध-पुण्य-पाप-पदार्थोंका कर्तृत्व अशुद्धनिश्चयनयसे है । सम्यग्दृष्टि जीवको जो द्रव्यरूप, संवर, निर्जरा और मोक्षपदार्थका कर्तृत्व है वह भी अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारसे है और जीवभाव पर्यायरूप संवर-निर्जरा-मोक्ष पदार्थोंका कर्तृत्व विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे है । परमशुद्धनिश्चयनयसे तो "हे योगी, परमार्थसे यह जीव उत्पन्न नहीं होता है, मरता नहीं है, वंध और मोक्ष करता नहीं है इसप्रकार जिनेन्द्र कहते हैं ।" इस वचनसे जीवको [1]बंधमोक्ष नहीं है ।

पूर्वोक्त विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनयको आगमभाषामें क्या कहते हैं ?—जो स्व-शुद्धात्माके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप होगा वह 'भव्य'; इसप्रकारके 'भव्यत्व' नामक पारिणामिकभावके साथ संबंधित 'व्यक्ति' कही जाती है (अर्थात् भव्यत्व पारिणामिकभावकी व्यक्तता अर्थात् प्रगटता कही जाती है) । और अध्यात्मभाषामें उसे ही द्रव्यशक्तिरूप शुद्धपारिणामिकभावकी भावना कहते हैं, अन्य नामसे उसे 'निर्विकल्प समाधि' अथवा 'शुद्धोपयोग' आदि कहते हैं ।

क्योंकि भावना मुक्तिका कारण है अतः शुद्धपारिणामिक भाव ध्येयरूप है,

---

१—परमात्मप्रकाश अध्याय १ गाथा—६८

ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपी न भवति । कस्मादिति चेत् ? ध्यानभावनापर्यायो विनश्वरः स च द्रव्यरूपत्वादविनश्वर इति । इदमत्र तात्पर्यं—मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालरहितनिजशुद्धात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखसंवित्तिरूपा च भावना मुक्तिकारणं भवति । तां च कोऽपि जनः केनापि पर्यायनामान्तरेण भणतीति । एवं पूर्वोक्तप्रकारेणानेकांतव्याख्यानेनास्रवबंधपुण्यपापपदार्थाः जीवपुद्गलसंयोगपरिणामरूपविभावपर्यायेणोत्पद्यन्ते । संवरनिर्जरामोक्षपदार्थाः पुनर्जीवपुद्गलसंयोगपरिणामविनाशोत्पन्नेन विवक्षितस्वभावपर्यायेणेति स्थितम् । तद्यथा—

आसव बंधण संवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रवबंधनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये ।
जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥२८॥

ध्यान अथवा भावनारूप नहीं है । ऐसा किसलिये ?

समाधानः—ध्यान अथवा भावनारूप पर्याय विनाशीक है और वह (शुद्ध-पारिणामिकभाव) तो द्रव्यरूप होनेसे अविनाशी है । यहां तात्पर्य यह है—मिथ्यात्व-रागादि विकल्पजालरहित निजशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सहजानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखके संवेदनरूप जो भावना है वह मुक्तिका कारण है । उस भावनाको कोई पुरुष किसी अन्य नामसे कहते हैं ।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे अनेकांतके व्याख्यानसे सिद्ध हुआ कि—आस्रव, बंध, पुण्य और पाप—ये चार पदार्थ जीव और पुद्गलके संयोगपरिणामरूप जो विभावपर्याय है उससे उत्पन्न होते हैं, और संवर, निर्जरा तथा मोक्ष—ये तीन पदार्थ जीव और पुद्गलके संयोगरूप परिणामके विनाशसे उत्पन्न, विवक्षित स्वभावपर्याय द्वारा उत्पन्न होते हैं ।

वही अब कहा जाता है :—

गाथा-२८

गाथार्थः—आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पापरूप जो पदार्थ जीव और अजीव द्रव्यके विशेष हैं, उन्हें भी हम संक्षेपमें कहते हैं ।

यह तौ भयो प्रथम अधिकार, दूजो सुणूं तत्त्व-विस्तार ।
जीव अजीव रु आस्रव बंध, संवर निर्जर मोक्ष अबंध ॥२८॥

व्याख्या—"आसव" निरास्रवस्वसंवित्तिविलक्षणशुभाशुभपरिणामेन शुभाशुभकर्मागमनमास्रवः । "बंधण" बंधातीतशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भभावनाच्युतजीवस्य कर्मप्रदेशैः सह संश्लेषो बन्धः । "संवर" कर्मास्रवनिरोधसमर्थस्वसंवित्तिपरिणतजीवस्य शुभाशुभकर्मागमनसंवरणं संवरः । "णिज्जर" शुद्धोपयोगभावनासामर्थ्येन नीरसीभूतकर्मपुद्गलानामेकदेशगलनं निर्जरा । "मोक्खो" जीवपुद्गलसंश्लेषरूपवन्धस्य विघटने समर्थः स्वशुद्धात्मोपलब्धिपरिणामो मोक्ष इति । "सपुण्णपावा जे" पुण्यपापसहिता ये, "ते वि समासेण पभणामो" यथा जीवाजीवपदार्थौ व्याख्यातौ पूर्वं तथा तानप्यास्रवादिपदार्थान् समासेण संक्षेपेण प्रभणामो वयं; ते च कथंभूताः ? "जीवाजीवविसेसा" जीवाजीवविशेषाः । चैतन्यभावरूपा जीवस्य विशेषाः । चैतन्याभावरूपा अजीवस्य विशेषाः । विशेषा इत्यस्य कोऽर्थः ? पर्यायाः । चैतन्याः अशुद्धपरिणामा जीवस्य,

---

टीकाः—"आसव" निरास्रव स्वसंवेदनसे विलक्षण शुभाशुभ परिणाम द्वारा शुभ और अशुभ कर्मोंका आना वह 'आस्रव' है । "बंधण" बंधरहित शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप भावनासे [1]भ्रष्ट हुए जीवको कर्मके प्रदेशोंके साथ संश्लेष (संबंध) होता है वह 'बंध' है । "संवर" कर्मके आगमनको रोकनेमें समर्थ स्वानुभवरूपसे परिणमित जीवको शुभाशुभ कर्मोंके आगमनका निरोध वह 'संवर' है । "णिज्जर" शुद्धोपयोगकी भावनाके सामर्थ्यसे नीरस हुए कर्म पुद्गलोंका एकदेश खिर जाना वह 'निर्जरा' है । "मोक्खो" जीव और पुद्गलके संश्लेषरूप बंधका नाश करनेमें समर्थ निज शुद्धात्माकी उपलब्धिरूप परिणाम वह 'मोक्ष' है । "सपुण्णपावा जे" जो (उपरोक्त आस्रवादि पदार्थ) पुण्य-पाप सहित हैं । "ते वि समासेण पभणामो" जिस प्रकार पहले जीव और अजीव पदार्थोंका व्याख्यान किया है उसी प्रकार उन आस्रवादि पदार्थोंको भी संक्षेपमें कहते हैं । वे कैसे हैं ? "जीवाजीवविसेसाः" जीव और अजीवके विशेष हैं—चैतन्यभावरूप हैं वे जीवके विशेष हैं और चैतन्यके अभावरूप हैं वे अजीवके विशेष हैं । 'विशेष'का क्या अर्थ है ? 'विशेष'का अर्थ पर्याय है । चैतन्यरूप अशुद्ध परिणाम जीवकी (पर्यायें) हैं, अचेतनरूप कर्मपुद्गलकी पर्यायें

१—यहां मुख्यरूपसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका कथन किया है क्योंकि वे 'शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धिरूप भावनासे भ्रष्ट हैं ।' अशुद्धनिश्चयनयसे जो रागादिरूप भावबंध है वह भी शुद्धनिश्चयनयसे पुद्गलका ही बंध है । द्रव्यसंग्रह गाथा १६ टीका ।

अचेतनाः कर्मपुद्गलपर्याया अजीवस्येत्यर्थः । एवमधिकारसूत्रगाथा गता ॥२८॥

अथ गाथात्रयेणास्रवव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ भावास्रवद्रव्यास्रवस्वरूपं सूचयति :—

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२६॥

आस्रवति येन कर्म्म परिणामेन आत्मनः सः विज्ञेयः ।
भावास्रवः जिनोक्तः कर्म्मास्रवणं परः भवति ॥२९॥

व्याख्या—"आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो" आस्रवति कर्म येन परिणामेनात्मनः स विज्ञेयो भावास्रवः । कर्मास्रवनिर्मूलनसमर्थ-शुद्धात्मभावनाप्रतिपक्षभूतेन येन परिणामेनास्रवति कर्म; कस्यात्मनः ? स्वस्य; स परिणामो भावास्रवो विज्ञेयः । स च कथंभूतः ? "जिणुत्तो" जिनेन वीतराग-

---

हैं वे अजीवकी (पर्यायें) हैं । इस प्रकार अधिकार सूत्ररूप गाथा पूर्ण हुई ॥२८॥

अव तीन गाथाओं द्वारा आस्रव पदार्थका व्याख्यान करते हैं । उसमें प्रथम भावास्रव और द्रव्यास्रवके स्वरूपकी सूचना करते हैं :—

गाथा–२९

गाथार्थः—आत्माके जिस परिणामसे कर्मका आस्रव होता है उसे जिनेन्द्र कथित भावास्रव जानना और जो (ज्ञानावरणादि) कर्मोका आस्रव है वह द्रव्यास्रव है ।

टीकाः—"आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ भावासवो" आत्माके जिस [1]परिणामसे कर्म आता है उसे भावास्रव जानना । कर्मके आस्रवका नाश करनेमें समर्थ ऐसी शुद्धात्माकी भावनासे प्रतिपक्षभूत जिस [1]परिणामसे कर्म आता है; किसके परिणामसे ? आत्माके–अपने; उस परिणामको भावास्रव जानना । वह भावास्रव कैसा है ? "जिणुत्तो" जिनेन्द्र-वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा कथित है । "कम्मास्रवणं परो होदि" कर्मोका जो आगमन है वह 'पर' है । (अर्थात् ज्ञाना-

---

१–परिणामके निमित्तसे

पुण्यपाप ये नव, इन मांहि, आवै कर्मह आस्रव चाहि ।
भावास्रव आतम-परिणाम, पुद्गल आवै द्रव्य सुनाम ॥२९॥

सर्वज्ञेनोक्तः । "कम्मासवणं परो होदि" कर्मास्रवणं परो भवति, ज्ञानावरणादिद्रव्य-कर्मणामास्रवणमागमनं परः । पर इति कोऽर्थः ? भावास्रवादन्यो भिन्नो । भावास्रव-निमित्तेन तैलम्रक्षितानां धूलिसमागम इव द्रव्यास्रवो भवतीति । ननु "आस्रवति येन कर्म" तेनैव पदेन द्रव्यास्रवो लब्धः, पुनरपि कर्मास्रवणं परो भवतीति द्रव्यास्रव-व्याख्यानं किमर्थमिति यदुक्तं त्वया ? तन्न । येन परिणामेन किं भवति आस्रवति कर्म, तत्परिणामस्य सामर्थ्यं दर्शितं, न च द्रव्यास्रवव्याख्यानमिति भावार्थः ॥२९॥

अथ भावास्रवस्वरूपं विशेषेण कथयति :—

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओऽथ विण्णेया ।
पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः अथ विज्ञेयाः ।
पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रयः चत्वारः क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य ॥३०॥

वरणादि द्रव्यकर्मोका आस्रवण—आगमन वह पर अर्थात् अन्य है ।) 'पर' शब्दका क्या अर्थ है ? 'भावास्रवसे अन्य, भिन्न ।' भावास्रवके निमित्तसे, तेल लगे हुए पदार्थोको धूल चिपकती है उसीप्रकार, जीवको द्रव्यास्रव होता है ।

शंकाः—वास्तवमें "आस्रवति येन कर्म"—'जिससे कर्मका आस्रव होता है' इस पदसे ही द्रव्यास्रवका कथन हो गया तो फिर "कम्मासवणं परो होदि"—कर्मास्रव अन्य होता है"—इस पदसे द्रव्यास्रवका व्याख्यान किसलिये किया ?

समाधानः—तुम्हारी शंका योग्य नहीं है । क्योंकि 'जिस परिणामसे; क्या होता है ? कर्मका आस्रव होता है;' ऐसा जो कथन है उससे परिणामका सामर्थ्य बतलाया है, द्रव्यास्रवका व्याख्यान नहीं किया है । इस प्रकार तात्पर्य है ॥२९॥

अब भावास्रवका स्वरूप विशेषरूपसे कहते हैं:—

गाथा—३०

गाथार्थः—पहलेके (भावास्रवके) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोधादि कषाय इतने भेद जानना । उनमें मिथ्यात्व आदिके अनुक्रमसे पांच, पांच, पन्द्रह, तीन और चार भेद हैं ।

मिथ्या अविरत औ परमाद, योग कषाय तणूं उन्माद ।
पांच-पांच पणदस तिय च्यारि, भावास्रव के भेद कहारि ॥३०॥

व्याख्या—"मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ" मिथ्यात्वाविरतिप्रमाद-योगक्रोधादयः । अभ्यन्तरे वीतरागनिजात्मतत्त्वानुभूतिरुचिविषये विपरीताभिनिवेश-जनकं बहिर्विषये तु परकीयशुद्धात्मतत्त्वप्रभृतिसमस्तद्रव्येषु विपरीताभिनिवेशोत्पादकं च मिथ्यात्वं भण्यते । अभ्यन्तरे निजपरमात्मस्वरूपभावनोत्पन्नपरमसुखामृतरतिविलक्षणा बहिर्विषये पुनरव्रतरूपा चेत्यविरतिः । अभ्यन्तरे निष्प्रमादशुद्धात्मानुभूतिचलनरूपः, बहिर्विषये तु मूलोत्तरगुणमलजनकश्चेति प्रमादः । निश्चयेन निष्क्रियस्यापि परमात्मनो व्यवहारेण वीर्यान्तरायक्षयोपशमोत्पन्नो मनोवचनकायवर्गणावलम्बनः कर्मादानहेतुभूत आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो योग इत्युच्यते । अभ्यन्तरे परमोपशममूर्तिकेवलज्ञानाद्यनन्तगुण-स्वभावपरमात्मस्वरूपक्षोभकारकाः बहिर्विषये तु परेषां संबंधित्वेन क्रूरत्वाद्यावेशरूपाः

टीकाः—"मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ" मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोधादि कषाय आस्रवके भेद हैं। अंतरंगमें जो वीतराग निजात्मतत्त्वकी अनुभूति और रुचिमें विपरीत अभिनिवेश उत्पन्न कराता है और बाह्यमें अन्यके शुद्धात्मतत्त्व आदि समस्त द्रव्योंमें विपरीत अभिनिवेश उत्पन्न कराता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं।

अंतरंगमें निज परमात्मस्वरूपकी भावनासे उत्पन्न परम सुखामृतमें जो रति (—लीनता) उससे विलक्षण और बाह्य विषयमें अव्रतरूप (अर्थात् व्रत धारण न करनेका भाव) वह अविरति है।

अंतरंगमें प्रमादरहित शुद्धात्माकी अनुभूतिमें चलनरूप (चलपनेरूप) और बाह्य-विषयमें मूल और उत्तरगुणोंमें मल उत्पन्न करनेवाला वह प्रमाद है।

निश्चयसे परमात्मा निष्क्रिय है तो भी उसे व्यवहारसे वीर्यान्तरायकर्मके क्षयोपक्षमसे उत्पन्न ऐसा, मन-वचन-काय वर्गणाको अवलम्बन करनेवाला, कर्म-वर्गणाके ग्रहण करनेमें हेतुभूत ऐसे आत्मप्रदेशोंका जो परिस्पंद होता है उसे योग कहते हैं।

अंतरंगमें परम-उपशममूर्ति, केवलज्ञानादि अनंतगुणस्वभावी परमात्मस्व-रूपमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला और बाह्य-विषयमें अन्य पदार्थोंके संबंधसे क्रूरता आदि आवेशरूप वह क्रोधादि कषाय है।

क्रोधादयश्चेत्युक्तलक्षणाः पञ्चास्रवाः । "अथ" अथो "विण्णेया" विज्ञेया ज्ञातव्याः । कति-भेदास्ते ? "पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु" पञ्चपञ्चपञ्चदशत्रिचतुर्भेदाः क्रमशो भवन्ति पुनः । तथाहि "एयंतवुद्धदरसी विवरीओ बह्म तावसो विणओ । इन्दो विय संसइदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ।१।" इति गाथाकथितलक्षणं पञ्चविधं मिथ्यात्वम् । हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाकाङ्क्षारूपेणाविरितिरपि पञ्चविधा । अथवा मनःसहितपञ्चेन्द्रिय-प्रवृत्तिपृथिव्यादिषट्कायविराधनाभेदेन द्वादशविधा । "विकहा तहा कसाया इन्दियणिद्दा तहेव पणयो य । चदु चदु पणमेगेगं हुंति पमादाहु पण्णरस ।१।" इति गाथा-कथितक्रमेण पञ्चदश प्रमादाः । मनोवचनकायव्यापारभेदेन त्रिविधो योगः, विस्तरेण पञ्चदशभेदो वा । क्रोधमानमायालोभभेदेन कषायाश्चत्वारः, कषायनोकषायभेदेन पञ्चविंशतिविधा वा । एते सर्वे भेदाः कस्य सम्बन्धिनः "पुव्वस्स" पूर्वसूत्रोदित-भावास्रवस्येत्यर्थः ।।३०।।

इस प्रकार ऊपर कहे लक्षणयुक्त पांच आस्रव हैं । 'अथ' अब, "विण्णेया" इसे जानना चाहिये । उसके कितने भेद हैं ? "पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु" मिथ्यात्व आदिके अनुक्रमसे पांच, पांच, पन्द्रह, तीन और चार भेद हैं ।

उनका विस्तार:—("एयंतवुद्धदरसी विवरीओ ब्रह्म तावसो विणओ । इन्दो विय संसइदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ।। बौद्धमत एकान्तमिथ्यात्वी है, याज्ञिक-ब्रह्म विपरीतमिथ्यात्वी है, तापस विनयमिथ्यात्वी है, इन्द्राचार्य संशयमिथ्यात्वी है और मस्करी अज्ञानमिथ्यात्वी है ।")—इस गाथामें कहे हुए लक्षण अनुसार पांच प्रकारका मिथ्यात्व है । हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहकी आकांक्षारूप अविरति भी पांच प्रकारकी है, अथवा मनसहित पांच इन्द्रियकी प्रवृत्ति और पृथ्वी आदि छहकायकी विराधनाके भेदसे बारह प्रकारकी है । "चार विकथा, चार कषाय, पांच इन्द्रिय, निद्रा एक और स्नेह एक—इसप्रकार पन्द्रह प्रमाद कहे हैं ।" —[1]इस गाथामें कहे अनुसार पन्द्रह प्रमाद हैं । मन, वचन और कायाके व्यापारके भेदसे तीन प्रकारका योग है अथवा विस्तारसे पन्द्रह प्रकारका योग है । क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे कषाय चार हैं; अथवा कषाय और नोकषायके भेदसे पच्चीस प्रकार हैं । ये सब भेद किसके हैं ? "पुव्वस्स" पूर्व गाथामें कथित भावास्रवके हैं ।।३०।।

१—गोम्मटसार जीवकांड गाथा—३४

अथ द्रव्यास्रवस्वरूपमुद्योतयति :—

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति ।
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥३१॥

व्याख्या—"णाणावरणादीणं" सहजशुद्धकेवलज्ञानमभेदेन केवलज्ञानाद्यनन्त-गुणाधारभूतं ज्ञानशब्दवाच्यं परमात्मानं वा आवृणोतीति ज्ञानावरणं, तदादिर्येषां तानि ज्ञानावरणादीनि तेषां ज्ञानावरणादीनां "जोग्गं" योग्यं "जं पुग्गलं समासवदि" स्नेहाभ्यक्तशरीराणां धूलिरेणुसमागम इव निष्कषायशुद्धात्मसंवित्तिच्युतजीवानां कर्म-वर्गणारूपं यत्पुद्गलद्रव्यं समास्रवति, "दव्वासओ स णेओ" द्रव्यास्रवः स विज्ञेयः । "अणेयभेओ" स च ज्ञानदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायसंज्ञानामष्टमूल-

---

अब द्रव्यास्रवका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा—३१

गाथार्थः—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके योग्य जो पुद्गल आते हैं, उन्हें द्रव्या-स्रव जानना; वे अनेक भेदवाले हैं ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

टीकाः—"णाणावरणादीणं" सहज शुद्ध केवलज्ञानको अथवा अभेदकी अपे-क्षासे केवलज्ञानादि अनंतगुणके आधारभूत, ज्ञानशब्दसे वाच्य परमात्माको जो आवृत्त करता है अर्थात् ढकता है उसे ज्ञानावरण कहते हैं । वह ज्ञानावरण जिनकी आदिमें है ऐसे जो ज्ञानावरणादि; उन्हें "जोग्गं" योग्य "जं पुग्गलं समासवदि" तेलयुक्त शरीरवालोंको धूलके रजकणोंका जिस प्रकार समागम होता है उसीप्रकार कषायरहित शुद्धात्माके [1]संवेदनसे रहित जीवोंको जो कर्मवर्गणारूप पुद्गलका आस्रव होता है, "दव्वासओ स णेओ" उसे द्रव्यास्रव जानना । "अणेयभेओ" और

१—शुद्धात्माके संवेदन रहित मिथ्यादृष्टि जीव हैं; उनकी मुख्यतासे यह कथन है ।

ज्ञानावरण आदिके योग्य, पुद्गल आवैं जियकैं भोग्य ।
द्रव्यास्रव भाष्यो बहु भेद, जिणवरदेव, रहित वचखेद ॥३१॥

प्रकृतीनां भेदेन, तथैव "पण णव दु अट्ठवीसा चउ तियणवदी य दोण्णि पंचेव । वावण्णहीण वियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥१॥" इति गाथाकथितक्रमेणाष्टचत्वारिंशदधिकशतसंख्याप्रमितोत्तरप्रकृतिभेदेन तथा चासंख्येयलोकप्रमितपृथिवीकायनामकर्माद्युत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेणानेकभेद इति "जिणक्खादो" जिनख्यातो जिनप्रणीत इत्यर्थः ॥३१॥ एवमास्रवव्याख्यानगाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतम् ।

अतः परं सूत्रद्वयेन वन्धव्याख्यानं क्रियते । तत्रादौ गाथापूर्वार्धेन भावबन्धमुत्तरार्धेन तु द्रव्यबन्धस्वरूपमावेदयति :—

वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

वध्यते कर्म येन तु चेतनभावेन भाववन्धः सः ।
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं इतरः ॥३२॥

वह (द्रव्यास्रव) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र तथा अंतराय नामक आठ मूल प्रकृतिरूप भेदसे, तथा "पण णव दु अट्ठवीसा चउ तियणवदी य दोण्णि पंचेव । वावण्णहीण वियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥१॥" (ज्ञानावरणीयकी पांच, दर्शनावरणीयकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी अट्ठाइस, आयुकी चार, नामकी तिरानवे, गोत्रकी दो और अंतरायकी पांच—इस प्रकार एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंके नाशसे सिद्ध होते हैं।)" इस [1]गाथामें कथित क्रमसे एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृतिरूप भेदसे, और असंख्यात लोकप्रमाण पृथ्वीकाय—नामकर्म आदि उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप भेदसे अनेक भेदयुक्त हैं इसप्रकार "जिणक्खादो" श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥३१॥

इस प्रकार आस्रवके व्याख्यानकी तीन गाथाओंसे प्रथम स्थल समाप्त हुआ ।

अव दो गाथाओं द्वारा बन्धका व्याख्यान करते हैं । वहां प्रथम गाथाके पूर्वार्धसे भाववंध और उत्तरार्धसे द्रव्यबंधका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा—३२

गाथार्थः—जिस चेतनभावसे कर्म बंधता है वह भाववंध है और कर्म तथा

१—सिद्धभक्ति गाथा—८

जिस चेतन परिणामह कर्म, बंधि है भाववंध सो मर्म ।
आतम-कर्म-देश-परवेश, आपस माहि द्रव्य यह देश ॥३२॥

व्याख्या—"वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो" बध्यते कर्म येन चेतनभावेन स भावबन्धो भवति । समस्तकर्मबंधविध्वंसनसमर्थाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयपरमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणस्य,... अभेदनयेनानन्तज्ञानादिगुणाधारभूतपरमात्मनो वा संबन्धिनी या तु निर्मलानुभूतिस्तद्विपक्षभूतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपेण वाऽशुद्धचेतनभावेन परिणामेन बध्यते ज्ञानावरणादि कर्म येन भावेन स भावबन्धो भण्यते । "कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो" कर्मात्मप्रदेशानामन्योन्य प्रवेशनमितरः । तेनैव भावबंधनिमित्तेन कर्मप्रदेशानामात्मप्रदेशानां च क्षीरनीरवदन्योन्यं प्रवेशनं संश्लेषो द्रव्यबन्ध इति ॥३२॥

अथ तस्यैव बन्धस्य गाथापूर्वार्धेन प्रकृतिबन्धादिभेदचतुष्टयं कथयति, उत्तरार्धेन तु प्रकृतिबन्धादीनां कारणं चेति ।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

आत्माके प्रदेशोंका परस्पर प्रवेश वह द्रव्यबंध है ।

टीकाः—"वज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो" जिस चेतनभावसे कर्म बंधता है वह भावबंध है । समस्त कर्मबंध नष्ट करनेमें समर्थ, अखंड, एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, परम चैतन्यविलास जिसका लक्षण है ऐसे ज्ञानगुणसे संबंधित अथवा अभेदनयसे अनंतज्ञानादि गुणके आधारभूत परमात्माके साथ संबंधित जो निर्मल अनुभूति, उससे विरुद्ध मिथ्यात्व-रागादि परिणतिरूप अथवा अशुद्ध चेतन-भावस्वरूप जिस परिणामसे ज्ञानावरणादि कर्म बंधते हैं वह परिणाम भावबंध कहलाता है । "कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो" कर्म और आत्माके प्रदेशोंका परस्पर प्रवेश होना वह अन्य अर्थात् द्रव्यबंध है । उसी भावबंधके निमित्तसे कर्मके प्रदेशोंका और आत्माके प्रदेशोंका, दूध और पानीकी भांति, एक दूसरेमें प्रवेश अर्थात् संश्लेष वह द्रव्यबंध है ॥३२॥

अब गाथाके पूर्वार्धसे उसी बंधके प्रकृतिबंध आदि चार भेदोंका कथन करते हैं और उत्तरार्धसे उनके कारणका कथन करते हैं :—

प्रकृति प्रदेश रु थिति अनुभाग, च्यारि भेद हैं बंध-विभाग ।
योग करै परकति-परदेश, थिति-अनुभाग कषाय-असेस ॥३३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधिः बन्धः ।
योगात् प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः ॥३३॥

व्याख्या—"पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो" प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधो बन्धो भवति । तथाहि—ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? देवतामुखवस्त्रमिव ज्ञानप्रच्छादनता । दर्शनावरणीयस्य का प्रकृतिः ? राजदर्शनप्रतिषेधकप्रतीहारवद्दर्शनप्रच्छादनता । सातासातवेदनीयस्य का प्रकृतिः ? मधुलिप्तखड्गधारास्वादनवदल्पसुखबहुदुःखोत्पादकता । मोहनीयस्य का प्रकृतिः ? मद्यपानवद्धेयोपादेयविचारविकलता । आयुःकर्मणः का प्रकृतिः ? निगडवद्गत्यन्तरगमननिवारणता । नामकर्मणः का प्रकृतिः ? चित्रकारपुरुषवन्नानारूपकरणता । गोत्रकर्मणः का प्रकृतिः ? गुरुलघुभाजनकारककुम्भकारवदुच्चनीचगोत्रकरणता । अन्तरायकर्मणः का प्रकृतिः ? भाण्डागारिकवद्दानादिविघ्नकरणतेति । तथाचोक्तं—"पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलाल-

---

गाथा—३३

गाथार्थः—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश—इन भेदोंसे बंध चार प्रकारका है; योगसे प्रकृति और प्रदेशबंध होता है और कषायसे स्थिति और अनुभागबंध होता है ।

टीकाः—"पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो" प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे बंध चार प्रकारका है । उसका विस्तारः—ज्ञानावरणकर्मका स्वभाव क्या है ? जिस प्रकार पर्दा देवके मुखको ढक देता है उसी प्रकार ज्ञानावरणकर्म ज्ञानको ढक देता है । दर्शनावरणकर्मका स्वभाव क्या है ? राजाके दर्शनमें प्रतिहारी जिसप्रकार रोकता है उसीप्रकार दर्शनावरणकर्म दर्शनमें रुकावट करता है । साता और असाता वेदनीयका स्वभाव क्या है ? मधुसे लिप्त तलवारकी धार चाटनेसे जिस प्रकार सुख थोड़ा और दुःख बहुत होता है उसीप्रकार वेदनीयकर्म सुख अल्प और दुःख अधिक उत्पन्न करता है । मोहनीयका स्वभाव क्या है ? मद्यपानकी भांति हेय-उपादेय पदार्थके विचारमें विकलता । आयुष्यकर्मका स्वभाव क्या है ? वेड़ीकी भांति एक गतिमेंसे अन्य गतिमें जानेसे रोकना । नामकर्मका स्वभाव क्या है ? चित्रकारकी भांति अनेक प्रकारके रूप करना । गोत्रकर्मका स्वभाव क्या है ? छोटे-बड़े बर्तन बनानेवाले कुम्हारकी भांति उच्च अथवा नीच गोत्र करना । अंतरायकर्मका स्वभाव क्या है ? भंडारीकी भांति दानादि कार्यमें विघ्न करना । कहा है कि:—"पट, प्रतिहारी-द्वारपाल, तलवार, मद्य, बेड़ी, चित्रकार,

भंडयारीणं । जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥ १ ॥" इति दृष्टान्ताष्टकेन प्रकृतिबन्धो ज्ञातव्यः । अजागोमहिष्यादिदुग्धानां प्रहरद्वयादिंस्वकीयमधुररसावस्थानपर्यन्तं यथा स्थितिर्भण्यते, तथा जीवप्रदेशेष्वपि यावत्कालं कर्मसम्बन्धेन स्थितिस्तावत्कालं स्थितिबन्धो ज्ञातव्यः । यथा च तेषामेव दुग्धानां तारतम्येन रसगतशक्तिविशेषोऽनुभागो भण्यते तथा जीवप्रदेशस्थितकर्मस्कन्धानामपि सुखदुःखदानसमर्थशक्तिविशेषोऽनुभागबन्धो विज्ञेयः । सा च घातिकर्मसम्बंधिनी शक्तिर्लतादार्वस्थिपाषाणभेदेन[1] चतुर्धा । तथैवाशुभाघातिकर्मसम्बंधिनी निम्बकाञ्जीरविषहालाहलरूपेण, शुभाघातिकर्मसम्बन्धिनी पुनर्गुडखण्डशर्करामृतरूपेण चतुर्धा भवति । एकैकात्मप्रदेशे सिद्धानन्तैकभागसंख्या अभव्यानंतगुणप्रमिता अनंतानंतपरमाणवः प्रतिक्षणबंधमायांतीति प्रदेशबंधः । इदानीं बंधकारणं कथ्यते । "जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति ।" योगात्प्रकृतिप्रदेशौ, स्थित्यनुभागौ कषायतो भवत इति ।

कुम्हार और भंडारी;—इन आठों जैसा स्वभाव है वैसा ही क्रमसे ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोका स्वभाव जानना ।" ये आठ दृष्टांतोंके द्वारा प्रकृतिबंध जानना ।

बकरी, गाय, भैंस आदिके दूधमें जिस प्रकार दो प्रहर आदि तक अपने मधुर रसमें रहनेकी कालकी मर्यादा है उसे स्थिति कहते हैं, उसी प्रकार जीवके प्रदेशोंमें जितने काल तक कर्मसंबंधरूपसे स्थिति है उतने कालको स्थितिबंध जानना ।

जिस प्रकार उन्हींके दूधमें तारतम्यतासे रस सम्बन्धी शक्तिविशेषको (चिकनाई, मिठासको) अनुभाग कहा जाता है, उसी प्रकार जीवके प्रदेशों पर स्थित कर्मके स्कन्धोंमें भी सुख अथवा दुःख देनेकी शक्तिविशेषको अनुभागबंध जानना । घातिकर्मसे संबंधित वह शक्ति लता, काष्ठ, अस्थि (हड्डी) और पत्थरके भेदसे चार प्रकारकी है । उसी प्रकार अशुभ अघातिकर्मसे संबंधित शक्ति नीम, काञ्जीर (कालीजीरी), विष तथा हालाहलरूपके भेदसे चार प्रकारकी है, और शुभ अघातिकर्मके साथ संबंधित शक्ति गुड़, खांड, शक्कर (मिश्री) और अमृतरूप चार प्रकारकी है ।

आत्माके एक-एक प्रदेश पर सिद्धोंके अनंतवें भागप्रमाण और अभव्य जीवोंकी संख्यासे अनंतगुणे अनंतानंत परमाणु प्रत्येक क्षण बंधते हैं वह प्रदेशबंध है ।

अब बंधका कारण कहते हैं:—"जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति ।" योगसे प्रकृति और प्रदेश तथा कषायसे स्थिति और अनुभागबंध होता है ।

१–'शक्तिभेदेन' इति पाठान्तरं

तथाहि—निश्चयेन निष्क्रियाणामपि शुद्धात्मप्रदेशानां व्यवहारेण परिस्पंदनहेतुर्योगः, तस्मात्प्रकृतिप्रदेशबन्धद्वयं भवति। निर्दोषपरमात्मभावनाप्रतिबन्धकक्रोधादिकषायोदयात् स्थित्यनुभागबन्धद्वयं भवतीति। आस्रवे बन्धे च मिथ्यात्वाविरत्यादिकारणानि समानानि, को विशेषः ? इति चेत्, नैवं; प्रथमक्षणे कर्मस्कंधानामागमनमास्रवः, आगमनानन्तरं द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थानं बंध इति भेदः। यत एव योगकषायाद्बंधचतुष्टयं भवति तत एव बंधविनाशार्थं योगकषायत्यागेन निजशुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति तात्पर्यम् ॥३३॥ एवं बंधव्याख्यानेन सूत्रद्वयेन द्वितीयं स्थलं गतम्।

अत ऊर्ध्वं गाथाद्वयेन संवरपदार्थः कथ्यते। तत्र प्रथमगाथायां भावसंवर-द्रव्यसंवरस्वरूपं निरूपयति :—

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥

विस्तार:—निश्चयसे निष्क्रिय ऐसे शुद्धात्माके प्रदेशोंके व्यवहारसे परिस्पंदका कारण योग है, उससे प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध—ये दो प्रकारके बंध होते हैं। निर्दोष परमात्मभावनाके प्रतिबंधक क्रोधादि कषायके उदयसे स्थितिबंध और अनुभागबंध—ये दो बंध होते हैं।

शंकाः—आस्रव और बंधके होनेमें मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान हैं तो आस्रव और बंधमें क्या अन्तर है ?

उत्तरः—इस प्रकार नहीं है। प्रथम क्षणमें कर्मस्कन्धोंका जो आगमन है वह आस्रव है और आगमनके पश्चात् द्वितीय आदि क्षणोंमें जीवके प्रदेशोंमें उन स्कंधोंका रहना वह बंध है, इस प्रकार (आस्रव और बंधमें) अंतर है।

क्योंकि योग और कषायसे चार प्रकारका बंध होता है, अतः बंधका नाश करनेके लिये योग और कषायका त्याग करके निज शुद्धात्मामें भावना करना—यह तात्पर्य है ॥३३॥

इस प्रकार बंधके व्याख्यानसे दो गाथाओं द्वारा, द्वितीय स्थल पूर्ण हुआ।

अब, आगे दो गाथाओं द्वारा संवर पदार्थका कथन किया जाता है। वहां

आस्रवके रोकणकूं भाव, आतमकौ, सो संवर भाव।
पुद्गलकर्म रुकै सो जानि, संवर द्रव्य, नाम सो मानि ॥३४॥

चेतनपरिणामः यः कर्म्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः ।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधनः अन्यः ॥३४॥

व्याख्या—"चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू सो भावसंवरो खलु" चेतनपरिणामो यः, कथंभूतः ? कर्मास्रवनिरोधने हेतुः स भावसंवरो भवति खलु निश्चयेन । "दव्वासवरोहणे अण्णो" द्रव्यकर्मास्रवनिरोधने सत्यन्यो द्रव्यसंवर इति । तद्यथा—निश्चयेन स्वतः सिद्धत्वात्परकारणनिरपेक्षः, स चैवाविनश्वरत्वान्नित्यः परमोद्योतस्वभावत्वात्स्वपरप्रकाशनसमर्थः, अनाद्यनन्तत्वादादिमध्यान्तमुक्तः, दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबन्धादिसमस्तरागादिविभावमलरहितत्वादत्यन्तनिर्मलः, परमचैतन्यविलासलक्षणत्वादुच्छलननिर्भरः, स्वाभाविकपरमानन्दैकलक्षणत्वात्परमसुखमूर्तिः, निरास्रवसहजस्वभावत्वात्सर्वकर्मसंवरहेतुरित्युक्तलक्षणः परमात्मा तत्स्वभावभावेनोत्पन्नो

प्रथम गाथामें [1]भावसंवर और [1]द्रव्यसंवरका स्वरूप कहते हैं :—

गाथा–३४

गाथार्थः—आत्माका जो परिणाम कर्मके आस्रवको रोकनेमें कारण है उसे भावसंवर कहते हैं और जो द्रव्यास्रवका रुकना वह द्रव्यसंवर है ।

टीकाः—"चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू सो भावसंवरो खलु" जो चेतन परिणाम, कैसा ? कर्मोंके आस्रवको रोकनेमें कारण है वह, वास्तवमें निश्चयसे भावसंवर है । "दव्वासवरोहणे अण्णो" द्रव्यकर्मके आस्रवका निरोध होने पर अन्य द्रव्यसंवर होता है । वह इस प्रकार है:—निश्चयसे स्वतः सिद्ध होनेसे अन्य कारणकी अपेक्षारहित, अविनश्वर होनेसे नित्य, परम प्रकाशरूप स्वभाव होनेसे स्वपरको प्रकाशित करनेमें समर्थ, अनादिअनंत होनेसे आदि-मध्य और अंतरहित, दृष्ट, श्रुत और अनुभव किये हुए भोगोंकी आकांक्षारूप निदानबंधादि समस्त रागादि विभावमलसे रहित होनेके कारण अत्यंत निर्मल, परमचैतन्यविलासरूप लक्षण होनेसे चिद्-उच्छलनसे (चैतन्यके उछलनेसे) भरपूर, स्वाभाविक परमानंद एक लक्षण होनेसे परमसुखकी मूर्ति, आस्रवरहित सहज स्वभाव होनेसे सर्व कर्मोंका संवर करनेमें

१–भावसंवर और द्रव्यसंवरका प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थानसे होता है । और चौदहवें गुणस्थानमें आस्रवका सर्वथा अभाव होने पर सर्वसंवर होता है ।

योऽसौ शुद्धचेतनपरिणामः स भावसंवरो भवति। यस्तु भावसंवरात्कारणभूतादुत्पन्नः कार्यभूतो नवतरद्रव्यकर्मागमनाभावः स द्रव्यसंवर इत्यर्थः।

अथ संवरविषयनयविभागः कथ्यते। तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायपर्यन्तमुपर्युपरि मन्दत्वात्तारतम्येन तावदशुद्धनिश्चयो वर्त्तते। तस्य मध्ये पुनर्गुणस्थानभेदेन शुभाशुभशुद्धानुष्ठानरूपउपयोगत्रयव्यापारस्तिष्ठति। तदुच्यते—मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रगुणस्थानेषूपर्युपरि मन्दत्वेनाशुभोपयोगो वर्तते, ततोऽप्यसंयतसम्यग्दृष्टिश्रावकप्रमत्तसंयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो

कारण-ऐसे लक्षणोंसे युक्त [1]परमात्मा हैं। उसके [1]स्वभावसे उत्पन्न जो शुद्धचेतन-परिणाम है वह भावसंवर है। और जो, कारणरूप भावसंवरसे उत्पन्न हुआ कार्य-रूप नये द्रव्यकर्मोंके आगमनका अभाव, वह द्रव्यसंवर है।

अव संवरके विषयमें नयविभागका कथन करते हैं:—मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक ऊपर-ऊपर मंदपना होनेसे तारतम्यतासे अशुद्ध निश्चय वर्तता है। उसमें गुणस्थानके भेदसे शुभ, अशुभ और शुद्ध अनुष्ठानरूप (आचरणरूप) तीन प्रकारके उपयोगका व्यापार होता है। उसे कहा जाता है—मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र—इन तीन गुणस्थानोंमें ऊपर-ऊपर मंदरूपसे अशुभ उपयोग होता है। उससे आगे असंयत सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्तसंयत इन तीन [2]गुणस्थानोंमें परंपरासे शुद्धोपयोगका साधक ऊपर-ऊपर तारतम्यतासे शुभोपयोग होता है। इसके पश्चात् अप्रमत्तसे क्षीणकषाय तकके छह गुणस्थानोंमें

१–शुद्धचैतन्यस्वरूप त्रिकालध्रुवज्ञायकस्वभाव आत्मा जो श्री समयसार गाथा ६ में कहा है उसकी यह विस्तारमय व्याख्या है। वह त्रिकाल शुद्धस्वरूप सदा आश्रय करने योग्य होनेसे सर्व प्रकारसे उपादेय है।

२–जहां चारित्रगुणकी आंशिक शुद्धि होती है वहां उसके साथ वर्तते हुए शुभोपयोगको परंपरासे शुद्धोपयोगका साधक कहा जाता है। चौथे, पांचवें और छट्ठे गुणस्थानमें उसकी भूमिका अनुसार शुद्धि होती है। देखो, छट्ठे गुणस्थान धारक मुनिसंबंधी प्रवचनसार गाथा २४५–२४६ दोनों आचार्योंकी टीका।

श्री प्रवचनसार गाथा २४७ की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीकामें मुनिकी अपेक्षासे **'शुद्धोपयोगसाधके शुभोपयोगे'** शब्द कहे हैं। यहां (श्री द्रव्यसंग्रहकी टीकामें) तो चौथे, पांचवें और छट्ठे—इस प्रकार तीन गुणस्थानोंमें 'शुद्धोपयोगसाधक शुभोपयोग' कहा है अतः

वर्तते, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायपर्यन्तं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन विवक्षितैकदेशशुद्धनयरूपशुद्धोपयोगो वर्तते। तत्रैवं, मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तावत् संवरो नास्ति, सासादनादिगुणस्थानेषु "सोलसपणवीसणभं दसचउछक्केक्कबन्धवोछिण्णा। दुगतीसचदुरपुव्वेपणसोलस जोगिणो एक्को ।१।" इति बन्धविच्छेदत्रिभङ्गीकथितक्रमेणोपर्युपरि प्रकर्षेण संवरो ज्ञातव्य इति। अशुद्धनिश्चयमध्ये मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानेषूपयोगत्रयं व्याख्यातं, तत्राशुद्धनिश्चये शुद्धोपयोगः कथं घटते? इति चेत्तत्रोत्तरं—शुद्धोपयोगे शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्धध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बनत्वाच्छुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते। स च संवरशब्दवाच्यः शुद्धोपयोगः संसारकारणभूतमिथ्यात्वरागाद्यशुद्धपर्यायवदशुद्धो न भवति तथैव फलभूतकेवलज्ञानलक्षण

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदसे विवक्षित एकदेश शुद्धनयरूप शुद्धोपयोग होता है। वहां मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानमें तो संवर नहीं होता है, सासादन आदि गुणस्थानोंमें 'मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानमें सोलह प्रकृति, दूसरेमें पच्चीस, तीसरेमें शून्य, चौथेमें दस, पांचवेंमें चार, छट्ठेमें छह, सातवेंमें एक, आठवेंमें दो, तीस और चार, नवममें पांच, दसवेंमें सोलह और सयोगकेवलीमें (तेरहवेंमें) एक प्रकृतिकी बंध व्युच्छित्ति [1]होती है।'—इस प्रकार बंधविच्छेद त्रिभंगीमें कहे अनुसार क्रमसे ऊपर-ऊपर अधिकतासे संवर जानना।

शंकाः—अशुद्धनिश्चयमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें (अशुभ, शुभ और शुद्ध) तीन उपयोगोंका व्याख्यान किया; वहां अशुद्धनिश्चयनयमें शुद्धोपयोग किस प्रकार घटित होता है?

उत्तरः—शुद्धोपयोगमें शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभावी निजात्मा ध्येय होता है इस कारण शुद्ध ध्येयवाला होनेसे, शुद्ध अवलंबनवाला होनेसे और शुद्धात्मस्वरूपका साधक होनेसे शुद्धोपयोग सिद्ध होता है। और वह 'संवर' शब्दसे वाच्य शुद्धोपयोग संसारके कारणभूत मिथ्यात्व रागादि अशुद्धपर्यायकी भांति अशुद्ध नहीं होता है

बिलकुल स्पष्ट होता है कि इन तीनों गुणस्थानोंमें आंशिक शुद्ध परिणति होती ही है; क्योंकि जहां आंशिक शुद्धि न हो वहां वर्तते हुए शुभोपयोगमें शुद्धोपयोगके साधकपनेका आरोप भी घटित नहीं होता है।

१–गोम्मटसार कर्मकांड गाथा–९४

शुद्धपर्यायवत् शुद्धोऽपि न भवति किन्तु ताभ्यामशुद्धशुद्धपर्यायाभ्यां विलक्षणं शुद्धात्मानुभूतिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं मोक्षकारणमेकदेशव्यक्तिरूपमेकदेशनिरावरणं च तृतीयमवस्थान्तरंभण्यते ।

कश्चिदाह—केवलज्ञानं सकलनिरावरणं शुद्धं तस्य कारणेनापि सकलनिरावरणेन शुद्धेन भाव्यम्, उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । तत्रोत्तरं दीयते—युक्तमुक्तं भवता परं किन्तूपादानकारणमपि षोडशवर्णिकासुवर्णकार्यस्याधस्तनवर्णिकोपादानकारणवत्, मृन्मयकलशकायस्य मृत्पिण्डस्थासकोशकुशूलोपादानकारणवदिति च कार्यादेकदेशेन भिन्नं भवति । यदि पुनरेकान्तेनोपादानकारणस्य कार्येण सहाभेदो भेदो वा भवति, तर्हि पूर्वोक्तसुवर्णमृत्तिकादृष्टान्तद्वयवत्कार्यकारणभावो न घटते । ततः किं सिद्धं ? एकदेशेन निरावरणत्वेन क्षायोपशमिकज्ञानलक्षणमेकदेशव्यक्तिरूपं विवक्षितैकदेशशुद्धनयेन संवरशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं मुक्तिकारणं भवति । यच्च लब्ध्यपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदजीवे नित्योद्घाटं निरावरणं ज्ञानं श्रूयते तदपि सूक्ष्मनिगोद-

---

तथा उसके फलरूप केवलज्ञानरूप शुद्धपर्यायकी भांति शुद्ध भी नहीं होता है परन्तु वह अशुद्ध और शुद्ध (दोनों) पर्यायोंसे विलक्षण, शुद्धात्माके अनुभवरूप निश्चय-रत्नत्रयात्मक, मोक्षका कारणभूत, एकदेश प्रगट, एकदेश आवरणरहित—ऐसी तीसरी अवस्थारूप कहलाता है ।

कोई शंका करता है:—केवलज्ञान समस्त आवरणरहित शुद्ध है तो उसका कारण भी समस्त आवरणरहित शुद्ध होना चाहिये, क्योंकि 'उपादानकारण जैसा कार्य होता है' ऐसा शास्त्रका वचन है । उसका उत्तर दिया जाता है:—आपने जो कहा है वह तो योग्य है, परन्तु उपादानकारण भी कार्यसे एकदेश भिन्न होता है; जिस प्रकार सोलह वानके सुवर्णरूप कार्यका नीचेकी अवस्थावाला (पन्द्रह वान) सुवर्णरूप उपादानकारण एकदेश भिन्न होता है और जिस प्रकार मिट्टीके कलशरूप कार्यका मिट्टीका पिंड-स्थास-कोश-कुशुलरूप उपादानकारण एकदेश भिन्न होता है उसी प्रकार । यदि एकांतसे उपादानकारणका कार्यके साथ अभेद या भेद हो तो पूर्वोक्त सुवर्ण और मिट्टीके दो दृष्टांतोंकी भांति कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता है । इससे क्या सिद्ध हुआ ? (यह सिद्ध हुआ कि) एकदेश-निरावरण होनेसे, क्षायोपशमिक ज्ञानरूप लक्षणयुक्त, एकदेश-प्रगटरूप, विवक्षित-एकदेश-शुद्धनयसे 'संवर' शब्दसे वाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप (शुद्धोपयोगका स्वरूप) मुक्तिका कारण होता है, और जो लब्धि-अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीवमें नित्य उघाड़रूप आवरणरहित

सर्वजघन्यक्षयोपशमापेक्षया निरावरणं, न च सर्वथा । कस्मादिति चेत् ? तदावरणे जीवाभावः प्राप्नोति । वस्तुत उपरितनक्षायोपशमिकज्ञानापेक्षया केवलज्ञानापेक्षया च तदपि सावरणं; संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावाच्च क्षायोपशमिकमेव । यदि पुनर्लोचनपटलस्यैकदेश-निरावरणवत्केवलज्ञानांशरूपं भवति तर्हि तेनैकदेशेनापि लोकालोकप्रत्यक्षतां प्राप्नोति; न च तथा दृश्यते । किन्तु प्रचुरमेघप्रच्छादितादित्यबिम्बवन्निविडलोचनपटलवद्वा स्तोकं प्रकाशयतीत्यर्थः ।

अथ क्षयोपशमलक्षणं कथ्यते—सर्वप्रकारेणात्मगुणप्रच्छादिकाः कर्मशक्तयः सर्वघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते; विवक्षितैकदेशेनात्मगुणप्रच्छादिकाः शक्तयो देशघातिस्पर्द्धकानि भण्यन्ते; सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभाव एव क्षयस्तेषामेवास्तित्वमुपशम उच्यते सर्वघात्युदयाभावलक्षणक्षयेण सहित उपशमः तेषामेकदेशघातिस्पर्द्धकानामुदयश्चेति समुदायेन क्षयोपशमो भण्यते । क्षयोपशमे भवः क्षायोपशमिको भावः । अथवा देशघातिस्पर्द्धकोदये

जाने सुननेमें आता है वह भी सूक्ष्मनिगोदके सर्व जघन्य क्षयोपशमकी अपेक्षासे निरा-वरण है, सर्वथा आवरणरहित नहीं है ।

शंकाः—वह आवरणरहित किस प्रकार रहता है ?

उत्तरः—यदि उस जघन्यज्ञानका भी आवरण हो जाय तो जीवका अभाव प्राप्त होता है । वास्तवमें तो ऊपरके क्षयोपशमज्ञानकी अपेक्षासे और केवलज्ञानकी अपेक्षासे वह ज्ञान भी आवरण सहित है और संसारी जीवोंको क्षायिकज्ञानका अभाव होनेसे (वह ज्ञान) क्षायोपशमिक ही है । यदि नेत्रपटलके एकदेश निरा-वरणकी भांति (अर्थात् नेत्रपटल कुछ खुला हो उसकी भांति) केवलज्ञानके अंश-रूप वह ज्ञान हो तो उस एकदेशसे भी लोकालोककी प्रत्यक्षता होती; तो भी ऐसा तो देखनेमें नहीं आता है । परन्तु बहुतसे बादलोंसे आच्छादित सूर्यके बिंबकी भांति अथवा निविड़ नेत्रपटलकी भांति उस निगोदियाका ज्ञान थोड़ासा जानता है ऐसा तात्पर्य है ।

अब क्षयोपशमका लक्षण कहते हैं:—सर्व प्रकारसे आत्माके गुणोंका आच्छादन करनेवाली कर्मकी शक्तियोंको 'सर्वघाती स्पर्द्धक' कहते हैं और विवक्षित एक-देशसे आत्माके गुणोंका आच्छादन करनेवाली कर्मकी शक्तियोंको 'देशघाती' स्पर्द्धक कहते हैं । सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयके अभावको ही क्षय और उनकी ही सत्‌रूप अवस्थाको उपशम कहते हैं । सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय सहित उपशम और उनके एकदेशघाती स्पर्द्धकोंका उदय—इस प्रकार इन तीनोंके समु-

सति जीव एकदेशेन ज्ञानादिगुणं लभते यत्र स क्षायोपशमिको भावः। तेन किं सिद्धं ? पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदजीवे ज्ञानावरणीयदेशघातिस्पर्द्धकोदये सत्येकदेशेन ज्ञानगुणं लभ्यते तेन कारेणन तत् क्षायोपशमिकं ज्ञानं, न च क्षायिकं, कस्मादेकदेशोदयसद्भावादिति। अयमत्रार्थः—यद्यपि पूर्वोक्तं शुद्धोपयोगलक्षणं क्षायोपशमिकं ज्ञानं मुक्तिकारणं भवति तथापि ध्यातृपुरुषेण यदेव नित्यसकलनिरावरणमखण्डैकसकलविमलकेवलज्ञानलक्षणं परमात्मस्वरूपं तदेवाहं, न च खण्डज्ञानरूप, इति भावनीयम्। इति संवरतत्त्वव्याख्यानविषये नयविभागो ज्ञातव्य इति ॥ ३४ ॥

अथ संवरकारणभेदान् कथयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु कैः कृत्वा संवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददातीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति भगवान्—

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

दायसे क्षयोपशम कहा जाता है। क्षयोपशममें हो उसे क्षायोपशमिकभाव कहते हैं अथवा देशघाती स्पर्द्धकोंका उदय होने पर जीव एकदेश ज्ञानादि गुण प्राप्त करता है वह क्षायोपशमिक भाव है। इससे क्या सिद्ध हुआ ? पूर्वोक्त सूक्ष्मनिगोदके जीवमें ज्ञानावरणकर्मके देशघाती स्पर्द्धकोंका उदय होने पर एकदेश ज्ञानगुण प्राप्त होता है इस कारण वह क्षायोपशमिकज्ञान है, क्षायिकज्ञान नहीं। किस कारण ? क्योंकि वहां कर्मके एकदेश उदयका सद्भाव है।

यहां सारांश यह है:—यद्यपि पूर्वोक्त शुद्धोपयोगलक्षणयुक्त क्षायोपशमिकज्ञान मुक्तिका कारण होता है तो भी ध्याता पुरुषके द्वारा 'नित्य सकल निरावरण, अखंड, एक, सम्पूर्ण निर्मल केवलज्ञान जिसका लक्षण है ऐसा परमात्मस्वरूप वही मैं हूँ, खंडज्ञानरूप नहीं'—ऐसी भावना करनी चाहिये।

इस प्रकार संवर पदार्थके व्याख्यानमें नयविभाग जानना ॥ ३४ ॥

अब, संवरके कारणोंके भेद कहते हैं—इस प्रकार एक भूमिका है, 'संवर किससे होता है ?' ऐसा प्रश्न पूछनेपर प्रत्युत्तर देते हैं—इस प्रकार द्वितीय भूमिका है। ये दोनों भूमिकायें मनमें धारण करके भगवान श्रीनेमिचन्द्रआचार्य यह गाथा कहते हैं:—

व्रत अरु समिति गुप्ति दश धर्म, अनुप्रेक्षा चारित्र जु पर्म।
सहन परिषह, ए बहुभेद, संवरभाव भनैं जिनदेव ॥३५॥

व्रतसमितिगुप्तयः धर्म्मानुप्रेक्षाः परीषहजयः च ।
चारित्रं बहुभेदं ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥३५॥

व्याख्या—"वदसमिदीगुत्तीओ" व्रतसमितिगुप्तयः, "धम्माणुपेहा" धर्मस्तथैवानुप्रेक्षाः, "परीसहजओ य" परीषहजयश्च, "चारित्तं बहुभेया" चारित्रं बहुभेदयुक्तं, "णायव्वा भावसंवरविसेसा" एते सर्वे मिलिता भावसंवरविशेषा भेदा ज्ञातव्याः । अथ विस्तरः—निश्चयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखसुधास्वादबलेन समस्तशुभाशुभरागादिविकल्पनिवृत्तिर्व्रतम्, व्यवहारेण तत्साधकं हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाच्च यावज्जीवनिवृत्तिलक्षणं पञ्चविधं व्रतम् । निश्चयेनानन्तज्ञानादिस्वभावे निजात्मनि सम् सम्यक् समस्तरागादिविभावपरित्यागेन तल्लीनतच्चिन्तनतन्मयत्वेन अयनं गमनं परिणमनं समितिः, व्यवहारेण तद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूताचारादिचरण-

---

गाथा–३५

गाथार्थः—व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और अनेक प्रकारका चारित्र—इन सबको भावसंवरके भेद जानना ।

टीकाः—"वदसमिदीगुत्तीओ" व्रत, समिति, गुप्ति, "धम्माणुपेहा" धर्म, अनुप्रेक्षा "परीषहजओ य" परिषहोंका जीतना और "चारित्तं बहुभेया" अनेक भेदयुक्त चारित्र; "णायव्वा भावसंवरविसेसा" ये सब भावसंवरके भेद जानना । अब इनको विस्तारसे कहते हैं:—निश्चयसे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निजात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सुखरूपी सुधाके आस्वादके बलसे समस्त शुभाशुभ रागादि विकल्पोंकी निवृत्ति वह व्रत है । व्यवहारसे उस निश्चयव्रतके [1]साधक, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहके आजीवन त्यागलक्षणरूप पांच प्रकारके व्रत हैं । निश्चयसे अनंत ज्ञानादि स्वभावके धारक निजात्मामें 'सम' अर्थात् सम्यक् प्रकारसे समस्त रागादि विभावोंके परित्याग द्वारा, निजात्मामें लीनता-चिंतन-तन्मयतासे 'अयन'—गमन–परिणमन करना वह 'समिति' है, व्यवहारसे उसके बहिरंग [2]सहकारी कारणभूत, आचारादि चरणानुयोगके ग्रन्थोंमें कथित ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्ग नामक पांच समितियां हैं । निश्चयसे सहज शुद्धात्माकी भावना-

---

१–साधनार=निमित्त ।

२–बहिरंग सहकारी कारणभूत=बहिरंग निमित्तभूत । बहिरंग साधन वह यथार्थ साधन नहीं है, मात्र उपचरित साधन है ।

ग्रन्थोक्ता ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञाः पञ्च समितयः। निश्चयेन सहजशुद्धात्म-भावनालक्षणे गूढस्थाने संसारकारणरागादिभयात्स्वस्यात्मनो गोपनं प्रच्छादनं झम्पनं प्रवेशनं रक्षणं गुप्तिः, व्यवहारेण बहिरङ्गसाधनार्थं मनोवचनकायव्यापारनिरोधो गुप्तिः। निश्चयेन संसारे पतन्तमात्मानं धरतीति विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणनिजशुद्धात्मभावनात्मको धर्मः, व्यवहारेण तत्साधनार्थं देवेन्द्रनरेन्द्रादिवन्द्यपदे धरतीत्युत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्य-शौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यलक्षणो दशप्रकारो धर्मः।

तद्यथा—प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहार्थं धर्मवचनं। क्रोधोत्पत्तिनिमित्ताविषह्या-क्रोशादिसंभवेऽकालुष्योपरमः क्षमा। शरीरस्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशोत्प्रहसनावज्ञानताडनशरीरव्यापादनादीनां क्रोधोत्पत्तिनिमित्तानां सन्निधाने कालुष्याभावः क्षमा इति उच्यते ॥ १ ॥ जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं ॥ २ ॥ योगस्यावक्रता आर्जवं। योगस्यकायवाङ्मनोलक्षणस्यावक्रता आर्जवं इति उच्यते ॥ ३ ॥ सत्सु साधुवचनं सत्यं। सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं

रूप लक्षणयुक्त गुप्तस्थानमें संसारके कारणरूप रागादि भयोंसे अपने आत्माका छिपाना, ढकना, झम्पना, प्रवेश कराना अथवा रक्षा करना वह गुप्ति है। व्यवहारसे बहिरंग साधनके लिये मन, वचन और कायाके व्यापारको रोकना वह गुप्ति है। निश्चयसे संसारमें पड़ते हुए आत्माको धारण करके रखता है वह विशुद्ध–ज्ञान–दर्शनलक्षणमय निज शुद्धात्माकी भावनारूप धर्म है। व्यवहारसे उसके साधनके लिये, देवेन्द्र, नरेन्द्र आदिसे वंद्यपदमें जो धरता है—पहुंचाता है वह उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यरूप दस प्रकारका धर्म है।

वह इस प्रकार है। धर्ममें प्रवर्तन करनेवालेके प्रमादको दूर करनेके लिये धर्मका कथन है। क्रोध उत्पन्न होनेमें निमित्त ऐसे असह्य दुर्वचन आदि होने पर भी कलुषता (मनकी मलिनता) न होना वह परम क्षमा है। शरीरकी स्थितिके हेतु (आहार)की शोधमें अन्यके घर जाते हुए मुनिको दुष्टजनों द्वारा गाली, हंसी, तिरस्कारके वचन, मारना, शरीरका घात इत्यादि क्रोध उत्पन्न होनेके निमित्त मिलने पर भी परिणामोंमें मलिनताका अभाव होना उसे क्षमा कहते हैं ॥ १ ॥ जाति आदिके मदके आवेशसे हुए अभिमानके अभावको मार्दव कहते हैं ॥ २ ॥ योगोंकी अवक्रताको आर्जव कहते हैं अर्थात् मन-वचन-कायरूप योगोंकी सरलताको आर्जव कहते हैं ॥ ३ ॥ सज्जनोंके प्रति अच्छे वचन बोलना उसे सत्य कहते हैं अर्थात् प्रशस्तजनोंके प्रति समीचीन वचन बोलना वह सत्य कहलाता है ॥ ४ ॥

सत्यमिति उच्यते ।। ४ ।। प्रकर्षप्राप्ता लोभनिवृत्तिः शौचं । लोभस्य निवृत्तिः प्रकर्षप्राप्ता, शुचेर्भावः कर्म वा शौचं इति निश्चीयते ।। ५ ।। समितिषु प्रवर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारः संयमः । ईर्यासमित्यादिषु वर्तमानस्य मुनेस्तत्प्रतिपालनार्थः प्राणीन्द्रिय परिहारः संयम इत्युच्यते । एकेन्द्रियादि प्राणिपीडापरिहारः प्राणिसंयमः । शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु रागानभिष्वङ्ग इन्द्रियसंयमः ।

तत्प्रतिपादनार्थः शुद्ध्यष्टकोपदेशः, तद्यथा—अष्टौ शुद्धयः—भावशुद्धिः, कायशुद्धिः, विनयशुद्धिः, ईर्यापथशुद्धिः, भिक्षाशुद्धिः, प्रतिष्ठापनशुद्धिः, शयनासनशुद्धिः, वाक्यशुद्धिश्चेति । तत्र भावशुद्धिः, कर्मक्षयोपशमजनिता, मोक्षमार्गरुच्याहितप्रसादा, रागाद्युपप्लवरहिता । कायशुद्धिः, निरावरणाभरणा, निरस्तसंस्कारा, यथाजातमलधारिणी, निराकृताङ्गविकारा । विनयशुद्धिः, अर्हदादिषु परमगुरुषु यथार्हं पूजाप्रवणा, ज्ञानादिषु च यथाविधिभक्तियुक्ता, गुरोः सर्वत्रानुकूलवृत्तिः । ईर्यापथशुद्धिः, नानाविधजीवस्थानयोन्याश्रयावबोधजनितप्रयत्नपरिहृतजन्तुपीड़ा, ज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशनिरीक्षितदेश-

---

लोभकी प्रकर्षरूपसे (अत्यंत) निवृत्तिको शौच कहते हैं । लोभकी निवृत्ति प्रकर्षपनेको प्राप्त हो वह शौच; शुचि (पवित्र) भाव अथवा शुचिकर्म वह शौच—इस प्रकार निश्चित किया जाता है ।। ५ ।। समितिमें प्रवर्तमान मुनिको प्राणघात और इन्द्रिय विषयोंका त्याग वह संयम है । ईर्यासमिति आदिमें वर्तते हुए मुनिको उनका परिपालन करनेके लिये प्राणियोंके घातके त्याग और इद्रिय-विषयोंके त्यागको संयम कहा जाता है ।। ६ ।। एकेन्द्रियादि प्राणियोंको पीड़ा पहुंचानेका त्याग वह प्राणीसंयम है और शब्दादि इन्द्रियविपयोंमें रागका आसक्तभाव न होना वह इन्द्रियसंयम है ।

उसका प्रतिपादन करनेके लिये आठ शुद्धियोंका उपदेश है । वह इस प्रकार है :—आठ शुद्धिः—भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि । उनमें भावशुद्धि—कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होती है, मोक्षमार्गमें रुचि होनेसे परिणामोंको निर्मल करनेवाली है, रागादि विकारसे रहित है ।।१।। कायशुद्धि—आवरण और आभूषणोंसे रहित, शरीरके संस्कार रहित, जन्मसमय समान मैलयुक्त, शरीरके विकारोंसे रहित होती है ।।२।। विनयशुद्धि—परमगुरु अर्हंत आदिके प्रति यथायोग्य पूजामें तत्परतासहित, ज्ञानादिमें विधिपूर्वककी भक्तियुक्त, और गुरुके प्रति सर्वत्र अनुकूल वृत्तियुक्त होती है ।।३।। ईर्यापथशुद्धिः—भिन्न-भिन्न प्रकारके जीवोंके उत्पत्तिस्थान तथा योनिरूप

गामिनी, द्रुतविलम्बितसम्भ्रांतविस्मितलीलाविकारदिगान्तरावलोकनादिदोषविरहित-गमना । भिक्षाशुद्धिः, आचारसूत्रोक्तकालदेशप्रकृतिप्रतिपत्तिकुशला, लाभालाभमानापमान-समानमनोवृत्तिः, लोकगर्हितकुलपरिवर्जनपरा, चन्द्रगतिरिवहीनाधिकगृहा, विशिष्टोपस्थाना दीनानाथदानशालाविवाहयजनगेहादि परिवर्जनोपलक्षिता, दीनवृत्तिविगमा, प्रासुकाहार-गवेषणप्रणिधाना, आगमविहित निरवद्याशनपरिप्राप्तप्राणयात्राफला । प्रतिष्ठापनशुद्धिः, नखरोमसिङ्घाणकनिष्ठीवनशुक्रोच्चारप्रस्रवणशोधने देहपरित्यागे च जंतूपरोधविरहिता । शयनासनशुद्धिः, स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौण्डशाकुनिकादिपापजनवासा वर्ज्याः, अकृत्रिम-गिरिगुहातरुकोटरादयः कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोद्देश-निर्वर्तिताः सेव्याः । वाक्यशुद्धिः, पृथिवीकायिकारम्भादिप्रेरणरहिता, परुषनिष्ठुरादि-परपीडाकरप्रयोगनिरुत्सुका, व्रतशीलदेशनादिप्रधानफला, हितमितमधुरमनोहरा, संयतस्य-योग्या, इति संयमान्तर्गताष्टशुद्धयः ।। ६ ।।

आश्रयका बोध होनेसे जंतुओंको पीड़ा न हो ऐसे प्रयत्नयुक्त, ज्ञानरूपी सूर्यसे और इन्द्रिय, प्रकाश आदिसे निरीक्षण किये प्रदेशमें गमनयुक्त (होती है) ; शीघ्र चलना, विलंवसे चलना, चंचल उपयोग सहित, विस्मयपूर्वक, लीलापूर्वक, विकारपूर्वक, इधर-उधर दिशाओंमें देखकर चलना आदि प्रकारके दोषरहित गमनरूप होती है ।।४।। भिक्षाशुद्धिः—आचार सूत्रोंमें कहे अनुसार काल, देश और प्रकृतिके ज्ञानमें कुशल, लाभ-अलाभ, मान-अपमानमें समान मनोवृत्तियुक्त, लोकनिंद्य कुलमें (घरमें) जानेसे रहित, चन्द्रमाकी गतिकी भांति कम या अधिक घरोंमें जानेकी मर्यादासे युक्त, विशिष्ट प्रकारके स्थान—जैसे कि गरीब और अनाथोंके लिये दानशाला, विवाह अथवा यज्ञके प्रसंगवाले घर आदि स्थानोंके त्यागरूप लक्षणसहित, दीनवृत्ति रहित, प्रासुक (निर्दोष) आहार शोधनेकी इच्छायुक्त, आगम कथित निर्दोष भोजनसे प्राणयात्रा टिकानेवाली होती है ।।५।। प्रतिष्ठापनशुद्धि—नख, रोम, नासिकामल, कफ, वीर्य, मल और मूत्रके त्यागमें तथा शरीरकी उठने-बैठनेकी क्रिया करनेमें जंतुओंको पीड़ा न हो उसप्रकार आचरण करनेको कहते हैं ।।६।। शयनासनशुद्धि—स्त्री, क्षुद्र पुरुष, चोर, शराबी, जुआरी, कलाल, पारधि आदि पापी जनोंके रहने योग्य स्थान छोड़ना और अकृत्रिम पर्वतकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि तथा कृत्रिम निर्जन आवास आदि, छोड़े गये अथवा छूट गये आवास, जो अपने लिये न बनायें हों ऐसे स्थानोंमें रहना वह (शयनासनशुद्धि है) ।।७।। वाक्यशुद्धि—पृथ्वीकायादिके आरंभ आदिकी प्रेरणारहित, कठोर, निर्दय आदि अन्यको पीड़ा देनेवाले प्रयोगोंसे

कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः। तद्द्विविधं, बाह्यमभ्यन्तरं च, तत्प्रत्येकं षड्विधम् ॥ ७ ॥ परिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः। परिग्रहस्य चेतनाचेतनलक्षणस्य निवृत्तिस्त्याग इति निश्चीयते अथवा संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्याग इत्युच्यते ॥ ८ ॥ ममेदमित्यभिसंधिनिवृत्तिराकिंचन्यं। उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसंधिनिवृत्तिराकिंचन्यमित्याख्यायते। नास्य किंचनास्ति इत्यकिंचनः, तस्य भावः कर्म वा आकिंचन्यम् ॥९॥ अनुभूतांगनास्मरणतत्कथाश्रवण स्त्रीसंसक्तशयनासनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्यं। मया अनुभूतांगना कलागुणविशारदा इति स्मरणं तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलादिवासितं स्त्रीसंसक्तशयनासनमित्येवमादिवर्जनात् परिपूर्णं ब्रह्मचर्यमवतिष्ठते। स्वातंत्र्यार्थं गुरौ ब्रह्मणि चर्यमिति वा ॥ १० ॥ एवं दशधा धर्मः।

द्वादशानुप्रेक्षाः कथ्यन्ते—अध्रुवाशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवर-

---

रहित, व्रत-शील आदिका प्रधानरूपसे उपदेश देनेवाली, हितकारी, मर्यादित, मधुर, मनोहर और संयमीके योग्य होती है ॥८॥ इस प्रकार संयममें समाविष्ट आठ शुद्धियां हैं ॥६॥

कर्मका क्षय करनेके लिये जो तपा जाता है वह तप है। वह तप दो प्रकारका है; वाह्यतप और अभ्यंतर तप। उनमेंसे प्रत्येक छह प्रकारका है ॥७॥ परिग्रहकी निवृत्ति वह त्याग है। चेतन और अचेतनस्वरूप परिग्रहकी निवृत्ति वह त्याग अथवा संयमीको योग्य ज्ञानादिके दानको भी त्याग कहा जाता है ॥८॥ 'यह मेरा है' ऐसे अभिप्रायकी निवृत्ति वह आकिंचन्य है। शरीरादि प्राप्त परिग्रहोंमें भी संस्कार छोड़कर 'यह मेरा है' ऐसे अभिप्रायकी निवृत्तिको आकिंचन्य कहा जाता है। 'जिसका कुछ भी नहीं' वह आकिंचन्य है, उसका भाव अथवा कर्म वह आकिंचन्य है ॥९॥ जिसका अनुभव किया हो उस स्त्रीका स्मरण, उसकी बातें सुनना, जिस पर स्त्री वैठी हो उस शय्या, आसन आदिके त्यागसे ब्रह्मचर्य होता है। मेरे द्वारा भोगी गई स्त्री कला और गुणोंमें विशारद थी ऐसा स्मरण करना, उसकी वातोंको सुनना, रति समयके सुगंधी द्रव्योंकी सुवास, स्त्रीके संवंधयुक्त शय्या-आसन आदिके त्यागसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता है। अथवा स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिये गुरुस्वरूप ब्रह्ममें चर्या करना ब्रह्मचर्य है ॥१०॥ इस प्रकार दस प्रकारके धर्म हैं।

वारह अनुप्रेक्षाओंका कथन किया जाता है—अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मका चिंतन करना—वह अनुप्रेक्षा है।

निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः । अथाध्रुवानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—द्रव्यार्थिकनयेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेनाविनश्वरस्वभावनिजपरमात्मद्रव्याद्न्यद् भिन्नं यज्जीवसंबन्धे अशुद्धनिश्चयनयेन रागादिविभावरूपं भावकर्म; अनुपचरितासद्भूत-व्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मरूपं च तथैव (उपचरितासद्भूतव्यवहारेण) तत्स्वस्वामि-भावसम्बन्धेन गृहीतं यच्चेतनं वनितादिकम्, अचेतनं सुवर्णादिकं, तदुभयमिश्रं चेत्युक्तलक्षणं तत्सर्वमध्रुवमिति भावयितव्यम् । तद्भावनासहितपुरुषस्य तेषां वियोगेऽपि सत्युच्छिष्टेष्विव ममत्वं न भवति तत्र ममत्वाभावादविनश्वरनिजपरमात्मानमेव भेदाभेद-रत्नत्रयभावनया भावयति, यादृशमविनश्वरमात्मानं भावयति तादृशमेवाक्षयानन्तसुख-स्वभावं मुक्तात्मानं प्राप्नोति । इत्यध्रुवानुप्रेक्षा गता ॥ १ ॥

अथाशरणानुप्रेक्षा कथ्यते—निश्चयरत्नत्रयपरिणतं स्वशुद्धात्मद्रव्यं तद् बहिरङ्ग-सहकारिकारणभूतं पञ्चपरमेष्ठ्याराधनञ्च शरणम्, तस्माद्वहिर्भूता ये देवेन्द्रचक्रवर्त्ति-सुभटकोटिभटपुत्रादिचेतना गिरिदुर्गभूविवरमणिमन्त्राज्ञाप्रासादौषधादयः पुनरचेतनास्त-दुभयात्मका मिश्रांश्च मरणकालादौमहाटव्यां, व्याघ्रगृहीतमृगबालस्येव, महासमुद्रे पोतच्युत-

---

अब अध्रुव अनुप्रेक्षाका कथन किया जाता है । वह इस प्रकार—द्रव्यार्थिक-नयसे टंकोत्कीर्ण-ज्ञायक-एक स्वभावपनेसे, अविनाशी स्वभाववाले निज परमात्म-द्रव्यसे भिन्न, जीवके संबंधी जो अशुद्धनिश्चयनयसे रागादि विभावरूप भावकर्म, अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारसे द्रव्यकर्म और नोकर्म, तथा (उपचरित असद्भूत-व्यवहारसे) उसके स्व-स्वामी संबंधभावसे गृहीत जो स्त्री आदि चेतन पदार्थ, सुवर्णादि अचेतन पदार्थ तथा चेतन-अचेतन मिश्र पदार्थ आदि लक्षणयुक्त ये सब पदार्थ अध्रुव हैं ऐसी भावना करनी चाहिये । वैसी भावनावाले पुरुषको उनका वियोग होने पर भी झूठे भोजनके समान ममत्व नहीं होता । उनमें ममत्वका अभाव होनेसे अविनाशी निज परमात्माको ही भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना द्वारा भाते हैं और जैसे अविनाशी आत्माकी भावना करते हैं वैसे ही अक्षय, अनंत सुख-स्वभावी मुक्तात्माको प्राप्त करते हैं । इस प्रकार अध्रुव अनुप्रेक्षा पूर्ण हुई ॥१॥

अब अशरण अनुप्रेक्षा कहते हैं:—निश्चयरत्नत्रयपरिणत स्वशुद्धात्मद्रव्य और उसके बहिरंग सहकारी कारणभूत पंचपरमेष्ठीकी आराधना शरण है, उससे भिन्न देव, इन्द्र, चक्रवर्ती, सुभट, कोटिभट, पुत्र आदि चेतन पदार्थ तथा पर्वत, किला, भौंहरा, मणि, मंत्र, तंत्र, आज्ञा, महल, औषध आदि अचेतन पदार्थ तथा चेतन-अचेतन मिश्र पदार्थ भी मरण आदिके समयमें, महान वनमें बाघके द्वारा पकड़े हुए हिरनके

पक्षिण इव शरणं न भवन्तीति विज्ञेयम् । तद्विज्ञाय भोगकांक्षारूपनिदानबन्धादिनिरालम्बने स्वसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतसालम्बने स्वशुद्धात्मन्येवावलम्बनं कृत्वा भावनां करोति । यादृशं शरणभूतमात्मानं भावयति तादृशमेव सर्वकालशरणभूतं शरणागतवज्रपञ्जरसदृशं निजशुद्धात्मानं प्राप्नोति । इत्यशरणानुप्रेक्षा व्याख्याता ॥२॥

अथ संसारानुप्रेक्षा कथ्यते—शुद्धात्मद्रव्यादितराणि सपूर्वापूर्वमिश्रपुद्गलद्रव्याणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेण, शरीरपोषणार्थाशनपानादिपञ्चेन्द्रियविषयरूपेण चानन्तवारान् गृहीत्वा विमुक्तानीति द्रव्यसंसारः । स्वशुद्धात्मद्रव्यसंबन्धिसहजशुद्धलोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशेभ्यो भिन्ना ये लोकक्षेत्रप्रदेशास्तत्रैकैकं प्रदेशं व्याप्यानन्तवारान् यत्र न जातो न मृतोऽयं जीवः स कोऽपि प्रदेशो नास्तीति क्षेत्रसंसारः । स्वशुद्धात्मानुभूतिरूपनिर्विकल्पसमाधिकालं विहाय प्रत्येकंदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमितोत्सर्पिण्यवसर्पिण्येकैकसमये नानापरावर्त्तनकालेनानन्तवारानयं जीवो यत्र न जातो न मृतः स समयो नास्तीति कालसंसारः । अभेदरत्नत्रयात्मकसमाधिबलेन सिद्धगतौ स्वात्मोपलब्धिलक्षण-

---

वच्चेकी भांति अथवा महासमुद्रमें जहाजसे पृथक् हुए पक्षीकी भांति, शरणरूप नहीं होते हैं, ऐसा जानना । यह जानकर भोगोंकी वांछारूप निदान बंधादिका अवलम्बन न लेता हुआ, स्वसंवेदनसे उत्पन्न सुखामृतके धारक स्व-शुद्धात्माका ही अवलंबन लेकर (उस शुद्धात्माकी) भावना करता है । वह जैसे शरणभूत आत्माका चिंतवन करता है वैसे ही सर्वकालमें शरणभूत, शरणमें आए हुए वज्रके पन्जरकी भांति निज शुद्धात्माको प्राप्त करता है । इस प्रकार अशरण अनुप्रेक्षाका व्याख्यान किया ॥२॥

अब संसार अनुप्रेक्षा कहते हैं:—इस जीवने शुद्धात्मद्रव्यसे भिन्न पूर्वमें मिले हुए, पूर्वमें नहीं मिले हुए और मिश्र ऐसे पुद्गल द्रव्य, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपसे तथा शरीरके पोषणके लिये भोजन, पान आदि पांच इन्द्रियके विषयरूपसे अनंतवार ग्रहणकर छोड़े हैं—यह 'द्रव्यसंसार' है । स्व-शुद्धात्मद्रव्य संबंधी सहज शुद्ध लोकाकाशप्रमाण असंख्य प्रदेशोंसे भिन्न जो लोकाकाशके प्रदेश हैं उनमें एक-एक प्रदेशमें व्याप्त होकर इस जीवने यहां अनंतवार जन्म या मरण न किया हो ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है—वह 'क्षेत्रसंसार' है । स्व-शुद्धात्माके अनुभवरूप निर्विकल्प समाधिका काल छोड़कर दस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्सर्पिणीकाल और दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण अवसर्पिणी कालके एक-एक समयमें अनेक परावर्तन करके, इस जीवने जिसमें अनंतवार जन्म या मरण न किया हो ऐसा कोई भी समय नहीं है—यह

सिद्धपर्यायरूपेण योऽसावुत्पादो भवस्तं विहाय नारकतिर्यग्मनुष्यभवेषु तथैव देवभवेषु च निश्चयरत्नत्रयभावनारहितभोगाकांक्षानिदानपूर्वकद्रव्यतपश्चरणरूपजिनदीक्षाबलेन नव-ग्रैवेयकपर्यन्तं, "सक्को सहग्गमहिस्सी दक्खिणइंदा य लोयवाला य । लोयंतिया य देवा तच्छ चुदा णिव्वुदिं जंति ।१।" इति गाथाकथितपदानि तथागमनिषिद्धान्यन्यपदानि च त्यक्त्वा भवविध्वंसकनिजशुद्धात्मभावनारहितो भवोत्पादकमिथ्यात्वरागादिभावनासहितश्च सन्नयं जीवोऽनन्तवारान् जीवितो मृतश्चेति भवसंसारो ज्ञातव्यः ।

अथ भावसंसारः कथ्यते । तद्यथा—सर्वजघन्यप्रकृतिबन्धप्रदेशबन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यमनोवचनकायपरिस्पन्दरूपाणि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि चतुःस्थानपतितानि सर्वजघन्ययोगस्थानानि भवन्ति तथैव सर्वोत्कृष्टप्रकृतिबन्धप्रदेशबन्धनिमित्तानि सर्वोत्कृष्ट-मनोवचनकायव्यापाररूपाणि तद्योग्यश्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि चतुःस्थानपतितानि सर्वोत्कृष्टयोगस्थानानि च भवन्ति । तथैव सर्वजघन्यस्थितिबन्धनिमित्तानि सर्व-

---

'कालसंसार' है। अभेदरत्नत्रयात्मक समाधिके बलसे सिद्धगतिमें निजात्माकी उपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसी सिद्धपर्यायरूप जो उत्पाद—उसे छोड़कर नरक, तिर्यंच और मनुष्यभवमें तथा देवके भवोंमें निश्चयरत्नत्रयकी भावनारहित, भोगा-कांक्षानिदानपूर्वक द्रव्य-तपश्चरणरूप जिनदीक्षाके बलसे नव ग्रैवेयक तक, "सक्को सहग्गमहिस्सी दक्खिणइंदा य लोयवाला य। लोयंतिया य देवा तच्छ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥" [शक्र (प्रथम स्वर्गका इन्द्र), प्रथम स्वर्गकी इन्द्राणी (शची), दक्षिण दिशाके इन्द्र, लोकपाल और लौकांतिक देव ये सब स्वर्गसे च्युत होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।] इस [1]गाथामें कहे हुए पद तथा आगम निषिद्ध अन्य पद छोड़कर, भवनाशक निजशुद्धात्मभावनासे रहित वर्तते हुए और भव-उत्पादक मिथ्यात्व-रागादिभावना सहित वर्तते हुए इस जीवने अनंतबार जन्म और मरण किया है—इस प्रकार 'भवसंसार' जानना।

अब, भावसंसारका कथन किया जाता है। वह इस प्रकार—सर्वजघन्य प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधके निमित्तभूत, सर्वजघन्य मन-वचन-कायाके परिस्पन्दरूप, श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण, चार स्थानमें पतित ऐसे सर्वजघन्य योगस्थान होते हैं। उसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट मन-वचन-कायाके व्यापाररूप, उसके योग्य श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण, चार स्थानमें पतित ऐसे सर्वोत्कृष्ट योगस्थान होते हैं। उसी प्रकार सर्वजघन्य स्थिति-

---

१–मूलाचार अ०–१२ गाथा–१४२

जघन्यकषायाध्यवसायस्थानानि तद्योग्यासंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च भवन्ति । तथैव च सर्वोत्कृष्टस्थितिबंधनिमित्तानि सर्वोत्कृष्टकषायाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च भवन्ति । तथैव सर्वजघन्यानुभागबन्धनिमित्तानि सर्वजघन्यानुभागाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि भवन्ति । तथैव च सर्वोत्कृष्टानुभागबंधनिमित्तानि सर्वोत्कृष्टानुभागाध्यवसायस्थानानि तान्यप्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि च विज्ञेयानि । तेनैव प्रकारेण स्वकीयस्वकीयजघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये तारतम्येन मध्यमानि च भवन्ति । तथैव जघन्यादुत्कृष्टपर्यन्तानि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतीनां स्थितिबंधस्थानानि च । तानि सर्वाणि परमागमकथितानुसारेणानन्तवारान् भ्रमितान्यनेन जीवेन, परं किन्तु पूर्वोक्तसमस्तप्रकृतिबन्धादीनां सद्भावविनाशकारणानि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणि यानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तान्येव न लब्धानि इति भावसंसारः ।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूपं पञ्चप्रकारं संसारं भावयतोऽस्य जीवस्य संसारातीतस्वशुद्धात्मसंवित्तिविनाशकेषु संसारवृद्धिकारणेषु मिथ्यात्वाविरति-

---

बंधके निमित्तभूत, सर्वजघन्य कषाय-अध्यवसायके स्थान, उनके योग्य असंख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं और तथा सर्वोत्कृष्ट स्थितिबंधके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट कषाय-अध्यवसायके स्थान भी असंख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं । उसीप्रकार सर्वजघन्य अनुभागबंधके निमित्तभूत, सर्वजघन्य अनुभाग-अध्यवसायके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित होते हैं । उसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट अनुभागबंधके निमित्तभूत, सर्वोत्कृष्ट अनुभाग-अध्यवसायके स्थान भी असंख्यात लोकप्रमाण और षट्स्थानपतित जानना । उसी प्रकार अपने-अपने जघन्य और उत्कृष्ट भेदोंके मध्यमें तारतम्यतापूर्वक मध्यम भेद भी हैं । उसी प्रकार जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तकके ज्ञानावरणादि मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंके स्थितिबंधस्थान हैं । उन सबमें परमागममें कहे अनुसार इस जीवने अनंतबार भ्रमण किया है परन्तु पूर्वोक्त समस्त प्रकृतिबंध आदिकी सत्ताके नाशके कारणरूप जो विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव निजपरमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वही इस जीवने प्राप्त नहीं किया है—इसप्रकार 'भावसंसार' है ।

इस पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पांच प्रकारके संसारका चिंतवन करते हुए इस जीवको संसाररहित स्वशुद्धात्मसंवेदनके विनाशक और

प्रमादकषाययोगेषु परिणामो न जायते, किन्तु संसारातीतसुखास्वादे रतो भूत्वा स्वशुद्धात्मसंविचित्तिबलेन संसारविनाशकनिजनिरञ्जनपरमात्मन्येव भावनां करोति । ततश्च यादृशमेव परमात्मानं भावयति तादृशमेव लब्ध्वा संसारविलक्षणे मोक्षेऽनन्तकालं तिष्ठतीति । अयं तु विशेषः—नित्यनिगोदजीवान् विहाय, पञ्चप्रकारसंसारव्याख्यानं ज्ञातव्यम् । कस्मादिति चेत्—नित्यनिगोदजीवानां कालत्रयेऽपि त्रसत्वं नास्तीति । तथा चोक्तं—"अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो । भावकलंक-सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति । १ ।" अनुपममद्वितीयमनादिमिथ्यादृशोऽपि भरतपुत्रा-स्त्रयोविंशत्यधिकनवशतपरिमाणास्ते च नित्यनिगोदवासिनः क्षपितकर्माण इन्द्रगोपाः संजातास्तेषां च पुञ्जीभूतानामुपरि भरतहस्तिना पादो दत्तस्ततस्ते मृत्वापि वर्द्धनकुमारा-दयो भरतपुत्रा जातास्ते च केनचिदपि सह न वदन्ति । ततो भरतेन समवसरणे भगवान् पृष्टो, भगवता च प्राक्तनं वृत्तान्तं कथितम् । तच्छ्रुत्वा ते तपो गृहीत्वा

संसारकी वृद्धिमें कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगके परिणाम नहीं होते हैं किन्तु संसारातीत सुखके आस्वादमें रत होकर, स्वशुद्धात्मसंवेदनके बलसे संसार विनाशक निज निरंजन परमात्मामें ही भावना करता है, और तत्पश्चात् जैसे परमात्माकी भावना करता है वैसे ही परमात्माको प्राप्तकर संसारसे विलक्षण ऐसे मोक्षमें अनंतकाल स्थित रहता है । यहां विशेष यह है कि नित्यनिगोदके जीवोंको छोड़कर पांच प्रकारके संसारका व्याख्यान जानना ।

प्रश्नः—ऐसा क्यों ?

उत्तरः—क्योंकि नित्यनिगोदके जीवोंको तीनों कालोंमें भी त्रसपना नहीं है । कहा भी है—'ऐसे अनंत जीव हैं कि जिन्होंने अब तक त्रस-पर्याय नहीं प्राप्तकी है, वे प्रचुर भावकलंक होनेसे निगोदवास नहीं छोड़ते हैं ।'[1]

अनुपम और अद्वितीय कथन यह है कि नित्य-निगोदवासी, अनादि मिथ्या-दृष्टि जीव भी भरत चक्रवर्तीके नौ सौ तेइस पुत्र कर्मोंकी [2]निर्जरा करनेसे इन्द्र-गोप हुए और उनके समूह पर भरतके हाथीने पैर रखा जिससे वे मरकर वर्धन-कुमार आदि भरतके पुत्र हुए; वे किसीके साथ नहीं बोलते थे, अतः भरतने सम-वशरणमें भगवानसे पूछा तब भगवानने उनका पूर्ववृत्तांत कहा[3], उसे सुनकर

१–गोम्मटसार जीवकांड गाथा–१९६

२–अकाम निर्जरा ।

३–मूल आराधना अ०–१ गाथा १७, पृष्ठ ९९

क्षणस्तोककालेन मोक्षं गताः। आचाराराधनाटिप्पणे कथितमास्ते। इति संसारानुप्रेक्षा गता। ३।

अथैकत्वानुप्रेक्षा कथ्यते। तद्यथा—निश्चयरत्नत्रयैकलक्षणैकत्वभावनापरिणतस्यास्य जीवस्य निश्चयनयेन सहजानन्दसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतं केवलज्ञानमेवैकं सहजं शरीरम्। शरीरं कोऽर्थः? स्वरूपं, न च सप्तधातुमयौदारिकशरीरम्। तथैवार्त्तरौद्रदुर्ध्यानविलक्षणपरमसामायिकलक्षणैकत्वभावनापरिणतं निजात्मतत्त्वमेवैकं सदा शाश्वतं परमहितकारी परमोबन्धुः, न च विनश्वराहितकारी पुत्रकलत्रादि। तेनैव प्रकारेण परमोपेक्षासंयमलक्षणैकत्वभावनासहितः स्वशुद्धात्मपदार्थ एक एवाविनश्वरहितकारी परमोऽर्थः, न च सुवर्णाद्यर्थः। तथैव निर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणानाकुलत्वस्वभावात्मसुखमेवैकं सुखं न चाकुलत्वोत्पादकेन्द्रियसुखमिति। कस्मादिदं देहबन्धुजनसुवर्णाद्यर्थेन्द्रियसुखादिकं जीवस्य निश्चयेन निराकृतमिति चेत्? यतो मरणकाले जीव एक एव गत्यन्तरं गच्छति, न च देहादीनि। तथैव रोगव्याप्तिकाले

उन्होंने तप ग्रहण किया और बहुत थोड़े समयमें मोक्ष प्राप्त किया। यह कथा आचार-आराधनाके टिप्पणमें है।—इस प्रकार 'संसार-अनुप्रेक्षा' पूर्ण हुई ॥३॥

अब एकत्व-अनुप्रेक्षा कहते हैं। वह इस प्रकार है:—निश्चयरत्नत्रय ही जिसका एक लक्षण है ऐसी एकत्वभावनारूपसे परिणमित इस जीवको निश्चयनयसे—(१) सहजानंद सुखादि अनंतगुणके आधारभूत केवलज्ञान ही एक सहज शरीर है; शरीर अर्थात् क्या? स्वरूप; सात धातुमय औदारिक शरीर नहीं; (२) उसी प्रकार आर्त्त और रौद्ररूप दुर्ध्यानसे विलक्षण परमसामायिक जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसी एकत्वभावनारूपसे परिणमित निजात्मतत्त्व ही एक सदा शाश्वत, परम हितकारी, परमबंधु है, विनश्वर और अहितकारी पुत्र, स्त्री आदि नहीं; (३) उसी प्रकार परम-उपेक्षासंयम जिसका लक्षण है ऐसी एकत्वभावना सहित स्वशुद्धात्मपदार्थ एक ही अविनाशी और हितकारी परम अर्थ है, सुवर्ण आदि अर्थ नहीं। (४) उसी प्रकार निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न निर्विकार परमानंद जिसका लक्षण है ऐसे अनाकुलपनेरूप स्वभावयुक्त आत्मसुख ही एक सुख है, आकुलताका उत्पादक इन्द्रियसुख नहीं।

शंकाः—यह (१) शरीर, (२) बन्धुजन, (३) सुवर्णादि अर्थ और (४) इन्द्रियसुख आदि जीवके निश्चयसे नहीं हैं ऐसा कैसे कहा?

समाधानः—क्योंकि मरणके समय जीव अकेला ही दूसरी गतिमें जाता है,

विषयकषायादिदुर्ध्यानरहितः स्वशुद्धात्मैकसहायो भवति । तदपि कथमिति चेत् ? यदि चरमदेहो भवति तर्हि केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपं मोक्षं नयति, अचरमदेहस्य तु संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा देवेन्द्राद्यभ्युदयसुखं दत्वा च पश्चात् पारम्पर्येण मोक्षं प्रापयतीत्यर्थः । तथा चोक्तम्—"सग्गं तवेण सव्वो, वि पावए तहि वि झाणजोयेण । जो पावइ सो पावइ, परलोए सासयं सोक्खं । १ ।" एवमेकत्वभावनाफलं ज्ञात्वा निरन्तरं निजशुद्धात्मैकत्वभावना कर्तव्या । इत्येकत्वानुप्रेक्षा गता ।। ४ ।।

अथान्यत्वानुप्रेक्षां कथयति । तथा हि—पूर्वोक्तानि यानि देहबन्धुजन-सुवर्णाद्यर्थेन्द्रियसुखादीनि कर्माधीनत्वे विनश्वराणि तथैव हेयभूतानि च, तानि सर्वाणि टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन नित्यात्सर्वप्रकारोपादेयभूतान्निर्विकारपरमचैतन्यचिच्चमत्कारस्वभावान्निजपरमात्मपदार्थान्निश्चयनयेनान्यानि भिन्नानि । तेभ्यः पुनरात्माप्यन्यो

शरीर आदि जीवके साथ नहीं जाते हैं । तथा जीव जब रोगोंसे घिर जाता है तब भी विषय-कषायादि दुर्ध्यानसे रहित निज शुद्धात्मा ही सहायक होता है ।

शंकाः—वह किस प्रकार सहायक होता है ?

उत्तरः—यदि जीवका यह अंतिम शरीर हो तो वह केवलज्ञानादिकी प्रगटता-रूप मोक्षमें ले जाता है और यदि अन्तिम शरीर न हो तो वह संसारकी स्थिति घटाकर देवेन्द्रादि संबंधी पुण्यका सुख देकर तत्पश्चात् परंपरासे मोक्षकी प्राप्ति कराता है । कहा है कि:—'तप करनेसे स्वर्ग सब कोई प्राप्त करते हैं परन्तु ध्यानके योगसे जो स्वर्ग प्राप्त करता है वह आगामी भवमें अक्षय सुख प्राप्त[1] करता है ।' इसप्रकार एकत्वभावनाका फल जानकर निरंतर निज शुद्धात्माके एकत्वकी भावना करना । इसप्रकार 'एकत्व-अनुप्रेक्षा' पूर्ण हुई ।।४।।

अव अन्यत्व-अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार—पूर्वोक्त देह, बन्धुजन, सुवर्णादि अर्थ और इन्द्रियसुखादि कर्मोंके आधीन होनेसे, विनश्वर और [2]हेय भी हैं । वे सब, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एकस्वभावपनेके कारण नित्य और सब प्रकारसे उपादेय-भूत निर्विकार परमचैतन्यरूप चित्चमत्कारस्वभावी निज परमात्मपदार्थसे निश्चय-नयसे [2]अन्य-भिन्न हैं, आत्मा भी उनसे अन्य-भिन्न है । यहां भाव (आशय) यह है

१-मोक्षपाहुड़ गाथा-२३

२-परपदार्थ आत्मासे अन्य है—भिन्न हैं और आश्रय करने योग्य नहीं हैं । परपदार्थोंमें निमित्त भी समाविष्ट है, उनकी सन्मुखतासे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं अतः वे हेय हैं अर्थात् आत्मसन्मुखता द्वारा उनकी सन्मुखता (उनका आश्रय) छोड़ने योग्य है । सर्व प्रकारसे उपादेयभूत निज पर-मात्मपदार्थका आश्रय होने पर परपदार्थका आश्रय छूट जाता है अर्थात् वे हेयरूप होजाते हैं ।

भिन्न इति । अयमत्र भावः—एकत्वानुप्रेक्षायामेकोऽहमित्यादिविधिरूपेण व्याख्यानं, अन्यत्वानुप्रेक्षायां तु देहादयो मत्सकाशादन्ये, मदीया न भवन्तीति निषेधरूपेण । इत्येकत्वान्यत्वानुप्रेक्षायां विधिनिषेधरूप एव विशेषस्तात्पर्यं तदेव । इत्यन्यत्वानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ५ ॥

अतः परं अशुचित्वानुप्रेक्षा कथ्यते । तद्यथा—सर्वाशुचिशुक्रशोणित-कारणोत्पन्नत्वात्तथैव "वसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः" इत्युक्ताशुचि-सप्तधातुमयत्वेन तथा नासिकादिनवरन्ध्रद्वारैरपि स्वरूपेणाशुचित्वात्तथैव मूत्रपुरीषाद्य-शुचिमलानामुत्पत्तिस्थानत्वाच्चाशुचिरयं देहः । न केवलमशुचिकारणत्वेनाशुचिः स्वरूपेणा-शुच्युत्पादकत्वेन चाशुचिः, शुचि सुगन्धमाल्यवस्त्रादीनामशुचित्वोत्पादकत्वाच्चाशुचिः ।

कि—एकत्व-अनुप्रेक्षामें "मैं एक हूँ" इत्यादि प्रकारसे विधिरूप व्याख्यान है और अन्यत्व-अनुप्रेक्षामें 'देहादि पदार्थ मेरेसे भिन्न हैं, मेरे नहीं हैं'—इस प्रकार निषेध-रूपसे व्याख्यान है । इस रीतिसे एकत्व और अन्यत्व इन दोनों अनुप्रेक्षाओंमें विधि और निषेधरूप ही अन्तर है; दोनोंका तात्पर्य एक ही है ।—इस प्रकार 'अन्यत्व-अनुप्रेक्षा'[1] समाप्त हुई ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् अशुचि-अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार है—सर्व प्रकारसे अशुचि (अपवित्र) वीर्य और रजसे उत्पन्न होनेके कारण, और "वसासृग्मांसमेदोऽ-स्थिमज्जाशुक्राणि धातवः । (वसा, रुधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र—ये धातुएँ हैं)" इसमें कथित अशुचि सात धातुमय होनेसे तथा नाक आदि नव छिद्र-द्वार होनेसे स्वरूपसे भी अशुचि होनेके कारण, तथा मूत्र, विष्टा आदि अशुचि मलोंकी उत्पत्तिका स्थान होनेके कारण यह देह अशुचि है । मात्र वह अशुचिका कारण होनेसे ही अशुचि नहीं है परंतु स्वरूपसे अशुचिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे वह अशुचि है; शुचि (पवित्र) ऐसे सुगंधित माला, वस्त्र आदिमें अशुचिपना उत्पन्न करनेके कारण भी देह अशुचि है ।

१–आत्मा और परपदार्थ परस्पर भिन्न और अन्य होनेसे प्रत्येकके छहों कारक परस्पर सर्वथा भिन्न हैं, उसका अर्थ यह हुआ कि—कोई परका कुछ नहीं कर सकता है । (देखिये, गाथा ८ की टीका पृष्ठ २७) अतः सर्व प्रकारसे उपादेयभूत निज त्रिकाल परमात्मपदार्थके सन्मुख होकर आत्मामें एकत्वरूपसे परिणमित होना वह एकत्वभावना है । उस शुद्ध परिणमनमें अन्य-भिन्न पदार्थों (जिनमें निमित्त भी समाविष्ट है)का निषेध–हेयपना हो जाता है, उस हेयपनेको अन्यत्वभावना कहते हैं ।

इदानीं शुचित्वं कथ्यते—सहजशुद्धकेवलज्ञानादिगुणानामाधारभूतत्वात्स्वयं निश्चयेन शुचिरूपत्वाच्च परमात्मैव शुचिः । "जीवो बह्म जीवह्मि चेव चरिया हविज्ज जो जदिणो । तं जाण बह्मचेरं विमुक्कपरदेहभत्तीए । १ ।" इति गाथाकथितनिर्मल-ब्रह्मचर्यं तत्रैव निजपरमात्मनि स्थितानामेव लभ्यते । तथैव "ब्रह्मचारी सदा शुचिः" इतिवचनात्तथाविधब्रह्मचारिणामेव शुचित्वं न च कामक्रोधादिरतानां जलस्नानादि-शौचेऽपि । तथैव च—"जन्मना जायते शूद्रः क्रियया द्विज उच्यते । श्रुतेन श्रोत्रियो ज्ञेयो ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः । १ ।" इतिवचनात्त एव निश्चयशुद्धाः ब्राह्मणाः । तथा चोक्तं नारायणेन युधिष्ठिरं प्रति विशुद्धात्मनदीस्नानमेव परमशुचित्वकारणं, न च लौकिकगङ्गादितीर्थेस्नानादिकम् । "आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा । १ ।" इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा गता ॥६॥

अब अशुचित्वका (पवित्रताका) कथन किया जाता है:—सहज शुद्ध केवल-ज्ञानादि गुणोंका आधारभूत होनेसे और स्वयं ही निश्चयसे शुचिरूप होनेसे परमात्मा ही शुचि है। "जीवो बह्म जीवह्मि चेव चरिया हविज्ज जो जदिणो । तं जाण ब्रह्मचेरं विमुक्कपरदेहभत्तीए ॥" (जीव ब्रह्म है, जीवमें ही मुनिकी जो चर्या होती है उसे पर ऐसे देहकी सेवारहित ब्रह्मचर्य जानना ।)'—इस गाथामें कथित निर्मल ब्रह्मचर्य, वह निज परमात्मामें स्थित जीवोंको ही होता है। उसी प्रकार "ब्रह्मचारी सदा शुचिः (ब्रह्मचारी सदा शुचि है)" इस वचनसे उस प्रकारके ब्रह्मचारियोंको ही शुचिपना है, काम-क्रोधादिमें रत रहनेवालोंको जलस्नान आदिसे शुद्धि करने पर भी शुचि-पना नहीं है। इसी प्रकार कहा है कि "जन्मसे शूद्र होता है, क्रियासे द्विज कह-लाता है, श्रुत द्वारा श्रोत्रिय और ब्रह्मचर्य द्वारा ब्राह्मण जानना ॥१॥" इस वचन अनुसार वे ही निश्चयशुद्ध (वास्तविक शुद्ध) ब्राह्मण हैं। इस प्रकार नारायणने युधिष्ठिरसे कहा है कि विशुद्ध आत्मारूपी नदीमें स्नान करना वही परम शुचिताका कारण है, लौकिक गंगा आदि तीर्थोंमें स्नानादि वह शुचिका कारण नहीं है : "आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥ (संयमरूपी जलसे परिपूर्ण, सत्यरूपी प्रवाहवाली, शीलरूपी किनारोंवाली और दयारूपी तरंगोंवाली जो आत्मनदी है, उसमें हे पांडुपुत्र ! स्नान करो; अंतरात्मा जलसे शुद्ध नहीं होता है ।)"—इस प्रकार 'अशुचित्व-अनुप्रेक्षा' पूर्ण हुई ॥६॥

अत ऊर्ध्वमास्रवानुप्रेक्षा कथ्यते । समुद्रे सच्छिद्रपोतवदयं जीव इन्द्रियाद्यास्रवैः संसारसागरे पततीति वार्त्तिकम् । अतीन्द्रियस्वशुद्धात्मसंवित्तिविलक्षणानि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि भण्यन्ते । परमोपशममूर्तिपरमात्मस्वभावस्य क्षोभोत्पादकाः क्रोधमानमायालोभकषाया अभिधीयन्ते । रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपायाः शुद्धात्मानुभूतेः प्रतिकूलानि हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहप्रवृत्तिरूपाणि पञ्चाव्रतानि । निष्क्रियनिर्विकारात्मतत्त्वाद्विपरीता मनोवचनकायव्यापाररूपाः परमागमोक्ताः सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रियेत्यादिपञ्चविंशतिक्रियाः उच्यन्ते । इन्द्रियकषायाव्रतक्रियारूपास्रवाणां स्वरूपमेतद्विज्ञेयम् । यथा समुद्रेऽनेकरत्नभाण्डपूर्णस्य सच्छिद्रपोतस्य जलप्रवेशे पातो भवति, न च वेलापत्तनं प्राप्नोति । तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणामूल्यरत्नभाण्डपूर्णजीवपोतस्य पूर्वोक्तास्रवद्वारैः कर्मजलप्रवेशे सति संसारसमुद्रे पातो भवति, न च केवलज्ञानाव्याबाधसुखाद्यनन्तगुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापत्तनं प्राप्नोतीति । एवमास्रवगतदोषानु-

---

अब आगे [1]आस्रव–अनुप्रेक्षा कहते हैं:—'समुद्रमें छिद्रयुक्त नावकी भांति यह जीव इन्द्रियादि आस्रवोंसे संसाररूपी सागरमें पड़ता है' यह वार्तिक है । अतीन्द्रिय स्वशुद्धात्मसंवेदनसे विलक्षण स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण—ये पांच इन्द्रियां हैं । परम-उपशममूर्ति परमात्मस्वभावको क्षोभ उत्पन्न करनेवाले क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय कहलाते हैं । रागादि विकल्पोंकी निवृत्तिरूप शुद्धात्मानुभूतिसे प्रतिकूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रहमें प्रवृत्तिरूप पांच अव्रत हैं । निष्क्रिय निर्विकार आत्मतत्त्वसे विपरीत ऐसी, मन-वचन-कायाके व्यापाररूप, परमागममें कथित सम्यक्त्वक्रिया, मिथ्यात्वक्रिया आदि पचीस क्रियायें हैं । इस प्रकार इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियारूप आस्रवोंका स्वरूप जानना । जिस प्रकार समुद्रमें अनेक रत्नोंरूपी मालसे भरा हुआ, छिद्रयुक्त जहाज उसमें जल प्रवेश करने पर डूब जाता है, समुद्रके किनारे नगरमें नहीं पहुंच सकता है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप अमूल्य रत्नोंरूपी मालसे भरा हुआ जीवरूपी जहाज, पूर्वोक्त आस्रवरूपी द्वारोंमें कर्मरूपी जल प्रवेश करने पर संसाररूपी समुद्रमें डूब जाता है, केवलज्ञान, अव्याबाध सुख आदि अनंत गुणरूप रत्नोंसे पूर्ण ऐसे, मुक्तिरूपी समुद्र किनारेके नगरमें नहीं पहुंच सकता है । इस प्रकार आस्रवगत

१–श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित द्वादशानुप्रेक्षा गाथा ६० में कहा है कि:—आस्रवके जो भेद कहे गये हैं वे निश्चयनयसे जीवके नहीं हैं अतः आत्माको दोनों प्रकारके आस्रवोंसे रहित ही निरंतर चिंतवन करना चाहिये ।

चिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा ज्ञातव्येति ॥ ७ ॥

अथ संवरानुप्रेक्षा कथ्यते—यथा तदेव जलपात्रं छिद्रस्य झम्पने सति जलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन वेलापत्तनं प्राप्नोति; तथा जीवजलपात्रं निजशुद्धात्मसंवित्तिवलेन इन्द्रियाद्यास्रवच्छिद्राणां झम्पने सति कर्मजलप्रवेशाभावे निर्विघ्नेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणरत्नपूर्णमुक्तिवेलापत्तनं प्राप्नोतीति । एवं संवरगतगुणानुचिन्तनं संवरानुप्रेक्षा ज्ञातव्या ॥ ८ ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा प्रतिपादयति । यथा कोऽप्यजीर्णदोषेण मलसञ्चये जाते सत्याहारं त्यक्त्वा किमपि हरीतक्यादिकं मलपाचकमग्निदीपकं चौषधं गृह्णाति । तेन च मलपाकेन मलानां पातने गलने निर्जरणे सति सुखी भवति । तथायं भव्य जीवोऽप्यजीर्णजनकाहारस्थानीयमिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्ममलसञ्चये सति मिथ्यात्वरागादिकं त्यक्त्वा परमौषधस्थानीयं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखादिसमभावनाप्रतिपादकं कर्ममलपाचकं शुद्धध्यानाग्निदीपकं च जिनवचनौषधं सेवते । तेन च कर्म-

---

दोषोंका चिंतन करना उसे आस्रव-अनुप्रेक्षा जानना ॥७॥

अब, संवर-अनुप्रेक्षा कहते हैं:—जिस प्रकार वही जहाज छिद्र बंद हो जानेसे, उसमें पानीका प्रवेश न होनेके कारण निर्विघ्नरूपसे समुद्रकिनारेके नगरमें पहुंच जाता है उसी प्रकार जीवरूपी जहाज निजशुद्धात्माकी संवित्तिके बलसे इन्द्रियादि आस्रवोंरूपी छिद्र बंद होने पर, उसमें कर्मरूपी जलका प्रवेश न होनेके कारण निर्विघ्नरूपसे केवलज्ञानादि अनंत गुणरत्नोंसे पूर्ण ऐसे, मुक्तिरूपी समुद्रकिनारेके नगरमें पहुंच जाता है। इस प्रकार संवरगत गुणोंके चिंतवनरूप [1]संवर-अनुप्रेक्षा जानना ॥ ८ ॥

अब, निर्जरा-अनुप्रेक्षाका प्रतिपादन करते हैं:—जिस प्रकार किसी मनुष्यको अजीर्णदोषके कारण मलसंचय होनेसे, वह मनुष्य आहारका त्याग करके मलको पकानेवाली और जठराग्नि बढ़ानेवाली ऐसी हरड़ आदि दवा लेता है और उससे मल पक जानेसे, गल जाने-खिर जाने पर, वह सुखी होता है; उसी प्रकार यह भव्य जीव भी अजीर्ण उत्पन्न करनेवाले आहारके समान मिथ्यात्व-रागादि अज्ञानभावसे कर्मरूपी मलका संचय होनेपर, मिथ्यात्व-रागादि छोड़कर; परम औषधसमान ऐसी जो, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख आदिमें समभावका प्रतिपादन

१-संवर चतुर्थ गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है और चौदहवें गुणस्थानके पहले समयमें संवर पूर्ण हो जाता है अतः चतुर्थ गुणस्थानकी भूमिका अनुसार निज शुद्धात्मसंवित्तिका बल प्रत्येक समय होता है ऐसा समझना।

मलानां गलने निर्जरणे सति सुखी भवति। किञ्च–यथा कोऽपि धीमानजीर्णकाले यद्दुखं जातं तदजीर्णे गतेऽपि न विस्मरति ततश्चाजीर्णजनकाहारं परिहरति तेन च सर्वदैव सुखी भवति। तथा विवेकिजनोऽपि 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति' इति वचनाद्दुःखोत्पत्तिकाले ये धर्मपरिणामा जायन्ते तान् दुःखे गतेऽपि न विस्मरति। ततश्च निजपरमात्मानुभूतिबलेन निर्जरार्थं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिविभावपरिणाम-परित्यागरूपैः संवेगवैराग्यपरिणामैर्वर्त्तत इति। संवेगवैराग्यलक्षणं कथ्यते—"धम्मे य धम्मफलह्मि दंसणे य हरिसो य हुंति संवेगो। संसारदेहभोगेसु विरत्तभावो य वैरग्गं। १।" इति निर्जरानुप्रेक्षागता ॥ ९ ॥

अथ लोकानुप्रेक्षां प्रतिपादयति। तद्यथा—अनंतानंताकाशबहुमध्यप्रदेशे घनोदधिघनवाततनुवाताभिधानवायुत्रयवेष्टितानादिनिधनाकृत्रिमनिश्चलासंख्यातप्रदेशो लोकोऽस्ति। तस्याकारः कथ्यते—अधोमुखार्द्धमुरजस्योपरि पूर्णे मुरजे स्थापिते यादृशाकारो

करनेवाली, कर्मरूपी मलको पचानेवाली, शुद्ध ध्यानरूपी अग्निको प्रज्वलित करनेवाली जिनवचनरूपी औषधि, उसका सेवन करता है और उससे कर्मरूपी मल गल जाने पर निर्जरित हो जाने पर वह सुखी होता है। विशेष—जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य अजीर्णके समय स्वयंको जो दुःख हुआ था उसे अजीर्ण मिट जाने पर भी नहीं भूल जाता है और अजीर्ण उत्पन्न करनेवाले आहारका त्याग करता है और उससे वह सदा सुखी रहता है; उसी प्रकार विवेकी जीव भी 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति। (दुःखी मनुष्य धर्ममें तत्पर होते हैं)' इस वचनके अनुसार दुःख उत्पन्न होनेके समय जो धर्मका परिणाम उत्पन्न होता है उसे, दुःख चला जाने पर भी भूलता नहीं है, और इसलिये निज परमात्माके अनुभवके बलसे निर्जराके लिये दृष्ट-श्रुत-अनुभूत भोगाकांक्षादिरूप विभावपरिणामके परित्यागरूप संवेग-वैराग्य परिणामोंमें वर्तता है।

संवेग और वैराग्यका लक्षण कहते हैं। "धम्मे य धम्मफलह्मि दंसणे य हरिसो य हुंति संवेगो। संसारदेहभोगेसु विरत्तभावो य वैरग्गं ॥" (धर्ममें, धर्मके फलमें और दर्शनमें जो हर्ष होता है वह संवेग है; संसार, देह तथा भोगोंमें जो विरक्त-भाव है वह वैराग्य है।)"—इस प्रकार निर्जरा अनुप्रेक्षा पूर्ण हुई ॥९॥

अब, लोक-अनुप्रेक्षाका प्रतिपादन करते हैं। वह इस प्रकार है—अनंतानंत आकाशके बिलकुल मध्यप्रदेशमें घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक तीन वायुओंसे वेष्टित (लिपटा हुआ), अनादिनिधन, अकृत्रिम, निश्चल, असंख्यातप्रदेशी

भवति तादृशाकारः, परं किन्तु मुरजो वृत्तो लोकस्तु चतुष्कोण इति विशेषः। अथवा प्रसारितपादस्य कटितटन्यस्तहस्तस्य चोर्ध्वस्थितपुरुषस्य यादृशाकारो भवति तादृशः। इदानीं तस्यैवोत्सेधायामविस्ताराः कथ्यन्ते—चतुर्दशरज्जुप्रमाणोत्सेधस्तथैव दक्षिणोत्तरेण सर्वत्र सप्तरज्जुप्रमाणायामो भवति। पूर्वपश्चिमेन पुनरधोविभागे सप्तरज्जुविस्तारः। ततश्चाधोभागात् क्रमहानिरूपेण हीयते यावन्मध्यलोक एकरज्जुप्रमाणविस्तारो भवति। ततो मध्यलोकादूर्ध्वं क्रमवृद्धया वर्द्धते यावद् ब्रह्मलोकान्ते रज्जुपञ्चकविस्तारो भवति। ततश्चोर्ध्वं पुनरपि हीयते यावल्लोकांते रज्जुप्रमाणविस्तारो भवति। तस्यैव लोकस्य मध्ये पुनरुदूखलस्य मध्याधोभागे छिद्रे कृते सति निक्षिप्तवंशनालिकेव चतुष्कोणा त्रसनाडी भवति। सा चैकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्जूत्सेधा विज्ञेया। तस्यास्त्वधोभागे सप्तरज्जवोऽधोलोकसंबन्धिन्यः। ऊर्ध्वभागे मध्यलोकोत्सेधसंबन्धिलक्षयोजनप्रमाणमेरूत्सेधः सप्तरज्जव ऊर्ध्वलोकसम्बन्धिन्यः।

अतः परमधोलोकः कथ्यते। अधोभागे मेरोराधारभूता रत्नप्रभाख्या

लोक है। उसका आकार कहते हैं:—नीचा मुख करके रखे हुए आधे मृदंग पर सम्पूर्ण मृदंग रखने पर जैसा आकार होता है, वैसा लोकका आकार है; परंतु मृदंग गोलाकार होता है और लोक चौरस (चौकोर) है, इतना अंतर है। अथवा पैर चौड़े करके, कटि पर हाथ रखकर खड़े हुए पुरुषका जैसा आकार होता है वैसा लोकका आकार है। अब उसकी ही ऊंचाई-लंबाई-विस्तारका कथन करते हैं। चौदह राजू ऊंचा, उत्तर-दक्षिण सब ओर (तरफ) सात राजू चौड़ा है। पूर्व-पश्चिममें नीचेके भागमें सात राजू चौड़ा है, उस अधोभागसे चौड़ाई क्रम-क्रमसे घटते-घटते जहां मध्यलोक है वहां एक राजू चौड़ाई रहती है। इसके पश्चात् मध्यलोकसे ऊपर क्रम-क्रमसे बढ़ती है और ब्रह्मलोकके अंतमें पांच राजू चौड़ाई हो जाती है, इसके पश्चात् फिर घटती है और लोकके अंतमें एक राजूकी चौड़ाई रहती है। उसी लोकके मध्यभागमें, ऊखलके मध्यभागसे नीचेकी ओर छिद्र करके एक बांसकी नली रखी हो वैसा आकार होता है उसके समान एक चौकोर त्रसनाड़ी है। वह एक राजू लंबी-चौड़ी और चौदह राजू ऊंची है। उसके नीचेके भागमें सात राजू अधोलोक संबंधी हैं। ऊर्ध्वभागमें मध्यलोककी ऊंचाई संबंधी एक लाख योजन प्रमाण सुमेरु पर्वतकी ऊंचाई सहित सात राजू ऊर्ध्व लोक संबंधी हैं।

इसके पश्चात् अधोलोकका कथन करते हैं:—अधोभागमें सुमेरु पर्वतको आधारभूत रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी है। उस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे-नीचे एक-

प्रथम पृथिवी। तस्या अधोऽधः प्रत्येकमेकैकरज्जुप्रमाणामाकाशं गत्वा यथाक्रमेण शर्करा-वालुकापङ्कधूमतमोमहातमः संज्ञा षड् भूमयो भवन्ति। तस्मादधोभागे रज्जुप्रमाणं क्षेत्रं भूमिरहितं निगोदादिपञ्चस्थावरभृतं च तिष्ठति। रत्नप्रभादिपृथिवीनां प्रत्येकं घनोदधिघनवाततनुवातत्रयमाधारभूतं भवतीति विज्ञेयम्। कस्यां पृथिव्यां कति नरकविलानि सन्तीति प्रश्ने यथाक्रमेण कथयति—तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशत-सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ८४००००० । अथ रत्नप्रभादिपृथिवीनां क्रमेण पिण्डस्य प्रमाणं कथयति। पिण्डस्य कोऽर्थः ? मन्द्रत्वस्य वाहुल्यस्येति। अशीतिसहस्राधिकैक-लक्षं तथैव द्वात्रिंशदष्टाविंशतिचतुर्विंशतिविंशतिषोडशाष्टसहस्रप्रमितानि योजनानि ज्ञातव्यानि। तिर्यग्विस्तारस्तु चतुर्दिग्विभागे यद्यपि त्रसनाड्यपेक्षयैकरज्जुप्रमाणस्तथापि त्रसरहितवहिर्भागे लोकान्तप्रमाणमिति तथा चोक्तं "भुवामन्ते स्पृशन्तीनां लोकान्तं सर्वदिक्षु च"। अत्र विस्तारेण तिर्यग्विस्तारपर्यन्तमन्द्रत्वेन मंदरावगाहयोजनसहस्रबाहुल्या मध्यलोके या चित्रा पृथिवी तिष्ठति तस्या अधोभागे षोडशसहस्रबाहुल्यः खरभाग-

एक राजू प्रमाण आकाशमें क्रम पूर्वक शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा नामक छह भूमियां हैं। उनके नीचे एक राजू प्रमाण भूमिरहित क्षेत्रमें निगोदादि पांच स्थावर भरे हैं। रत्नप्रभा आदि प्रत्येक पृथ्वीको घनोदधि, घनवात और तनुवात ये तीन वायु आधारभूत हैं ऐसा जानना। किस पृथ्वीमें कितने नरकके विल (उत्पन्न होनेके स्थान) हैं उन्हें क्रमपूर्वक कहते हैं। पहली भूमिमें तीस लाख, दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दस लाख, पांचवींमें तीन लाख, छट्ठीमें निन्यानवें हजार नवसौ पंचाणवें और सातवींमें पांच; इस प्रकार सव मिलकर चौरासी लाख विल हैं।

अव रत्नप्रभा आदि पृथ्वीका क्रमपूर्वक पिंडप्रमाण कितना है इसे कहते हैं। पिंड अर्थात् क्या ? गहराई अथवा मोटाई। प्रथम पृथ्वीका एक लाख अस्सी हजार, दूसरीका वत्तीस हजार, तीसरीका अठाईस हजार, चौथीका चौवीस हजार, पांचवींका वीस हजार, छट्ठवींका सोलह हजार और सातवींका आठ हजार योजन पिंड जानना। उन पृथ्वियोंका तिर्यक् विस्तार चारों दिशाओंमें यद्यपि त्रसनाड़ीकी अपेक्षासे एक राजू प्रमाण है तो भी त्रसरहित त्रसनाड़ीके वाहरके भागमें लोकके अंत तक है। वही कहा है—"अंतको स्पर्श करती हुई पृथ्वियोंका प्रमाण सव दिशाओंमें लोकके अंत तक है।" अव यहां विस्तारमें तिर्यक् लोक पर्यंत, गहराई (मोटाई)में मेरुपर्वतकी अवगाहनाके समान एक हजार योजन मोटी चित्रा नामक पृथ्वी मध्यलोकमें है, उस पृथ्वीके नीचे सोलह हजार योजन चौड़ा खरभाग है।

स्तिष्ठति । तस्मादप्यधश्चतुरशीतियोजनसहस्रबाहुल्यः पङ्कभागः तिष्ठति । ततोऽप्यधोभागे अशीतिसहस्रबाहुल्यो अब्बहुलभागस्तिष्ठतीत्येवं रत्नप्रभा पृथिवी त्रिभेदा ज्ञातव्या । तत्र खरभागेऽसुरकुलं विहाय नवप्रकारभवनवासिदेवानां तथैव राक्षसकुलं विहाय सप्तप्रकारव्यन्तरदेवानां आवासा ज्ञातव्या इति । पङ्कभागे पुनरसुराणां राक्षसानां चेति । अब्बहुलभागे नारकास्तिष्ठन्ति ।

तत्र बहुभूमिकाप्रासादवदधोऽधः सर्वपृथिवीषु स्वकीयस्वकीयबाहुल्यात् सकाशादध उपरि चैकैकयोजनसहस्रं विहाय मध्यभागे भूमिक्रमेण पटलानि भवन्ति त्रयोदशैकादशनवसप्तपञ्चत्र्येकसंख्यानि, तान्येव सर्वसमुदायेन पुनरेकोनपञ्चाशत्प्रमितानि पटलानि । पटलानि कोऽर्थः ? प्रस्तारा इन्द्रका अंतर्भूमयः इति । तत्र रत्नप्रभायां सीमंतसंज्ञे प्रथमपटलविस्तारे नृलोकवत् यत्संख्येययोजनविस्तारवत् मध्यबिलं तस्येन्द्रकसंज्ञा । तस्यैव चतुर्दिग्विभागे प्रतिदिशं पंक्तिरूपेणासंख्येययोजनविस्ताराण्येकोनपञ्चाशद्बिलानि । तथैव विदिक्चतुष्टये प्रतिदिशं पंक्तिरूपेण यान्यष्टचत्वारिंशद्बिलानि तान्यप्यसंख्यातयोजनविस्ताराणि । तेषामपि श्रेणीबद्धसंज्ञा । दिग्विदिगष्ट-

---

उस खरभागके नीचे चौरासी हजार योजन चौड़ा पंकभाग है, उससे भी नीचे अस्सी हजार योजन चौड़ा अब्बहुल भाग है । इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी तीन भेदवाली जानना । उस खरभागमें असुरकुलके अतिरिक्त नौ प्रकारके भवनवासी देवोंके और राक्षसकुलके अतिरिक्त सात प्रकारके व्यंतर देवोंके आवास जानना । पंकभागमें असुरकुमारोंके और राक्षसोंके निवास हैं । अब्बहुल भागमें नारकी हैं ।

वहां अनेक भूमिकावाले (मंजिलोंवाले) महलकी भांति नीचे-नीचे सर्व पृथ्वियोंमें अपनी-अपनी मोटाई प्रमाण नीचे और ऊपर एक-एक हजार योजन छोड़कर मध्यभागमें भूमिके क्रमसे पटल होते हैं । भूमिके क्रमसे वे पटल पहली नरक पृथ्वीमें तेरह, दूसरीमें ग्यारह, तीसरीमें नौ, चौथीमें सात, पांचवींमें पांच, छट्ठीमें तीन और सातवींमें एक; इस प्रकार कुल उनपचास पटल हैं । 'पटल' अर्थात् क्या ? 'पटल'का अर्थ प्रस्तार, इन्द्रक अथवा अन्तर्भूमि है । वहां रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वीके सीमन्त नामक प्रथम पटलमें मनुष्यलोक जितने संख्यात योजन (पैंतालीस लाख योजन) विस्तारवाला मध्यबिल है उसका नाम इन्द्रक है । उसकी (इन्द्रककी) चारों दिशाओंमें असंख्यात योजन विस्तारवाले पंक्तिरूपसे उनपचास बिल हैं; उसी प्रकार चारों विदिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें पंक्तिरूपसे अड़तालीस-अड़तालीस बिल हैं वे भी असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं । उनकी 'श्रेणीबद्ध'

कान्तरेषु पंक्तिरहितत्वेन पुष्पप्रकरवत्कानिचित्संख्येययोजनविस्ताराणि कानिचिदसंख्येय-योजनविस्ताराणि यानि तिष्ठन्ति तेषां प्रकीर्णकसंज्ञा। इतीन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकरूपेण त्रिधा नरका भवन्ति। इत्यनेन क्रमेण प्रथमपटलव्याख्यानं विज्ञेयम्। तथैव पूर्वोक्तैकोनपञ्चाशत्पटलेष्वयमेव व्याख्यानक्रमः किन्त्वष्टकश्रेणिष्वेकैकपटलं प्रत्येकैकं हीयते यावत् सप्तमपृथिव्यां चतुर्दिग्भागेष्वेकं बिलं तिष्ठति।

रत्नप्रभादिनारकदेहोत्सेधः कथ्यते। प्रथमपटले हस्तत्रयं ततः क्रमवृद्धि-वशात्त्रयोदशपटले सप्तचापानि हस्तत्रयमङ्गुलषट्कं चेति। ततो द्वितीयपृथिव्या-दिषु चरमेन्द्रकेषु द्विगुणद्विगुणे क्रियमाणे सप्तमपृथिव्यां चापशतपञ्चकं भवति। उपरितने नरके य उत्कृष्टोत्सेधः सोऽधस्तने नरके विशेषाधिको जघन्यो भवति, तथैव पटलेषु च ज्ञातव्यः। आयुःप्रमाणं कथ्यते। प्रथमपृथिव्यां प्रथमे पटले जघन्येन दशवर्षसहस्राणि तत आगमोक्तक्रमवृद्धिवशादन्तपटले सर्वोत्कर्षेणैकसागरोपमम्। ततः

संज्ञा है। चार दिशा और चार विदिशाओंके बीच पंक्ति रहित बिखरे हुए फूलोंकी भांति कुछ संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन विस्तारवाले जो बिल हैं उनकी 'प्रकीर्णक' संज्ञा है। इस प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकरूप तीन प्रकारके नरक हैं। इस प्रकार प्रथम पटलका व्याख्यान जानना। उसी प्रकार पूर्वोक्त उनपचास पटलोंमें बिलोंके व्याख्यानका ऐसा ही क्रम है परंतु प्रत्येक पटलमें आठों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध बिलोंमें एक-एक बिल घटता जाता है अतः सातवीं पृथ्वीमें चारों दिशाओंमें एक-एक बिल हैं।

रत्नप्रभा आदि पृथ्वियोंके नारकियोंके शरीरकी ऊंचाईका कथन किया जाता है। प्रथम पटलमें तीन हाथकी ऊंचाई है, इसके पश्चात् क्रम-क्रमसे बढ़ते-बढ़ते तेरहवें पटलमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुलकी ऊंचाई है। इसके पश्चात् द्वितीय पृथ्वी आदिके अंतिम इन्द्रक बिलोंमें दुगना-दुगना करनेसे सातवीं पृथ्वीमें पांच सौ धनुष्यकी ऊंचाई होती है। ऊपरके नरकोंमें जो उत्कृष्ट ऊंचाई है उससे कुछ अधिक नीचेके नरकोंमें जघन्य ऊंचाई है, उसी प्रकार पटलोंमें भी जानना। नारकी जीवोंके आयुष्यका प्रमाण कहते हैं। प्रथम पृथ्वीके प्रथम पटलमें जघन्य दस हजार वर्षका आयुष्य है। तत्पश्चात् आगमकथित क्रमिक वृद्धि अनुसार अंतिम पटलमें एक सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुष्य है। तत्पश्चात् द्वितीय आदि पृथ्वियोंमें क्रमपूर्वक तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्तर सागर, बाईस सागर और

परं द्वितीयपृथिव्यादिषु क्रमेण त्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपममुत्कृष्ट-जीवितम् । यच्च प्रथमपृथिव्यामुत्कृष्टं तद्द्वितीयायां समयाधिकं जघन्यं, तथैव पटलेषु च । एवं सप्तमपृथिवीपर्यन्तं ज्ञातव्यम् । स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयविलक्षणै-स्तीव्रमिथ्यात्वदर्शनज्ञानचारित्रैः परिणतानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियसरटपक्षिसर्पसिंहस्त्रीणां क्रमेण रत्नप्रभादिषु षट्पृथिवीषु गमनशक्तिरस्ति सप्तम्यां तु कर्मभूमिजमनुष्याणां मत्स्या-नामेव । किञ्च—यदि कोऽपि निरन्तरं नरके गच्छति तदा पृथिवीक्रमेणाष्टसप्तषट्-पञ्चचतुस्त्रिद्विसंख्यवारानेव । किन्तु सप्तमनरकादागताः पुनरप्येकवारं तत्रान्यत्र वा नरके गच्छन्तीति नियमः । नरकादागता जीवा बलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवचक्रवर्ति-संज्ञाः शलाकापुरुषाः न भवन्ति । चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमनरकेभ्यः समागताः क्रमेण तीर्थंकरचरमदेहभावसंयतश्रावका न भवन्ति । तर्हि किं भवन्ति ? "णिरयादो णिस्सरिदो णरतिरिए कम्मसण्णिपज्जत्ते । गब्भभवे उप्पज्जदि सत्तमणिरयादु तिरिएव ॥१॥"

तेंतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुष्य प्रमाण है । पहली पृथ्वीमें जो उत्कृष्ट आयुष्य है उससे एक समय अधिक दूसरीमें जघन्य आयुष्य है, उसी प्रकार पहले पटलमें जो उत्कृष्ट आयुष्य है उससे एक समय अधिक दूसरे पटलमें जघन्य आयुष्य है । इसी प्रकार सातवीं पृथ्वी तक जानना । स्वशुद्धात्मके संवेदनरूप निश्चयरत्नत्रयसे विलक्षण तीव्र मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपसे परिणमित असंज्ञी पंचेन्द्रिय, 'गोह आदि, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्रियोंको क्रमपूर्वक रत्नप्रभा आदि छह पृथ्वियों तक जानेकी शक्ति है । सातवीं पृथ्वीमें कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य और मत्स्योंको ही जानेकी शक्ति है । विशेष—जो कोई जीव लगातार नरकमें जाये तो प्रथम पृथ्वी में आठ वार, द्वितीयमें सात वार, तीसरीमें छह बार, चौथीमें पांच बार, पांचवीमें चार वार, छट्टीमें तीन वार और सातवींमें दो वार ही जा सकता है । परंतु सातवें नरकमें से निकला हुआ जीव पुन: एक वार उसी अथवा दूसरे किसी नरकमें जाता है ऐसा नियम है । नरकमेंसे निकला हुआ जीव बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और चक्रवर्ती नामक शलाका पुरुष नहीं होता है । चौथे नरकमेंसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर, पांचवेंमेंसे निकला हुआ जीव चरम शरीरी, छट्ठेमेंसे निकला हुआ जीव भावलिंगी मुनि और सातवेंमेंसे निकला हुआ जीव श्रावक नहीं होता है । तो क्या होता है ? "[1]नरकमेंसे निकला हुआ जीव कर्मभूमिमें संज्ञी पर्याप्त तथा गर्भज मनुष्य अथवा तिर्यंच होता है । सातवें नरकमेंसे निकला हुआ जीव तिर्यंच ही होता है ।"

१–त्रिलोकसार गाथा–२०३

इदानीं नारकदुःखानि कथ्यन्ते । तद्यथा—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनोत्पन्ननिर्विकारपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादरहितैः पञ्चेन्द्रियविषयसुखास्वादलम्पटैर्मिथ्यादृष्टिजीवैर्यदुपार्जितं नरकायुर्नरकगत्यादिपापकर्म तदुदयेन नरके समुत्पद्य पृथिवीचतुष्टये तीव्रोष्णदुःखं, पञ्चम्यां पुनरुपरितनत्रिभागे तीव्रोष्णदुःखमधोभागे तीव्रशीतदुःखं, षष्ठीसप्तम्योरतिशीतोत्पन्नदुःखमनुभवन्ति । तथैव छेदनभेदनक्रकचविदारणयंत्रपीडनशूलारोहणादितीव्रदुःखं सहंते तथाचोक्तं—"अच्छिणिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं दुःखमेव अणुबद्धं । णिरये णेरयियाणं अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥ १ ॥" प्रथमपृथिवीत्रयपर्यंतमसुरोदीरितं चेति । एवं ज्ञात्वा, नारकदुःखविनाशार्थं भेदाभेदरत्नत्रयभावना कर्तव्या । संक्षेपेणाधोलोकव्याख्यानं ज्ञातव्यम् ।

अतः परं तिर्यक्लोकः कथ्यते—जम्बूद्वीपादिशुभनामानो द्वीपः लवणो

अब नारकियोंके दुःखका कथन करते है । वह इस प्रकार है—विशुद्ध ज्ञानदर्शन जिसका स्वभाव है ऐसे निज परमात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानकी भावनासे उत्पन्न निर्विकार परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादरहित और पांच इन्द्रियके विषय सुखके आस्वादमें लंपट ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा उपार्जित नरक-आयु और नरक-गति आदि पापकर्मके उदयसे वे नरकमें उत्पन्न होकर चार पृथ्वियोंमें तीव्र उष्णताका दुःख, पांचवीं पृथ्वीके ऊपरके तीन चौथाई भागमें तीव्र उष्णताका दुःख और नीचेके एक चतुर्थांश भागमें तीव्र शीतका दुःख तथा छट्ठी और सातवीं पृथ्वीमें अत्यन्त शीतसे उत्पन्न दुःखका अनुभव करते हैं; और छेदन, भेदन, करवत (तलवार)से विदारण, घानीमें पेलनेका, शूली पर चढ़ाने आदिका तीव्र दुःख सहन करते हैं । कहा है कि:—"[1]नरकमें नारकियोंको रात और दिवस दुःखरूपी अग्निमें जलते हुए आंखके टिमकारे जितना भी सुख नहीं है, परन्तु सदा दुःख ही लगा रहता है ॥१॥" पहली तीन पृथ्वियों तक असुरकुमार देवोंकी उदीरणा द्वारा उत्पन्न दुःख भी भोगते हैं—इस प्रकार जानकर नरकके दुःखका विनाश करनेके लिये भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना करना । इस प्रकार संक्षेपमें अधोलोकका व्याख्यान जानना ।

इसके पश्चात् मध्यलोकका वर्णन करते हैं:—गोल आकारवाले जंवूद्वीप आदि

१–त्रिलोकसार गाथा–२०७

दादिशुभनामानः समुद्राश्च द्विगुणद्विगुणविस्तारेण पूर्वं पूर्वं परिवेष्टय वृत्ताकाराः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यग्विस्तारेण विस्तीर्णास्तिष्ठन्ति यतस्तेन कारणेन तिर्यग् लोको भण्यते, मध्यलोकश्च । तद्यथा—तेषु सार्द्धतृतीयोद्धारसागरोपमलोमच्छेदप्रमितेष्वसंख्यातद्वीपसमुद्रेषु मध्ये जम्बूद्वीपस्तिष्ठति । स च जम्बूवृक्षोपलक्षितो मध्यभागस्थितमेरुपर्वतसहितो वृत्ताकारलक्षयोजनप्रमाणस्तद्द्विगुणविष्कम्भेण योजनलक्षद्वयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे लवणसमुद्रेण वेष्टितः । सोऽपि लवणसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनलक्षचतुष्टयप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे धातकीखण्डद्वीपेन वेष्टितः । सोऽपि धातकीखण्डद्वीपस्तद्द्विगुणविस्तारेण योजनाष्टलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे कालोदकसमुद्रेण वेष्टितः । सोऽपि कालोदकसमुद्रस्तद्द्विगुणविस्तारेण षोडशयोजनलक्षप्रमाणेन वृत्ताकारेण बहिर्भागे पुष्करद्वीपेन वेष्टितः । इत्यादिद्विगुणद्विगुणविष्कम्भः स्वयम्भूरमणद्वीपस्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तो ज्ञातव्यः । यथा जम्बूद्वीपलवणसमुद्रविष्कम्भद्वयसमुदायो-

---

शुभ नामवाले द्वीप और लवणादि शुभ नामवाले समुद्र दुगने-दुगने विस्तारसे पहले-पहलेके द्वीपको समुद्र और समुद्रको द्वीप—इस क्रमसे घेरे हुए और स्वयंभूरमण समुद्र तक तिर्यक् विस्तारमें फैले हुए हैं अतः उसे तिर्यक्लोक कहते हैं और मध्यलोक भी कहते हैं । वह इस प्रकार—उन साढ़े तीन (३½) उद्धार सागरोपम लोम (बाल)के टुकड़ों जितने असंख्यात द्वीप और समुद्रोंके मध्यमें जम्बूद्वीप है । वह जंबूके वृक्षसे उपलक्षित (पहचानमें आता है) और मध्यभागमें स्थित मेरु पर्वत सहित गोलाकार एक लाख योजनके विस्तारवाला है और वह दुगुने विस्तारवाले दो लाख योजन प्रमाण गोलाकार लवण समुद्र द्वारा बाहरके भागमें वेष्टित (घिरा हुआ) है । वह लवण समुद्र भी उससे दुगुने विस्तारवाले चार लाख योजन प्रमाण गोलाकार धातकीखंड नामक द्वीपसे बाहरके भागमें घिरा हुआ है । वह धातकीखंड द्वीप भी बाह्य भागमें अपनेसे दुगुने विस्तारवाले आठ लाख योजन-प्रमाण गोलाकार कालोदक समुद्रसे घिरा हुआ है । वह कालोदक समुद्र भी बाह्य भागमें अपनेसे दुगुने विस्तारवाले सोलह लाख योजन प्रमाण गोलाकार पुष्कर-द्वीपसे घिरा हुआ है । इस प्रकार दुगुना-दुगुना विस्तार स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र तक जानना । जिस प्रकार जंबूद्वीप एक लाख योजन और लवण समुद्र दो लाख योजन चौड़ा है, इन दोनोंका जोड़ तीन लाख योजन है । उससे एक लाख योजन अधिक अर्थात् चार लाख योजन धातकीखंड है । उसी प्रकार असंख्य द्वीप समुद्रोंके विस्तारसे एक लाख योजन अधिक विस्तार स्वयंभूरमण

जनलक्षत्रयप्रमितात्सकाशाद्धातकीखण्ड एकलक्षेणाधिकस्तथैवासंख्येयद्वीपसमुद्रविष्कम्भेभ्यः स्वयम्भूरमणसमुद्रविष्कम्भ एकलक्षेणाधिको ज्ञातव्यः । एवमुक्तलक्षणेष्वसंख्येयद्वीपसमुद्रेषु व्यन्तरदेवानां पर्वताद्युपरिगता आवासाः, अधोभूभागगतानि भवनानि तथैव द्वीपसमुद्रादिगतानि पुराणि च, परमागमोक्तभिन्नलक्षणानि । तथैव खरभागपङ्कभागस्थितप्रतरासंख्येयभागप्रमाणासंख्येयव्यन्तरदेवावासाः, तथैव द्वासप्ततिलक्षाधिककोटिसप्तप्रमितभवनवासिदेवसंबन्धिभवनानि अकृत्रिमजिनचैत्यालयसहितानि भवन्ति । एवमतिसंक्षेपेण तिर्यग्लोको व्याख्यातः ।

अथ तिर्यग्लोकमध्यस्थितो मनुष्यलोको व्याख्यायते—तन्मध्यस्थितजम्बूद्वीपे सप्तक्षेत्राणि भण्यन्ते । दक्षिणदिग्विभागादारभ्य भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतसंज्ञानि सप्तक्षेत्राणि भवन्ति । क्षेत्राणि कोऽर्थः ? वर्षा वंशा देशा जनपदा इत्यर्थः । तेषां क्षेत्राणां विभागकारकाः षट् कुलपर्वताः कथ्यन्ते—दक्षिणदिग्भागमादीकृत्य हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिसंज्ञा भरतादिसप्तक्षेत्राणामन्तरेषु पूर्वा-

---

समुद्रका जानना। ऐसे पूर्वोक्त लक्षणोंवाले असंख्य द्वीप-समुद्रोंमें पर्वत आदिके ऊपर व्यंतरदेवोंका आवास, नीचेकी पृथ्वीके भागमें भवन और द्वीप और समुद्र आदिमें पुर हैं। परमागममें कहे अनुसार उनके भिन्न-भिन्न लक्षण हैं। उसी प्रकार खरभाग और पंकभागमें स्थित प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्य व्यंतरदेवोंके आवास हैं और सात करोड़ वहत्तर लाख भवनवासी देवोंके भवन अकृत्रिम जिनचैत्यालय सहित हैं। इस प्रकार अत्यन्त संक्षेपमें मध्यलोकका व्याख्यान किया।

अब, तिर्यक्लोकके बीचमें स्थित मनुष्यलोकका व्याख्यान करते हैं। उस मनुष्यलोकके बीचमें स्थित जंबूद्वीपमें सात क्षेत्र कहे जाते हैं। दक्षिण दिशासे प्रारंभ करके भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरावत नामक सात क्षेत्र हैं। क्षेत्रका क्या अर्थ है? क्षेत्र शब्दका अर्थ वर्ष, वंश, देश अथवा जनपद है। उन क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले छह कुलाचल हैं। दक्षिण दिशाकी ओरसे प्रारंभ करके उनके नाम हिमवत्, महा हिमवत्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरि हैं। पूर्व-पश्चिम फैले हुए ये छह पर्वत भरतादि सात क्षेत्रोंके बीचमें (अन्तर भागमें) हैं। पर्वतका क्या अर्थ है? पर्वतका अर्थ वर्षधर पर्वत अथवा सीमा पर्वत है। उन पर्वतों पर ह्रदोंका क्रमसे कथन करते हैं। पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरि, महापुंडरीक और पुंडरीक नामक अकृत्रिम छह ह्रद हैं। ह्रद अर्थात् क्या? ह्रदका

परायताः षट् कुलपर्वताः भवन्ति। पर्वता इति कोऽर्थः? वर्षधरपर्वताः सीमापर्वता इत्यर्थः। तेषां पर्वतानामुपरि क्रमेण ह्रदा कथ्यन्ते। पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीक-पुण्डरीकसंज्ञा अकृत्रिमा षट् ह्रदा भवन्ति। ह्रदा इति कोऽर्थः? सरोवराणीत्यर्थः। तेभ्यः पद्मादिषड्ह्रदेभ्यः सकाशादागमकथितक्रमेण निर्गता याश्चतुर्दशमहानद्यस्ताः कथ्यन्ते। तथाहि—हिमवत्पर्वतस्थपद्मनाममहाह्रदादर्धक्रोशावगाहक्रोशाधिकषट्योजन[1] प्रमाणविस्तारपूर्वतोरणद्वारेण निर्गत्य तत्पर्वतस्यैवोपरि पूर्वदिग्विभागेन योजनशतपञ्चकम् गच्छति ततो गङ्गाकूटसमीपे दक्षिणेन व्यावृत्य भूमिस्थकुण्डे पतति तस्माद् दक्षिणद्वारेण निर्गत्य भरतक्षेत्रमध्यभागस्थितस्य दीर्घत्वेन पूर्वापरसमुद्रस्पर्शिनो विजयार्द्धस्य गुहा-द्वारेण निर्गत्य, तत आर्यखण्डार्द्धभागे पूर्वेण व्यावृत्य प्रथमावगाहापेक्षया दशगुणेन गव्यूतिपञ्चकावगाहेन तथैव प्रथमविष्कम्भापेक्षया दशगुणेन योजनार्द्धसहितद्विषष्टियोजन-प्रमाणविस्तारेण च पूर्वसमुद्रे प्रविष्टा गङ्गा। तथा गङ्गावत्सिन्धुरपि तस्मादेव हिम-वत्पर्वतस्थपद्मह्रदात्पर्वतस्यैवोपरि पश्चिमद्वारेण निर्गत्य पश्चाद्दक्षिणदिग्विभागेनागत्य विजयार्द्धगुहाद्वारेण निर्गत्यार्यखण्डार्द्धभागे पश्चिमेन व्यावृत्य पश्चिमसमुद्रे प्रविष्टेति।

अर्थ सरोवर है। उन पद्मादि छह सरोवरोंमेंसे आगमकथित क्रम प्रमाणसे जो चौदह महा नदियां निकली हैं उनका कथन करते हैं। वह इस प्रकार—हिमवत् पर्वत पर स्थित पद्म नामक महाह्रदके पूर्व तोरण द्वारसे आधा कोश गहरी और छह योजन एक कोश चौड़ी गंगा नदी निकलकर उसी पर्वतके ऊपर पूर्व दिशामें पांच सौ योजन तक जाती है, तत्पश्चात् वहांसे गंगाकूटके समीप दक्षिणकी ओर मुड़कर भूमिमें स्थित कुंडमें पडती है। वहांसे दक्षिण द्वारमेंसे निकलकर भरतक्षेत्रके मध्यभागमें स्थित लंबाईमें पूर्व-पश्चिम समुद्रको स्पर्श करनेवाले विजयार्ध पर्वतकी गुफाके द्वारमेंसे निकलकर आर्यखंडके आधेभागमें पूर्वकी ओर मुड़कर प्रथम गहराईसे दशगुणी अर्थात् पांच कोश गहरी और प्रथम चौड़ाईसे दशगुणी अर्थात् साढ़े बासठ योजन चौड़ी गंगानदी पूर्व समुद्रमें प्रवेश करती है। इस गंगाकी भांति सिंधुनदी भी उसी हिमवत् पर स्थित पद्मह्रदमेंसे पर्वतके ऊपर ही पश्चिम द्वारमेंसे निकल-कर तत्पश्चात् दक्षिण दिशाकी ओर आकर विजयार्ध पर्वतकी गुफाके द्वारमेंसे निकलकर आर्यखंडके आधे भागमें पश्चिमकी ओर मुड़कर पश्चिम समुद्रमें प्रवेश करती है। इस प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर आई हुई गंगा और सिंधु—दो नदियोंसे

१—'क्रोशार्धाधिक षट् योजन' इति पाठान्तर

एवं दक्षिणदिग्विभागसमागतगङ्गासिन्धुभ्यां पूर्वापरायतेन विजयार्द्धपर्वतेन च षट्खण्डीकृतं भरतक्षेत्रम् ।

अथ महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्महृदाद्दक्षिणदिग्विभागेन हैमवतक्षेत्रमध्ये समागत्य तत्रस्थनाभिगिरिपर्वतं योजनार्द्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धे प्रदक्षिणं कृत्वा रोहित्पूर्वसमुद्रम् गता । तथैव हिमवत्पर्वतस्थितपद्महृदादुत्तरेणागत्य तमेव नाभिगिरिं योजनार्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्द्धप्रदक्षिणं कृत्वा रोहितास्या पश्चिमसमुद्रं गता । इति रोहिद्रोहितास्यासंज्ञं नदीद्वन्द्वं हैमवतसंज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम् । अथ निषधपर्वतस्थिततिगिञ्छनामहृदाद्दक्षिणेनागत्य नाभिगिरिपर्वतं योजनार्धेनास्पृशंती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं कृत्वा हरित्पूर्वसमुद्रम् गता । तथैव महाहिमवत्पर्वतस्थमहापद्मनामहृदादुत्तरदिग्विभागेनागत्य तमेव नाभिगिरिं योजनार्धेनास्पृशन्ती तस्यैवार्धप्रदक्षिणं कृत्वा हरिकान्तानामनदी पश्चिमसमुद्रम् गता । इति हरिद्धरिकांतासंज्ञं नदीद्वयं हरिसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे विज्ञेयम् । अथ नीलपर्वतस्थितकेसरिनामहृदाद्दक्षिणेनागत्योत्तरकुरुसंज्ञोत्कृष्टभोगभूमि-

---

और पूर्व-पश्चिम विस्तरित विजयार्ध पर्वतसे भरतक्षेत्रके छह खंड हुए ।

अब महाहिमवान पर्वत पर स्थित महापद्म सरोवरकी दक्षिण दिशामेंसे हैमवत क्षेत्रके मध्यमेंसे आकर वहां स्थित नाभिगिरि पर्वतसे आधे योजन दूर रहकर उसी पर्वतकी आधी प्रदक्षिणा करके रोहित नामक नदी पूर्व समुद्रमें गई है । इसी प्रकार हिमवत् पर्वत् ऊपर स्थित पद्म सरोवरमेंसे उत्तरकी ओर आकर उसी नाभिगिरि पर्वतसे आधे योजन दूर रहती हुई उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके रोहितास्या नामक नदी पश्चिम समुद्रमें गई है । इस प्रकार रोहित और रोहितास्या नामक दो नदियां हैमवत नामक जघन्य भोगभूमिके क्षेत्रमें जानना । निषध पर्वत पर स्थित तिगिंछ नामक ह्रदमेंसे दक्षिणकी ओर आकर नाभिगिरि पर्वतसे आधा योजन दूर रहकर उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके हरित् नामक नदी पूर्व समुद्रमें गई है । उसी प्रकार महा हिमवान पर्वत पर स्थित महापद्म नामक ह्रदमेंसे उत्तर दिशाकी ओर आकर उसी नाभिगिरिसे आधा योजन दूर रहकर उसीकी आधी प्रदक्षिणा करके हरिकान्ता नामक नदी पश्चिम समुद्रमें गई है । इस प्रकार हरित और हरिकान्ता नामक दो नदियां हरि नामक मध्यम भोगभूमि क्षेत्रमें जानना । नील पर्वतस्थित केसरि नामक सरोवरमेंसे दक्षिणकी ओर आकर उत्तरकुरु नामक उत्कृष्ट भोगभूमिके क्षेत्रके मध्यमें जाकर मेरुके पास गजदंत पर्वतको भेदकर, मेरुकी प्रदक्षिणासे आधा

क्षेत्रे मध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्तपर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पूर्वभद्रशालवनस्य मध्येन पूर्वविदेहस्य च मध्येन शीतानामनदी पूर्वसमुद्रं गता। तथैव निषधपर्वतस्थिततिगिञ्छह्रदादुत्तरदिग्विभागेनागत्य देवकुरुसंज्ञोत्तमभोगभूमिक्षेत्र-मध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्तपर्वतं भित्वा च प्रदक्षिणेन योजनार्धेन मेरुं विहाय पश्चिमभद्रशालवनस्य मध्येन पश्चिमविदेहस्य च मध्येन शीतोदा पश्चिमसमुद्रं गता। एवं शीताशीतोदासंज्ञं नदीद्वयं विदेहाभिधाने कर्मभूमिक्षेत्रे ज्ञातव्यम्। यत्पूर्वं गङ्गा-सिन्धुनदीद्वयस्य विस्तारावगाहप्रमाणं भणितं तदेव क्षेत्रे क्षेत्रे नदीयुगलं प्रति विदेहपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं ज्ञातव्यम्। अथ गङ्गा चतुर्दशसहस्रपरिवारनदीसहिता, सिन्धुरपि तथा, तद्द्विगुणसंख्यानं रोहिद्रोहितास्याद्वयम्, ततोऽपि द्विगुणसंख्यानं हरिद्धरिकान्ताद्वयम्, तद्द्विगुणं शीताशीतोदाद्वयमिति। तथा षड्विंशत्यधिकयोजनशतपञ्चकमेकोनविंशति भागीकृतैकयोजनस्य भागषट्कं च यद्दक्षिणोत्तरेण कर्मभूमिसंज्ञभरतक्षेत्रस्य विष्कम्भ-प्रमाणं, तद्द्विगुणं हिमवत्पर्वते, तस्माद्द्विगुणं हैमवतक्षेत्रे, इत्यादि द्विगुणं द्विगुणं विदेहपर्यन्तं ज्ञातव्यम्। तथा पद्मह्रदो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो दशयोजना-

---

योजन दूर रहकर पूर्व भद्रशाल वन और पूर्व विदेहके मध्यमें होकर शीता नामक नदी पूर्व समुद्रमें गई है। उसी प्रकार निषध पर्वत पर स्थित तिगिंछ नामक सरोवरमेंसे उत्तरकी ओर आकर देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमि क्षेत्रके मध्य होकर मेरुके समीप गजदंत पर्वतको भेदकर और मेरुकी प्रदक्षिणासे आधा योजन दूर रह-कर, पश्चिम भद्रशाल वन और पश्चिम विदेहके मध्यमें होकर शीतोदा नामक नदी पश्चिम समुद्रमें गई है। उसी प्रकार शीता और शीतोदा नामक दो नदियां विदेह नामक कर्मभूमिके क्षेत्रमें जानना। पहले गंगा और सिंधु इन दो नदियोंका जो विस्तार और अवगाहका प्रमाण कहा है उससे दुगुने-दुगुने विस्तार आदि प्रत्येक क्षेत्रमें दो-दो नदियोंके विदेह क्षेत्र पर्यंत जानना। गंगा नदी चौदह हजार परिवार नदियों सहित है, सिन्धु भी इतनी ही नदियों सहित है, उससे दुगुनी संख्याके परि-वारवाली रोहित और रोहितास्या ये दो नदियां हैं, हरित् और हरिकान्ताका इनसे भी दुगुना विस्तार है, उनसे दुगुना विस्तार शीता और शीतोदाका है। दक्षिणसे उत्तर पांच सौ छब्बीस और एक योजनके उन्नीस भागोंमेंसे छह भाग सहित कर्म-भूमि भरत क्षेत्रका विस्तार है, उससे दुगुना हिमवत् पर्वतका, हिमवत् पर्वतसे दुगुना हैमवत क्षेत्रका, इसी प्रकार दुगना-दुगना विस्तार विदेह क्षेत्र पर्यंत जानना।

वगाहो योजनैकप्रमाणपद्मविष्कम्भस्तस्मान्महापद्मे द्विगुणस्तस्मादपि तिगिंछे द्विगुण इति ।

अथ यथा भरते हिमवत्पर्वतान्निर्गतं गङ्गासिन्धुद्वयं, तथोत्तरे कर्मभूमिसंज्ञैरावतक्षेत्रे शिखरिपर्वतान्निर्गतं रक्तारक्तोदानदीद्वयम् । यथा च हैमवतसंज्ञे जघन्यभोगभूमिक्षेत्रे महाहिमवद्धिमवन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं रोहितरोहितास्यानदीद्वयं, तथोत्तरे हैरण्यवतसंज्ञजघन्यभोगभूमिक्षेत्रे शिखरिरुक्मिसंज्ञपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं सुवर्णकूलारूप्यकूलानदीद्वयम् । तथैव यथा हरिसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे निषधमहाहिमवन्नामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं हरिद्धरिकान्तानदीद्वयं, तथोत्तरे रम्यकसंज्ञमध्यमभोगभूमिक्षेत्रे रुक्मिनीलनामपर्वतद्वयात्क्रमेण निर्गतं नारीनरकान्तानदीद्वयमिति विज्ञेयम् । सुषमसुषमादिषट्कालसंबंधिपरमागमोक्तायुरुत्सेधादिसहिता दशसागरोपमकोटिप्रमितावसर्पिणी तथोत्सर्पिणी च यथा भरते वर्त्तते तथैवैरावते च । अयन्तु

पद्म ह्रद एक हजार योजन लम्बा, उससे आधा चौड़ा और दश योजन गहरा है, उसमें एक योजनका कमल है, उससे दुगुना महापद्ममें और उससे दुगुना तिगिंछ सरोवर में है ।

जिसप्रकार भरतक्षेत्रमें हिमवान पर्वतमेंसे गंगा और सिंधु—ये दो नदियां निकलती हैं, उसी प्रकार उत्तर दिशामें ऐरावत क्षेत्र नामक कर्मभूमिके शिखरि पर्वतमेंसे रक्ता और रक्तोदा नामक दो नदियां निकलती हैं । जिस प्रकार हैमवत नामक जघन्य भोगभूमिके क्षेत्रमें महा हिमवत् और हिमवत् नामक दो पर्वतोंमेंसे क्रमशः निकलती रोहित और रोहितास्या ये दो नदियां हैं, उसी प्रकार उत्तरमें हैरण्यवत् नामक जघन्य भोगभूमि क्षेत्रमें शिखरि और रुक्मि नामक पर्वतोंमेंसे क्रमपूर्वक निकलती सुवर्णकूला और रूप्यकूला—ये दो नदियां हैं । जिस प्रकार हरि नामक मध्यम भोगभूमि क्षेत्रमें निषध और महा हिमवान नामक दो पर्वतोंमेंसे क्रमशः निकलती हरित और हरिकांता नामक दो नदियां हैं, उसी प्रकार उत्तरमें रम्यक् नामक मध्यम भोगभूमिके क्षेत्रमें रुक्मि और नील नामक दो पर्वतोंमेंसे क्रमपूर्वक निकलती नारी और नरकांता—दो नदियां जानना । सुषम सुषमादि छह काल संबंधी परमागममें कहे अनुसार आयुष्य शरीरकी ऊंचाई आदि सहित दस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी काल जैसा भरतमें वर्तता है वैसा ही ऐरावत क्षेत्रमें वर्तता है । इतना विशेष है कि भरत और ऐरावतके म्लेच्छखंडोंमें और विजयार्ध पर्वतमें चौथे कालके

विशेषः, भरतैरावतम्लेच्छखण्डेषु विजयार्धनगेषु च चतुर्थकालसमयाद्यन्ततुल्यकालोऽस्ति नापरः । किं बहुना, यथा खट्वाया एकभागे ज्ञाते द्वितीयभागस्तथैव ज्ञायते तथैव जम्बूद्वीपस्य क्षेत्रपर्वतनदीह्रदादीनां यदेव दक्षिणविभागे व्याख्यानं तदुत्तरेऽपि विज्ञेयम् ।

अथ देहममत्वमूलभूतमिथ्यात्वरागादिविभावरहिते केवलज्ञानदर्शनसुखाद्यनन्तगुणसहिते च निजपरमात्मद्रव्ये यथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभावनया कृत्वा विगतदेहा देहरहिताः सन्तो मुनयः प्राचुर्येण यत्र मोक्षं गच्छन्ति स विदेहो भण्यते । तस्य जम्बूद्वीपस्य मध्यवर्त्तिनः किमपि विवरणं क्रियते । तद्यथा—नवनवतिसहस्रयोजनोत्सेध एकसहस्रावगाह आदौ भूमितले दशयोजनसहस्रवृत्तविस्तार उपर्युपरि पुनरेकादशांशहानिक्रमेण हीयमानत्वे सति मस्तके योजनसहस्रविस्तार आगमोक्ताकृत्रिमचैत्यालयदेववनदेवावासाद्यागमकथितानेकाश्चर्यसहितो विदेहक्षेत्रमध्ये महामेरुर्नाम पर्वतोस्ति । स च गजो जातस्तस्मान्मेरुगजात्सकाशादुत्तरमुखे दन्तद्वयाकारेण यन्निर्गतं

आदि और अंत जैसा काल वर्तता है, अन्य काल नहीं होता है । विशेष क्या कहना ? जिस प्रकार खाटका एक भाग जान लेने पर उसका दूसरा भाग वैसा ही होता है इस प्रकार जान लिया जाता है उसी प्रकार जंबूद्वीपके क्षेत्र, पर्वत, नदी, सरोवर आदिका जो दक्षिण दिशा संबंधी व्याख्यान है वही उत्तर दिशा संबंधी भी जानना ।

अब शरीरके ममत्वके कारणरूप मिथ्यात्व और रागादि विभावोंसे रहित और केवलज्ञान, केवलदर्शन, सुखादि अनंतगुण सहित निज परमात्मद्रव्यमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भावना करके मुनि जहांसे विगतदेह अर्थात् देहरहित होकर प्रचुररूपसे (अधिक संख्यामें) मोक्ष प्राप्त करते हैं उसे विदेहक्षेत्र कहते हैं । उस जंबूद्वीपके मध्यमें स्थित विदेहक्षेत्रका कुछ वर्णन करते हैं । वह इस प्रकार है—निन्यानवें हजार योजन ऊंचा, एक हजार योजन गहरा और प्रारंभमें भूमितल ऊपर दस हजार योजन गोल विस्तारवाला तथा ऊपर-ऊपर ग्यारहवें भागकी हानिक्रमसे घटते-घटते शिखर ऊपर एक हजार योजनके विस्तारवाला आगमकथित अकृत्रिम चैत्यालय, देववन तथा देवोंके आवास आदि शास्त्रमें कहे हुए अनेक आश्चर्य सहित महामेरु नामक पर्वत विदेहके मध्यमें है । वह मानों हाथी हो इस प्रकार उस मेरुपर्वतरूपी हाथीमेंसे उत्तर दिशामें दो दांतके आकारवाले दो पर्वत निकले हैं, उनका नाम 'दो—गजदंत' हैं, वे उत्तर भागमें जो नीलपर्वत है उसमें

पर्वतद्वयं तस्य गजदन्तद्वयसंज्ञेति, तथोत्तरे भागे नीलपर्वते लग्नं तिष्ठति। तयोर्मध्ये यत्त्रिकोणाकारक्षेत्रमुत्तमभोगभूमिरूपं तस्योत्तरकुरुसंज्ञा। तस्य च मध्ये मेरोरीशानदिग्विभागे शीतानीलपर्वतयोर्मध्ये परमागमवर्णितानाद्यकृत्रिमपार्थिवो जम्बूवृक्षस्तिष्ठति। तस्या एव शीताया उभयतटे यमकगिरिसंज्ञं पर्वतद्वयं विज्ञेयम्। तस्मात्पर्वतद्वयाद्दक्षिणभागे कियन्तमध्वानं गत्वा शीतानदीमध्ये अन्तरान्तरेण पद्मादिह्रदपञ्चकमस्ति। तेषां ह्रदानामुभयपार्श्वयोः प्रत्येकं सुवर्णरत्नमयजिनगृहमण्डिता लोकानुयोगव्याख्यानेन दश दश सुवर्णपर्वता भवन्ति। तथैव निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकोत्तमपात्रपरमभक्तिदत्ताहारदानफलेनोत्पन्नानां तिर्यग्मनुष्याणां स्वशुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादविलक्षणस्य चक्रवर्त्तिभोगसुखादप्यधिकस्य विविधपञ्चेन्द्रियभोगसुखस्य प्रदायका ज्योतिर्गृहप्रदीपतूर्यभोजनवस्त्रमाल्यभाजनभूषणरागमदोत्पादकरसांगसंज्ञा दशप्रकारकल्पवृक्षाः भोगभूमिक्षेत्रं व्याप्य तिष्ठन्तीत्यादिपरमागमोक्तप्रकारेणानेकाश्चर्याणि ज्ञातव्यानि। तस्मादेव मेरुगजाद्दक्षिणदिग्विभागेन गजदन्तद्वयमध्ये

जुड़े हुए हैं। उस दो-गजदंत पर्वतके मध्य जो त्रिकोणाकार उत्तम भोगभूमिरूप क्षेत्र है उसका नाम 'उत्तरकुरु' है। उसके मध्यमें मेरु पर्वतकी ईशान दिशामें शीता नदी और नील पर्वतके बीचमें परमागममें वर्णित अनादि-अकृत्रिम, पृथ्वीकायिक जंबूवृक्ष है। उसी शीता नदीके दोनों किनारोंके ऊपर यमकगिरि नामक दो पर्वत जानना। उन दो पर्वतोंसे दक्षिण दिशामें थोड़ी दूर जाने पर शीता नदीके मध्य थोड़े-थोड़े अंतरसे पद्म आदि पांच ह्रद हैं। उन ह्रदोंके दोनों पार्श्वोंमें लोकानुयोगके व्याख्यान अनुसार, सुवर्ण और रत्नमय जिन चैत्यालयोंसे शोभित दस-दस सुवर्ण पर्वत हैं। इसी प्रकार निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयके आराधक उत्तम पात्रोंको परम भक्तिसे दिये हुए आहारदानके फलसे उत्पन्न तिर्यंच और मनुष्योंको चक्रवर्तीके भोगसुखसे भी अधिक ऐसा, विविध प्रकारका पंचेन्द्रियसबंधी भोगोंका सुख—कि जो (भोगसुख) स्वशुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न, निर्विकार, सदा आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादसे विलक्षण है ऐसा भोगसुख–देनेवाले ज्योतिरंग, गृहांग, दीपांग, तूर्यांग, भोजनांग, वस्त्रांग, माल्यांग, भाजनांग, भूषणांग और राग तथा मद उत्पन्न करनेवाले रसांग नामक दस प्रकारके कल्पवृक्ष भोगभूमिके क्षेत्रमें स्थित हैं। इत्यादि परमागम कथित प्रकारसे अनेक आश्चर्य जानना। उसी मेरुगजमेंसे दक्षिण दिशामें जो 'दो-गजदंत' है उसके बीचमें देवकुरु नामक

देवकुरुसंज्ञमुत्तमभोगभूमिक्षेत्रमुत्तरकुरुवद्विज्ञेयम् ।

तस्मादेव मेरुपर्वतात्पूर्वस्यां दिशि पूर्वापरेण द्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भं सवेदिकं भद्रशालवनमस्ति । तस्मात्पूर्वदिग्भागे कर्मभूमिसंज्ञः पूर्वविदेहोऽस्ति । तत्र नीलकुलपर्वताद्दक्षिणभागे शीतानद्या उत्तरभागे मेरोः प्रदक्षिणेन यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागः कथ्यते । तथाहि—मेरोः पूर्वदिशाभागे या पूर्वभद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पूर्वदिग्भागे प्रथमं क्षेत्रं भवति, तदनन्तरं दक्षिणोत्तरायतो वक्षारनामा पर्वतो भवति, तदनन्तरं क्षेत्रं तिष्ठति, ततोऽप्यनन्तरं विभङ्गा नदी भवति, ततोऽपि क्षेत्रं, तस्मादपि वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, ततश्च क्षेत्रं, ततोऽपि विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततः परं वक्षारपर्वतोऽस्ति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पूर्वसमुद्रसमीपे यद्देवारण्यं तस्य वेदिका चेति नवभित्तिभिरष्टक्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—कच्छा १, सुकच्छा २, महाकच्छा ३, कच्छावती ४, आवर्त्ता ५, लाङ्गलावर्त्ता ६, पुष्कला ७, पुष्कलावती ८ चेति । इदानीं क्षेत्रमध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—क्षेमा १, क्षेमपुरी २, रिष्टा ३, रिष्टपुरी ४, खड्गा ५, मञ्जूषा ६, औषधी ७, पुण्डरीकिणी ८ चेति ।

उत्तम भोगभूमिका क्षेत्र उत्तरकुरुकी भांति जानना ।

उसी मेरु पर्वतकी पूर्व दिशामें पूर्व-पश्चिम बाईस हजार योजनके विस्तारवाला वेदीसहित भद्रशाल वन है । उससे पूर्व दिशामें कर्म-भूमि नामक पूर्व विदेह है । वहां नील नामक कुलाचलकी दक्षिण दिशामें और शीता नदीके उत्तरमें मेरुकी प्रदक्षिणामें जो क्षेत्र हैं उनके विभागोंका कथन किया जाता है । वह इस प्रकार है—मेरुकी पूर्व दिशामें जो पूर्व भद्रशाल वनकी वेदिका है उसकी पूर्व दिशामें प्रथम क्षेत्र है, तत्पश्चात् दक्षिण-उत्तर लंबा वक्षार नामक पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, उससे आगे क्षेत्र है, उससे आगे वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् भी विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, फिर विभंगा नदी है, फिर क्षेत्र है, फिर वक्षार पर्वत है, फिर क्षेत्र है, तत्पश्चात् पूर्व समुद्रके समीप देवारण्य नामक वनकी वेदिका है, इस प्रकार नौ भित्तियोंके द्वारा आठ क्षेत्र जानना । उनके क्रमपूर्वक नाम कहे जाते हैं—कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छावती, आवर्त्ता, लांगलावर्त्ता, पुष्कला, पुष्कलावती ।

अब क्षेत्रोंके मध्यमें जो नगरियां हैं उनके नाम कहते हैं : क्षेमा, क्षेमपुरी, रिष्टा, रिष्टपुरी, खड्गा, मंजूषा, औषधी और पुण्डरीकिणी ।

अत ऊर्ध्वं शीताया दक्षिणविभागे निषधपर्वतादुत्तरविभागे यान्यष्टक्षेत्राणि तानि कथ्यन्ते । तद्यथा—पूर्वोक्ता या देवारण्यवेदिका तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रमस्ति, तदनन्तरं वक्षारपर्वतस्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, तस्माद्वक्षारपर्वतस्ततश्च क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतः, ततः क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो मेरुदिग्भागे पूर्वभद्रशालवनवेदिका भवतीति नवभित्तिमध्येऽष्टौ क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । इदानीं तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—वच्छा १, सुवच्छा २, महावच्छा ३, वच्छावती ४, रम्या ५, रम्यका ६, रमणीया ७, मङ्गलावती ८ चेति । इदानीं तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—सुसीमा १, कुण्डला २, अपराजिता ३, प्रभाकरी ४, अङ्का ५, पद्मा ६, शुभा ७, रत्नसंचया ८ चेति, इति पूर्वविदेहक्षेत्रविभागव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ मेरोः पश्चिमदिग्भागे पूर्वापरद्वाविंशतिसहस्रयोजनविष्कम्भो पश्चिमभद्रशालवनानन्तरं पश्चिमविदेहस्तिष्ठति । तत्र निषधपर्वतादुत्तरविभागे शीतोदानद्या-

---

इसके पश्चात् शीता नदीकी दक्षिण दिशामें निषध पर्वतके उत्तरमें जो आठ क्षेत्र हैं उनका कथन करते हैं । वह इस प्रकार—पूर्वोक्त जो देवारण्यकी वेदिका है उसके पश्चिममें क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् मेरुकी पूर्व दिशाके पूर्वभद्रशाल वनकी वेदी है । इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र जानना ।

अब उनके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं—वच्छा, सुवच्छा, महावच्छा, वच्छावती, रम्या, रम्यका, रमणीया और मंगलावती ।

अब उनके मध्यमें स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं:—सुसीमा, कुंडला, अपराजिता, प्रभाकरी, अंका, पद्मा, शुभा और रत्नसंचया । इस प्रकार पूर्वविदेहक्षेत्रके विभागोंका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अब मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें पूर्व-पश्चिम बाईस हजार योजन लंबे पश्चिम भद्रशाल वनके पश्चात् पश्चिम विदेहक्षेत्र है, वहां निषध पर्वतके उत्तरमें और शीतोदा नदीके दक्षिणमें जो क्षेत्र हैं उनके विभाग कहते हैं—मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें

दक्षिणभागे यानि क्षेत्राणि तेषां विभाग उच्यते। तथाहि—मेरुदिग्भागे या पश्चिम-भद्रशालवनवेदिका तिष्ठति तस्याः पश्चिमभागे क्षेत्रं भवति, ततो दक्षिणोत्तरायतो वक्षारपर्वतस्तिष्ठति, तदनन्तरं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततश्च क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वत-स्ततः परं क्षेत्रं, ततो विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततः विभङ्गा नदी, ततः क्षेत्रं, ततः वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, तदनन्तरं पश्चिमसमुद्रे समीपे यद्भूतारण्यवनं तिष्ठति तस्य वेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति। तेषां नामानि कथ्यन्ते—पद्मा १, सुपद्मा २, महापद्मा ३, पद्मकावती ४, शंखा ५, नलिना ६, कुमुदा ७, सलिला ८ चेति। तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथयन्ति—अश्वपुरी १, सिंहपुरी २, महापुरी ३, विजयापुरी ४, अरजापुरी ५, विरजापुरी ६, अशोकापुरी ७, विशोकापुरी ८ चेति।

अत ऊर्ध्वं शीतोदया उत्तरभागे नीलकुलपर्वताद्दक्षिणे भागे यानि क्षेत्राणि तिष्ठन्ति तेषां विभागभेदं कथयति। पूर्वभणिता या भूतारण्यवनवेदिका तस्याः पूर्व-भागे क्षेत्रं भवति। तदनंतरं वक्षारपर्वतस्तदनंतरं क्षेत्रं, ततो विभंगा नदी, ततः क्षेत्रं, ततो वक्षारपर्वतः, ततश्च क्षेत्रं, ततश्च विभंगा नदी, ततोऽपि क्षेत्रं, ततो वक्षार-

---

जो पश्चिम भद्रशाल वनकी वेदिका है उसके पश्चिममें क्षेत्र है, तत्पश्चात् दक्षिणसे उत्तर लंवा वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् पश्चिम समुद्रके समीप जो भूतारण्य नामक वन है उसकी वेदिका है। इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र हैं। उनके नाम कहते हैं—पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखा, नलिना,कुमुदा, सलिला। उनके मध्य स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं–अश्वपुरी, सिंह-पुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजापुरी, विरजापुरी, अशोकापुरी और विशोकापुरी।

अव शीतोदाके उत्तरमें और नीलकुलाचलके दक्षिणमें जो क्षेत्र हैं उनके विभाग भेदका कथन करते हैं। पूर्व कथित जो भूतारण्य वन-वेदिका है उसके पूर्वमें क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात्

पर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो विभंगा नदी, ततः क्षेत्रं, ततश्च वक्षारपर्वतस्ततः क्षेत्रं, ततो मेरुदिशाभागे पश्चिमभद्रशालवनवेदिका चेति नवभित्तिषु मध्येऽष्टौ क्षेत्राणि भवन्ति। तेषां क्रमेण नामानि कथ्यन्ते—वप्रा १, सुवप्रा २, महावप्रा ३, वप्रकावती ४, गन्धा ५, सुगन्धा ६, गन्धिला ७. गन्धमालिनी ८ चेति। तन्मध्यस्थितनगरीणां नामानि कथ्यन्ते—विजया १, वैजयंती २, जयंती ३, अपराजिता ४, चक्रपुरी ५, खड्गपुरी ६, अयोध्या ७, अवध्या ८ चेति।

अथ यथा—भरतक्षेत्रेगङ्गासिंधुनदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च म्लेच्छखण्डपञ्चकमार्यखण्डं चेति षट् खण्डानि जातानि। तथैव तेषु द्वात्रिंशत्क्षेत्रेषु गङ्गासिंधुसमाननदीद्वयेन विजयार्धपर्वतेन च प्रत्येकं षट् खण्डानि ज्ञातव्यानि। अयं तु विशेषः। एतेषु क्षेत्रेषु सर्वदैव चतुर्थकालादिसमानकालः। उत्कर्षेणं पूर्वकोटिजीवितं, पञ्चशतचापोत्सेधश्चेति विज्ञेयम्। पूर्वप्रमाणं कथ्यते। "पुव्वस्स हु परिमाणं सदरिं खलु सदसहस्सकोडीओ। छप्पण्णं च सहस्सा बोधव्वा वासगणनाओ ॥ १ ॥" इति संक्षेपेण जम्बूद्वीपव्याख्यानं समाप्तम्।

विभंगा नदी है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् वक्षार पर्वत है, तत्पश्चात् क्षेत्र है, तत्पश्चात् मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें पश्चिम भद्रशाल वनकी वेदिका है। इस प्रकार नौ भित्तियोंके मध्य आठ क्षेत्र हैं। उनके क्रमसे नाम कहते हैं—वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गंधा, सुगंधा, गंधिला, गंधमालिनी। उनके मध्यमें स्थित नगरियोंके नाम कहते हैं—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या।

अब, जिस प्रकार भरतक्षेत्रमें गंगा और सिंधु इन दो नदियोंसे तथा विजयार्ध पर्वतसे पांच म्लेच्छ खंड और एक आर्य खंड इस प्रकार छः खण्ड हुए उसी प्रकार पूर्वोक्त बत्तीस विदेह क्षेत्रोंमें गंगा और सिंधु जैसी दो नदियों और विजयार्ध पर्वतसे प्रत्येक क्षेत्रके छः खण्ड जानना। विशेष यह है कि इन सब क्षेत्रोंमें सदा चौथेकालकी आदि जैसा काल रहता है। वहां उत्कृष्ट आयुष्य करोड़ पूर्व है और शरीरकी ऊंचाई पांच सौ धनुष्य है। पूर्वका माप कहते हैं—"पूर्वका प्रमाण सत्तर लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना।"

इस प्रकार संक्षेपमें जंबूद्वीपका व्याख्यान समाप्त हुआ।

तदनन्तरं यथा सर्वद्वीपेषु सर्वसमुद्रेषु च द्वीपसमुद्रमर्यादाकारिका योजनाष्टकोत्सेधा वज्रवेदिकास्ति तथा जम्बूद्वीपेप्यस्तीति विज्ञेयम्। यद्बहिर्भागे योजनलक्षद्वयवलयविष्कम्भ आगमकथितषोडशसहस्रयोजनजलोत्सेधाद्यनेकाश्चर्य सहितो लवणसमुद्रोऽस्ति। तस्मादपि बहिर्भागे योजनलक्षचतुष्टयवलयविष्कम्भो धातकीखण्डद्वीपोऽस्ति। तत्र च दक्षिणभागे लवणोदधिकालोदधिसमुद्रद्वयवेदिकास्पर्शी दक्षिणोत्तरायामः सहस्रयोजनविष्कम्भः शतचतुष्टयोत्सेध इक्ष्वाकारनामपर्वतः अस्ति। तथोत्तरविभागेऽपि। तेन पर्वतद्वयेन खण्डीकृतं पूर्वापरधातकीखण्डद्वयं ज्ञातव्यम्। तत्र पूर्वधातकीखण्डद्वीपमध्ये चतुरशीतिसहस्रयोजनोत्सेधः सहस्रयोजनावगाहः क्षुल्लकमेरुरस्ति। तथा पश्चिमधातकीखण्डेऽपि। यथा जम्बूद्वीपमहामेरोः भरतादिक्षेत्रहिमवदादिपर्वतगङ्गादिनदीपद्मादिह्रदानां दक्षिणोत्तरेण व्याख्यानं कृतं तथात्र पूर्वधातकीखण्डमेरौ पश्चिमधातकीखण्डमेरौ च ज्ञातव्यम्। अत एव जम्बूद्वीपापेक्षया संख्यां प्रति द्विगुणानि भवन्ति भरतक्षेत्राणि, न च विस्तारायामापेक्षया। कुलपर्वताः

जिस प्रकार सब द्वीप और समुद्रोंमें, द्वीप और समुद्रकी मर्यादाकारक (हद बतानेवाली) आठ योजन ऊंची वज्रकी दिवाल होती है उसी प्रकार जंबूद्वीपमें भी है ऐसा जानना। उस वेदिकासे बाहर दो लाख योजन चौड़ा, गोलाकार आगममें कहे अनुसार सोलह हजार योजन जलकी गहराई आदि अनेक आश्चर्यों सहित लवणसमुद्र है। उससे बाहर चार लाख योजन गोल विस्तारयुक्त धातकीखंड द्वीप है। वहां दक्षिण भागमें लवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोंकी वेदिकाको स्पर्श करनेवाला दक्षिण-उत्तर लंबा, एक हजार योजनके विस्तारवाला चार सौ योजन ऊंचा इक्ष्वाकार नामक पर्वत है, उसी प्रकार उत्तर भागमें भी एक इक्ष्वाकार पर्वत है। उन दो पर्वतोंसे विभाजित, पूर्व धातकीखंड और पश्चिम धातकीखंड ऐसे दो भाग जानना। पूर्व धातकीखंड द्वीपके मध्यमें चौरासी हजार योजन ऊंचा और एक हजार योजन गहरा छोटा मेरु है तथा पश्चिम धातकीखंड़में भी ऐसा ही एक छोटा मेरु है। जिस प्रकार जंबूद्वीपके महामेरुका भरतादि क्षेत्र, हिमवत् आदि पर्वत, गंगा आदि नदी और पद्म आदि सरोवरोंका दक्षिण और उत्तर दिशा संबंधी वर्णन किया है उसी प्रकार इस पूर्व धातकीखंडके और पश्चिम धातकीखंडके मेरु संबंधी भी जानना। अतः धातकीखंडमें जंबूद्वीपकी अपेक्षा संख्यामें भरत क्षेत्रादि दुगुने होते हैं, परन्तु लंबाई-चौड़ाईकी अपेक्षासे दुगुने नहीं हैं। कुलपर्वत विस्तारकी अपेक्षासे दुगुने हैं परंतु लंबाईकी अपेक्षासे दुगुने नहीं हैं। उस धातकीखंड

पुनर्विस्तारापेक्षयैव द्विगुणा, नत्वायामं प्रति । तत्र धातकीखण्डद्वीपे तथा चक्रस्यारास्तथाकाराः कुलपर्वता भवन्ति । यथा चाराणां विवराणि छिद्राणि मध्यान्यभ्यन्तरे सङ्कीर्णानि वहिर्भागे विस्तीर्णानि तथा क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि ।

इत्थंभूतं धातकीखण्डद्वीपमष्टलक्षयोजनवलयविष्कम्भः कालोदकसमुद्रः परिवेष्ट्य तिष्ठति । तस्माद्वहिर्भागे योजनलक्षाष्टकं गत्वा पुष्करवरद्वीपस्य अर्द्धे वलयाकारेण चतुर्दिशाभागे मानुषोत्तरनामा पर्वतस्तिष्ठति । तत्र पुष्करार्धेऽपि धातकीखण्डद्वीपवद्दक्षिणोत्तरेणेक्ष्वाकारनामपर्वतद्वयं पूर्वापरेण क्षुल्लकमेरुद्वयं च । तथैव भरतादिक्षेत्रविभागश्च बोधव्यः । परं किन्तु जम्बूद्वीपभरतादिसंख्यापेक्षया भरतक्षेत्रादिद्विगुणत्वं, न च धातकीखण्डापेक्षया । कुलपर्वतानां तु धातकीखण्डकुलपर्वतापेक्षया द्विगुणो विष्कम्भ आयामश्च । उत्सेधप्रमाणं पुनः दक्षिणभागे विजयार्धपर्वते योजनानि पञ्चविंशतिः हिमवति पर्वते शतं, महाहिमवति द्विशतं, निषधे चतुःशतं, तथोत्तरभागे च । मेरुसमीपगजदन्तेषु शतपञ्चकं, नील निषध पार्श्वे गजदन्तानि योजन चतुः

द्वीपमें जैसे चक्रके आरे होते हैं वैसे आकारके कुलाचल हैं । जिस प्रकार चक्रके आरेमें छिद्र भीतरकी तरफ संकरे (संकीर्ण) होते हैं और वाहरकी तरफ चौड़े होते हैं उस प्रकार क्षेत्रोंका आकार जानना ।

इस प्रकारके धातकीखंड द्वीपको आठ लाख योजनके गोल विस्तारवाला कालोदक समुद्र घेरे हुए है । उस कालोदक समुद्रसे वाहर आठ लाख योजन चलने पर पुष्करवर द्वीपके आधे भागमें, गोलाकार, चारों दिशाओंमें मानुषोत्तर नामक पर्वत है । उस पुष्करार्ध द्वीपमें भी धातकीखंड द्वीपके समान दक्षिण और उत्तर दिशामें इक्ष्वाकार नामक दो पर्वत हैं और पूर्व तथा पश्चिम दिशामें दो छोटे मेरु हैं । इसी प्रकार भरतादि क्षेत्रोंका विभाग जानना । परंतु जंवूद्वीपके भरतादिकी संख्याकी अपेक्षासे यहां भरतादि क्षेत्र दुगुने हैं, धातकीखंड द्वीपके भरतादिकी संख्याकी अपेक्षासे नहीं । कुलाचलोंकी लम्वाई तथा चौड़ाई धातकीखंडके कुलाचलोंकी अपेक्षासे दुगुनी है । दक्षिणमें विजयार्ध पर्वतकी ऊंचाईका प्रमाण पच्चीस योजन, हिमवत् पर्वतकी ऊंचाई सौ योजन, महा हिमवत् पर्वतकी ऊंचाई दो सौ योजन और निषध पर्वतकी ऊंचाई चार सौ योजन है । उत्तर भागमें भी पर्वतोंकी ऊंचाईका प्रमाण उसी प्रकार है । मेरुके समीपमें गजदंतोंकी ऊंचाई पांच सौ योजन है और नील तथा निषध पर्वतोंके समीप गजदंतोंकी ऊंचाई चार सौ योजन है । वक्षार पर्वतोंकी ऊंचाई नदीके समीपमें और अंतमें नील निषधके समीपमें

शतानि । नदीसमीपे वक्षारेषु चान्त्यनिषधनीलसमीपे चतुःशतं च । शेषपर्वतानां च मेरुं त्यक्त्वा यदेव जम्बूद्वीपे भणितं तदेवार्धतृतीयद्वीपेषु च विज्ञेयम् । तथा नामानि च क्षेत्रपर्वतनदीदेशनगरादीनां तान्येव । तथैव क्रोशद्वयोत्सेधा पञ्चशतधनुर्विस्तारा पद्मरागरत्नमयी वनादीनां वेदिका सर्वत्र समानेति । अत्रापि चक्राराकारवत्पर्वता आरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ज्ञातव्यानि । मानुषोत्तरपर्वताद्भ्यन्तरभाग एव मनुष्यास्तिष्ठन्ति, न च बहिर्भागे । तेषां च जघन्यजीवितमन्तर्मुहूर्तप्रमाणम्, उत्कर्षेण पल्यत्रयं, मध्ये मध्यमविकल्पा बहवस्तथा तिरश्चां च । एवमसंख्येयद्वीपसमुद्रविस्तीर्णतिर्यग्लोकमध्येऽर्धतृतीयद्वीपप्रमाणः संक्षेपेण मनुष्यलोको व्याख्यातः ।

अथ मानुषोत्तरपर्वतसकाशाद्बहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्धं परिक्षिप्य योऽसौ नागेन्द्रनामा पर्वतस्तस्मात्पूर्वभागे ये संख्यातीता द्वीपसमुद्रास्तिष्ठन्ति तेषु यद्यपि 'व्यन्तरा निरन्तरा' इति वचनाद् व्यन्तरदेवावासास्तिष्ठन्ति तथापि पल्यप्रमाणायुषां तिरश्चां सम्बन्धिनी जघन्यभोगभूमिरिति ज्ञेयम् । नागेन्द्रपर्वताद्बहिर्भागे स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे समुद्रे च पुनर्विदेहवत्सर्वदैव कर्मभूमिश्चतुर्थकालश्च । परं किन्तु मनुष्या न सन्ति ।

चार सौ योजन है । मेरु पर्वतके अतिरिक्त शेष पर्वतोंकी ऊंचाई जितनी जंबूद्वीपमें कही थी उतनी ही पुष्करार्ध तकके द्वीपोंमें जानना । तथा क्षेत्र, पर्वत, नदी, देश, नगरादिके नाम भी वे ही हैं । उसी प्रकार दो कोश ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ी, पद्मरागरत्नमय वनादिकी वेदिका भी सब समान हैं । इस पुष्करार्ध द्वीपमें भी चक्रके आरेके आकारके पर्वत और आरोंके मध्य छिद्र समान क्षेत्र जानना । मानुषोत्तर पर्वतके भीतरी भागमें ही मनुष्य रहते हैं, बाहरके भागमें नहीं । उन मनुष्योंका जघन्य आयुष्य अंतर्मुहुर्तका, उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्यका और मध्यमें मध्यम भेद अनेक हैं । तिर्यंचोंका आयुष्य भी मनुष्योंके समान है । इस प्रकार असंख्य द्वीप-समुद्रोंमें विस्तृत तिर्यक्लोकके मध्यमें अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्यलोकका संक्षेपमें व्याख्यान किया ।

अब मानुषोत्तर पर्वतसे बाहरके भागमें स्वयंभूरमण द्वीपके आधे भागको घेरकर जो नागेन्द्र नामक पर्वत है उसके पूर्वभागमें (पहले) जो असंख्य द्वीप-समुद्र हैं उनमें यद्यपि 'व्यंतरदेव निरन्तर रहते हैं' इस वचनके अनुसार व्यन्तर देवोंका आवास है तो भी एक पल्य प्रमाण आयुष्यवाले तिर्यंचोंकी जघन्य भोगभूमि भी है इस प्रकार जानना । नागेन्द्र पर्वतसे बाह्य स्वयंभूरमण अर्धद्वीपमें और स्वयंभूरमण समुद्रमें विदेह क्षेत्रके समान सदैव कर्मभूमि और चौथा काल रहता

एवमुक्तलक्षणतिर्यग्लोकस्य तदभ्यन्तरं मध्यभागवर्तिनो मनुष्यलोकस्य च प्रतिपादनेन संक्षेपेण मध्यमलोकव्याख्यानं समाप्तम् । अथ मनुष्यलोके द्विहीनशतचतुष्टयं तिर्यग्लोके तु नन्दीश्वरकुण्डलरुचकाभिधानद्वीपत्रयेषु क्रमेण द्विपञ्चाशच्चतुष्टयचतुष्टयसंख्याश्चाकृत्रिमाः स्वतन्त्रजिनगृहा ज्ञातव्याः ।

अत ऊर्ध्वं ज्योतिर्लोकः कथ्यते । तद्यथा—चन्द्रादित्यग्रहनक्षत्राणि प्रकीर्णतारकाश्चेति ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधा भवन्ति । तेषां मध्येऽस्माद्भूमितलादुपरि नवत्यधिकसप्तशतयोजनान्याकाशे गत्वा तारकविमानाः सन्ति, ततोऽपि योजनदशकं गत्वा सूर्यविमानाः, ततः परमशीतियोजनानि गत्वा चन्द्रविमानाः, ततोऽपि त्रैलोक्यसारकथितक्रमेण योजनचतुष्टयं गते अश्विन्यादिनक्षत्रविमानाः, ततः परं योजनचतुष्टयं गत्वा बुधविमानाः, ततः परं योजनत्रयं गत्वा शुक्रविमानाः, ततः परं योजनत्रये गते बृहस्पतिविमानाः, ततो योजनत्रयानन्तरं मंगलविमानाः, ततोऽपि योजनत्रयान्तरं शनैश्चरविमाना इति । तथा चोक्तं "णउदुत्तरसत्तसया दस सीदी चउदुगं

है, परन्तु वहां मनुष्य नहीं हैं । इस प्रकार तिर्यक्लोकके और उसके मध्य भागमें स्थित मनुष्यलोकके प्रतिपादन द्वारा संक्षेपमें मध्यम लोकका व्याख्यान समाप्त हुआ । मनुष्यलोकमें तीनसौ अठाणवें और तिर्यक्लोकमें नन्दीश्वर द्वीप, कुंडलद्वीप और रुचकद्वीपमें क्रमशः बावन, चार और चार अकृत्रिम स्वतन्त्र जिनगृह जानना ।

इसके पश्चात् ज्योतिष लोकका वर्णन करते हैं । वह इस प्रकार—चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे; इस प्रकार ज्योतिषी देव पाँच प्रकारके हैं । उनमेंसे इस मध्यलोकके पृथ्वीतलसे सात सौ नव्वे योजन ऊपर आकाशमें तारोंके विमान हैं, उनसे दश योजन ऊपर सूर्यके विमान हैं, उनसे अस्सी योजन ऊपर चंद्रके विमान हैं, तत्पश्चात् त्रैलोक्यसारमें कथित क्रमके अनुसार चार योजन ऊपर अश्विनी आदि नक्षत्रोंके विमान हैं, तत्पश्चात् चार योजन ऊपर बुधके विमान हैं, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर शुक्रके विमान हैं, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर बृहस्पतिके विमान हैं, तत्पश्चात् तीन योजन ऊपर मंगलके विमान हैं, उससे भी तीन योजन ऊपर शनिश्चरके विमान हैं, वही कहा है—"सातसौ[1] नव्वे, दस, अस्सी, चार, चार, तीन, तीन, तीन और तीन योजन ऊपर क्रमपूर्वक तारे, सूर्य, चंद्र,

---

१. त्रिलोकसार गाथा–३३२

तु तिचउक्कं। ताराविसिसिरिक्खा वुहभग्गवअंगिरारसणी। १।" ते च ज्योतिष्कदेवा अर्धतृतीयद्वीपेषु निरंतरं मेरोः प्रदक्षिणेन परिभ्रमणगतिं कुर्वन्ति। तत्र घटिकाप्रहरदिवसादिरूपः स्थूलव्यवहारकालः समयनिमिषादिसूक्ष्मव्यवहारकालवत् यद्यप्यनादिनिधनेन समयघटिकादिविवक्षितविकल्परहितेनकालाणुद्रव्यरूपेण निश्चयकालेनोपादानभूतेन जन्यते तथापि चन्द्रादित्यादिज्योतिष्कदेवविमानगमनागमनेन कुम्भकारेण निमित्तभूतेन मृत्पिण्डोपादानजनितघट इव व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते तेन कारणेनोपचारेण ज्योतिष्कदेवकृत इत्यभिधीयते। निश्चयकालस्तु तद्विमानगतिपरिणतेर्बहिरङ्गसहकारिकारणं भवति कुम्भकारचक्रभ्रमणस्याधस्तनशिलावदिति।

इदानीमर्धतृतीयद्वीपेषु चन्द्रादित्यसंख्या कथ्यते। तथाहि—जम्बूद्वीपे चन्द्रद्वयं सूर्यद्वयं च, लवणोदे चतुष्टयं, धातकीखण्डद्वीपे द्वादश चन्द्रादित्याश्च, कालोदकसमुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्रादित्याश्च, पुष्करार्धे द्वीपे द्वासप्ततिचन्द्रादित्याः चेति। ततः परं भरतैरावतस्थितजम्बूद्वीपचन्द्रसूर्ययोः किमपि विवरणं क्रियते।

नक्षत्र, बुध, शुक्र, वृहस्पति, मंगल और शनिश्चरके विमान हैं ॥१॥" वे ज्योतिषी देव अढ़ाई द्वीपमें मेरुकी प्रदक्षिणा करके निरंतर परिभ्रमण करते हैं। वहां घड़ी, प्रहर, दिवसादिरूप स्थूल व्यवहार काल, समय निमिषादि सूक्ष्म व्यवहारकालकी भांति यद्यपि समय, घड़ी आदि विवक्षित भेदोंसे रहित, अनादि अनंत कालाणु द्रव्यमय निश्चयकालरूप उपादानसे उत्पन्न होता है तो भी निमित्तभूत कुम्हार द्वारा उपादानरूपी मिट्टीके पिंडमेंसे बने हुए घड़ेकी भांति चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमन-आगमनसे यह व्यवहारकाल प्रगट होता है तथा ज्ञात होता है, इस कारण उपचारसे वह ज्योतिषी देवोंसे कृत है ऐसा कहा जाता है। निश्चयकाल तो, कुम्हारके चाकके भ्रमणमें नीचेकी कीली बहिरंग सहकारी होती है, उसी प्रकार विमानोंके गमनरूप परिणामका बहिरंग सहकारी कारण होता है।

अब अढ़ाईद्वीपमें चंद्र और सूर्यकी संख्या कहते हैं। वह इस प्रकार—जंबूद्वीपमें दो चंद्र और दो सूर्य हैं, लवणोदक समुद्रमें चार चंद्र और चार सूर्य हैं। धातकीखंड द्वीपमें बारह चंद्र और बारह सूर्य हैं, कालोदक समुद्रमें ब्यालीस चंद्र और ब्यालीस सूर्य हैं। पुष्करार्ध द्वीपमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं।

तत्पश्चात् भरत और ऐरावत क्षेत्रमें स्थित जंबूद्वीपके चंद्र और सूर्यका कुछ वर्णन किया जाता है। वह इस प्रकार—जंबूद्वीपमें एकसौ अस्सी योजन और

तद्यथा—जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे योजनानामशीतिशतं बहिर्भागे लवणसमुद्रसम्बन्धे त्रिंशदधिकशतत्रयमिति समुदायेन दशोत्तरयोजनशतपञ्चकं चारक्षेत्रं भण्यते, तत् चन्द्रादित्ययोरेकमेव । तत्र भरतेन (सह) बहिर्भागे तस्मिंश्चारक्षेत्रे सूर्यस्य चतुरशीतिशतसंख्या मार्गा भवन्ति, चन्द्रस्य पञ्चदशैव । तत्र जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे कर्कटसंक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे निषधपर्वतस्योपरि प्रथममार्गे सूर्यः प्रथमोदयं करोति । यत्र सूर्यविमानस्थं निर्दोषपरमात्मनो जिनेश्वरस्याकृत्रिमं जिनबिम्बम् प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा अयोध्यानगरीस्थितो निर्मलसम्यक्त्वानुरागेण भरतचक्री पुष्पाञ्जलिमुत्क्षिप्यार्घ्यं ददातीति । तन्मार्गस्थितभरतक्षेत्रादित्यस्यैरावतादित्येन सह तथापि चन्द्रस्यान्यचन्द्रेण सह यदन्तरं भवति तद्विशेषेणागमतो ज्ञातव्यम् ।

अथ "सदभिस भरणी अद्दा सादी असलेस्स जेट्ठमवर वरा । रोहिणि विसाह पुणव्वसु तिउत्तरा मज्झिमा सेसा ।१।" इति गाथाकथितक्रमेण यानि जघन्योत्कृष्टमध्यमनक्षत्राणि तेषु मध्ये कस्मिन्नक्षत्रे कियन्ति दिनान्यादित्यस्तिष्ठतीति । "इन्दु-

---

बाहर अर्थात् लवण समुद्रमें तीन सौ तीस योजन, इस प्रकार कुल पांचसौ दस योजन प्रमाण गमन-क्षेत्र कहलाता है, वह चन्द्र और सूर्य दोनोंका एक ही गमन क्षेत्र है । उसमें भरत क्षेत्र और बाहरके भागके गमन क्षेत्रमें सूर्यके मार्ग एकसौ चौरासी हैं और चंद्रके मार्ग पंद्रह ही हैं । वहां जंबूद्वीपमें कर्कट संक्रान्तिके दिवस, दक्षिणायनके प्रारंभमें, निषध पर्वत पर प्रथम मार्गमें सूर्यका प्रथम उदय होता है । तब सूर्य विमानमें स्थित निर्दोष परमात्म-जिनेश्वरके अकृत्रिम बिंबको प्रत्यक्ष देखकर, अयोध्या नगरीमें स्थित भरत चक्रवर्ती निर्मल सम्यक्त्वके अनुरागसे पुष्पांजलि देकर अर्घ्य देता है । उस मार्गमें स्थित भरतक्षेत्रके सूर्यका ऐरावत क्षेत्रके सूर्यके साथ और भरतक्षेत्रके चंद्रका ऐरावतक्षेत्रके चंद्रके साथ जो अंतर रहता है वह विशेषरूपसे आगममेंसे जान लेना ।

अब "शतभिषा,[1] भरणी, आर्द्रा, स्वाति, अश्लेषा और ज्येष्ठा—ये छह नक्षत्र जघन्य हैं; रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद ये छह नक्षत्र उत्तम हैं और बाकीके नक्षत्र मध्यम हैं ।" इस प्रकार गाथामें कथित क्रम अनुसार जो जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्र हैं, उनमेंसे किस नक्षत्रमें

---

१. त्रिलोकसार गाथा–३९६

रवीदो रिक्खा सत्तट्ठि पंच गगणखंडहिया। अहियहिदरिक्खखंडा रिक्खे इंदुरवी-अत्थणमुहुत्ता ।१।" इत्यनेन गाथासुत्रेणागमकथितक्रमेण पृथक् पृथगानीय मेलापके कृते सति षडधिकषष्टियुतत्रिशतसंख्यदिनानि भवन्ति। तस्य दिनसमूहार्धस्य यदा द्वीपाभ्यन्तराद्दक्षिणेन बहिर्भागेषु दिनकरो गच्छति तदा दक्षिणायनसंज्ञा; यदा पुनः समुद्रात्सकाशादुत्तरेणाभ्यन्तरमार्गेषु समायाति तदोत्तरायणसंज्ञेति। तत्र यदा द्वीपाभ्यन्तरे प्रथममार्गपरिधौ कर्कटसंक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे तिष्ठत्यादित्यस्तदा चतुर्णवतिसहस्रपञ्चविंशत्यधिकपञ्चयोजनशतप्रमाण उत्कर्षेणादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातप-विस्तारो ज्ञेयः। तत्र पुनरष्टादशमुहूर्तैर्दिवसो भवति द्वादशमुहूर्तै रात्रिरिति। ततः क्रमेणातपहानौ सत्यां मुहूर्तद्वयस्यैकषष्टिभागीकृतस्यैको भागो दिवसमध्ये दिनं प्रति हीयते यावल्लवणसमुद्रेऽवसानमार्गे माघमासे मकरसंक्रान्तावुत्तरायणदिवसे त्रिषष्टिसहस्रा-धिकषोडशयोजनप्रमाणो जघन्येनादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातपविस्तारो भवति। तथैव

कितने दिवस सूर्य रहता है वह कहते हैं। "एक[1] मुहूर्तमें चंद्र १७६८, सूर्य १८३० और नक्षत्र १८३५ गगनखंडोंमें गमन करता है अत: ६७ और ५ (१८३५–१७६८ = ६७; १८३५–१८३० = ५) अधिक भागोंसे नक्षत्रखंडको भाग देनेसे जो मुहूर्त आवे वे मुहूर्त चंद्र और सूर्यके आसन्न मुहूर्त जानना अर्थात् एक नक्षत्र पर इतने मुहूर्त तक चन्द्र और सूर्य की स्थिति जानना। इस प्रकार इस गाथा द्वारा आगममें कथित क्रमसे भिन्न-भिन्न दिवसोंका योग करनेसे तीनसौ छ्यासठ दिन होते हैं। जब द्वीपके अंदरसे दक्षिणदिशाके बाहर सूर्य गमन करता है तब एकसौ तिरासी दिनोंको 'दक्षिणायन' नाम प्राप्त होता है और जब सूर्य समुद्रकी ओरसे उत्तर दिशाके अंदरके मार्गोंमें आता है तब शेष एकसौ तिरासी दिनोंको 'उत्तरायण' नाम है। उसमें जब द्वीपके भीतर कर्कट संक्रान्तिके दिन दक्षिणायनके प्रारंभमें प्रथम मार्गकी परिधिमें सूर्य होता है तब सूर्य विमानके आतपका पूर्व पश्चिम विस्तार चौराणवें हजार पांचसौ पच्चीस योजन प्रमाण होता है ऐसा जानना। उस समय अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्त की रात्रि होती है। तत्पश्चात् क्रम-क्रमसे आतपकी हानि होनेपर दो मुहूर्त के इकसठ भागोंमेंसे एक भाग प्रमाण प्रत्येक दिन घटता है और लवण समुद्रके अंतिम मार्गमें माघ मासमें मकर संक्रांतिके उत्तरा-यणके दिन सूर्य विमानके आतपका पूर्व पश्चिम विस्तार जघन्यरूपसे त्रेसठ हजार सोलह योजन प्रमाण रहने तक घटता है। उसी प्रकार बारह मुहूर्तोंका दिन और

१. त्रिलोकसार गाथा–४०४

द्वादशमुहूर्तैर्दिवसो भवत्यष्टादशमुहूर्तै रात्रिश्चेति । शेषं विशेषव्याख्यानं लोकविभागादौ विज्ञेयम् ।

ये तु मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्भागे ज्योतिष्कविमानास्तेषां चलनं नास्ति । ते च मानुषोत्तरपर्वताद्बहिर्भागे पञ्चाशत्सहस्राणि योजनानां गत्वा वलयाकारं पंक्तिक्रमेण पूर्वक्षेत्रं परिवेष्ट्य तिष्ठन्ति । तत्र प्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणाश्चन्द्रास्तथा-दित्याश्चान्तरान्तरेण तिष्ठन्ति । ततः परं योजनलक्षे लक्षे गते तेनैव क्रमेण वलयं भवति । अयन्तु विशेषः—वलये वलये चन्द्रचतुष्टयं सूर्यचतुष्टयं च वर्धते यावत्पुष्करार्धबहिर्भागे वलयाष्टकमिति । ततः पुष्करसमुद्रप्रवेशे वेदिकायाः सकाशात्पंचाशत्सहस्रप्रमितयोज-नानि जलमध्ये प्रविश्य यत्पूर्वं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्रमाणं प्रथमवलयं व्याख्यातं तस्माद् द्विगुणसंख्यानं प्रथमवलयं भवति । तदनन्तरं पूर्ववद्योजनलक्षे गते वलयं भवति चन्द्रचतुष्टयस्य सूर्यचतुष्टयस्य च वृद्धिरित्यनेनैव क्रमेण स्वयम्भूरमणसमुद्र-बहिर्भागवेदिकापर्यन्तं ज्योतिष्कदेवानामवस्थानं बोधव्यम् । एते च प्रतरासंख्येयभाग-प्रमिता असंख्येया ज्योतिष्कविमाना अकृत्रिमसुवर्णमयरत्नमयजिनचैत्यालयमण्डिता

अठारह मुहूर्तोंकी रात्रि होती है । अन्य विशेष व्याख्यान लोकविभाग आदिमेंसे जानना ।

मनुष्यक्षेत्रके बाहर जो ज्योतिषियोंके विमान हैं उनका गमन नहीं होता है । वे मानुषोत्तर पर्वतके बाहर पचास हजार योजन जाकर, गोलाकार पंक्तिके क्रमसे पूर्वक्षेत्रको वेष्टित करके (घेर कर) स्थित हैं । वहां प्रथम वलयमें एकसौ चवालीस चंद्र और सूर्य परस्पर अन्तर पर (दूरी पर) रहते हैं (स्थित हैं) । तत्पश्चात् एक-एक लाख योजन जानेपर उसी क्रमसे एक-एक वलय होता है । विशेष यह है कि प्रत्येक वलयमें चार-चार चंद्र और चार-चार सूर्योंकी वृद्धि पुष्करार्द्धके बाह्य भागमें आठवें वलय तक होती है । तत्पश्चात् पुष्कर समुद्रके प्रवेशमें स्थित वेदिकासे पचास हजार योजन प्रमाण जलभागमें जाकर प्रथम वलयमें एकसौ चवालीस चंद्र और सूर्य का जो पहले व्याख्यान किया है उससे दुगुने चन्द्र और सूर्ययुक्त प्रथम वलय है । तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक लाख योजन जानेपर एक-एक वलय है । प्रत्येक वलयमें चार चंद्र और चार सूर्योंकी वृद्धि होती है । इसी क्रमसे स्वयंभूरमण समुद्रके बाहरके भागकी वेदिका तक ज्योतिषी देवोंका अवस्थान जानना । जगत्प्रतर के असं-ख्यातवें भाग प्रमाण ये असंख्य ज्योतिषी विमान अकृत्रिम सुवर्णमय और रत्नमय जिन-चैत्यालयोंसे शोभित जानना । इस प्रकार संक्षेपसे ज्योतिष्क लोकका कथन पूर्ण हुआ ।

ज्ञातव्याः । इति संक्षेपेण ज्योतिष्कलोकव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथानन्तरमूर्ध्वलोकः कथ्यते । तथाहि—सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतसंज्ञाः षोडश स्वर्गाः ततोऽपि नवग्रैवेयकसंज्ञास्ततश्च नवानुदिशसंज्ञं नवविमानसंख्यमेकपटलं ततोऽपि पंचानुत्तरसंज्ञं पंचविमानसंख्यमेकपटलं चेत्युक्तक्रमेणोपर्युपरि वैमानिकदेवास्तिष्ठन्तीति वार्त्तिकं सङ्ग्रहवाक्यं समुदायकथनमिति यावत् । आदिमध्यान्तेषु द्वादशाष्टचतुर्योजनवृत्तविष्कम्भा चत्वारिंशत्प्रमितयोजनोत्सेधा या मेरुचूलिका तिष्ठति तस्या उपरि कुरुभूमिजमर्त्यवालाग्रान्तरितं पुनर्ऋजुविमानमस्ति । तदादिं कृत्वा चूलिकासहितलक्षयोजनप्रमाणं मेरूत्सेधमानमर्द्धाधिकैकरज्जुप्रमाणं यदाकाशक्षेत्रं तत्पर्यन्तं सौधर्मैशानसंज्ञं स्वर्गयुगलं तिष्ठति । ततः परमर्द्धाधिकैकरज्जुपर्यन्तं सानत्कुमारमाहेन्द्रसंज्ञं स्वर्गयुगलं भवति, तस्मादर्द्धरज्जुप्रमाणाकाशपर्यन्तं ब्रह्मब्रह्मोत्तराभिधानं स्वर्गयुगलमस्ति, ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तं लांतवकापिष्टनामस्वर्गयुगलमस्ति, ततश्चार्द्धरज्जुपर्यन्तं शुक्रमहाशुक्राभिधानं स्वर्गद्वयं ज्ञातव्यम्, तदनंतरमर्द्धरज्जुपर्यन्तं शतारसहस्रारसंज्ञं स्वर्गयुगलं

इसके पश्चात् उर्ध्वलोकका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक सोलह स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर नवग्रैवेयक विमान हैं । उनसे ऊपर नव अनुदिश नामक नौ विमानोंका एक पटल है, उनसे भी ऊपर पांच अनुत्तर नामक पांच विमानोंका एक पटल है । इस प्रकार उक्त क्रमसे ऊपर-ऊपर वैमानिक देव रहते हैं । यह वार्तिक अर्थात् संग्रह वाक्य अथवा समुदायकथन है । आदिमें बारह, मध्यमें आठ और अंतमें चार योजन प्रमाण गोल व्यास वाली, चालीस योजन ऊंची जो मेरु पर्वतकी चूलिका है उसके ऊपर देवकुरु अथवा उत्तरकुरुनामक उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग जितने अंतरसे ऋजु विमान है। चूलिका सहित मेरु पर्वतकी ऊंचाईका प्रमाण एक लाख योजन है । उस ऊंचाईसे प्रारंम्भ करके डेढ़ (१½) राजू प्रमाण आकाश क्षेत्र पर्यंत सौधर्म और ईशान नामक दो स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर डेढ़ राजू पर्यंत सानत्कुमार और माहेन्द्र नामक दो स्वर्ग हैं, उनसे ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नामक दो स्वर्ग हैं, उनसे भी ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत लांतव और कापिष्ठ नामक दो स्वर्ग हैं । उनसे ऊपर अर्द्ध राजू पर्यंत शुक्र और महाशुक्र नामक दो स्वर्ग जानना । तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत शतार और सहस्त्रार नामक दो स्वर्ग हैं, तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत् आनत

भवति, ततोऽप्यर्द्धरज्जुपर्यन्तमानतप्राणतनाम स्वर्गयुगलं, ततः परमर्द्धरज्जुपर्यन्तमाकाशं यावदारणाच्युताभिधानं स्वर्गद्वयं ज्ञातव्यमिति। तत्र प्रथमयुगलद्वये स्वकीयस्वकीय-स्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा विज्ञेयाः, मध्ययुगलचतुष्टये पुनः स्वकीयस्वकीयप्रथमस्वर्गा-भिधान एकैक एवेन्द्रो भवति, उपरितनयुगलद्वयेऽपि स्वकीयस्वकीयस्वर्गनामानश्चत्वार इन्द्रा भवन्ति; इति समुदायेन षोडशस्वर्गेषु द्वादशेन्द्रा ज्ञातव्याः। षोडशस्वर्गादूर्ध्व-मेकरज्जुमध्ये नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिदेवास्तिष्ठन्ति। ततः परं तत्रैव द्वादशयोजनेषु गतेष्वष्टयोजनबाहुल्या मनुष्यलोकवत्पञ्चाधिकचत्वारिंशल्लक्षयोजन-विस्तारा मोक्षशिला भवति। तस्या उपरि घनोदधिघनवाततनुवातत्रयमस्ति। तत्र तनुवातमध्ये लोकान्ते केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहिताः सिद्धाः तिष्ठन्ति।

इदानीं स्वर्गपटलसंख्या कथ्यते—सौधर्मैशानयोरेकत्रिंशत्, सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोश्चत्वारि, लान्तवकापिष्टयोर्द्वयम्, शुक्रमहाशुक्रयोः पटलमेकम्, शतारसहस्रारयोरेकम्, आनतप्राणतयोस्त्रयम्, आरणाच्युतयोस्त्रयमिति। नवसु ग्रैवेयकेषु नवकं, नवानुदिशेषु पुनरेकं, पञ्चानुत्तरेषु चैकमिति समुदायेनोपर्युपरि

और प्राणत नामक दो स्वर्ग हैं, तत्पश्चात् अर्द्ध राजू पर्यंत आकाशमें आरण और अच्युत नामक दो स्वर्ग हैं। वहां प्रथमके दो युगलोंमें अपने-अपने स्वर्गके नामवाले चार इन्द्र जानना। मध्यवर्ती चार युगलोंमें अपने-अपने प्रथम स्वर्गके नाम वाले चार इन्द्र हैं। ऊपरके अंतिम दो युगलोंमेंभी अपने-अपने स्वर्गके नाम वाले चार इन्द्र हैं। इस प्रकार समूह रूपसे सोलह स्वर्गोमें बारह इन्द्र जानना। सोलह स्वर्गोंसे ऊपर एक राजूमें नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी देव हैं। तत्पश्चात् बारह योजन ऊपर जानेपर आठ योजन मोटी और मनुष्य लोक (अढ़ाई-द्वीप) के समान पैंतालीस लाख योजनके विस्तारयुक्त मोक्षशिला है। उससे ऊपर घनोदधि, घनवात और तनुवात नामक तीन वायु हैं। वहां तनुवात वलयके मध्यमें और लोकके अंतमें केवल ज्ञानादि अनंत गुणसहित सिद्ध हैं।

अब स्वर्गके पटलोंकी संख्या कहते हैं—सौधर्म और ईशान स्वर्गमें इकत्तीस, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें सात, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें चार, लांतव और कापिष्ट स्वर्गमें दो, शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमें एक, शतार और सहस्त्रार स्वर्गमें एक, आनत और प्राणत स्वर्गमें तीन तथा आरण और अच्युत स्वर्गमें तीन पटल हैं। नवग्रैवेयकोंमें नौ, नव अनुदिशोंमें एक और पांच अनुत्तरोंमें एक पटल है।

त्रिषष्टिपटलानि ज्ञातव्यानि। तथा चोक्तम्—"इगतीससत्तचत्तारिदोण्णिएक्केक्कछक्क-चदुकप्पे। तित्तियएक्केक्केंदियणामा उडु आदि तेसट्ठी।"

अतः परं प्रथमपटलव्याख्यानं क्रियते। ऋजु विमानं यदुक्तं पूर्वं मेरुचूलिकाया उपरि तस्य मनुष्यक्षेत्रप्रमाणविस्तारस्येन्द्रकसंज्ञा। तस्य चतुर्दिग्भागेष्वसंख्येययोजनविस्ताराणि पंक्तिरूपेण सर्वद्वीपसमुद्रेपूपरि प्रतिदिशं यानि त्रिषष्टिविमानानि तिष्ठन्ति तेषां श्रेणीबद्धसंज्ञा। यानि च पंक्तिरहितपुष्पप्रकरवद्विदिक्चतुष्टये तिष्ठन्ति तेषां संख्येयासंख्येययोजनविस्ताराणां प्रकीर्णकसंज्ञा। इति समुदायेन प्रथमपटललक्षणं ज्ञातव्यम्। तत्र पूर्वापरदक्षिणश्रेणित्रयविमानानि, तन्मध्ये विदिग्द्वयविमानानि च सौधर्मसम्बन्धीनि भवन्ति, शेषविदिग्द्वयविमानानि तथोत्तरश्रेणिविमानानि च पुनरीशानसम्बन्धीनि। अस्मात्पटलादुपरि जिनदृष्टमानेन संख्येयान्यसंख्येयानि योजनानि गत्वा तेनैव क्रमेण द्वितीयादिपटलानि भवन्ति। अयं च विशेषः—श्रेणीचतुष्टये

इस प्रकार समूहमें ऊपर-ऊपर त्रेसठ पटल जानना। वही कहा है[1] कि—"सौधर्म युगलमें इकत्तीस, सानत्कुमार युगलमें सात, ब्रह्म युगलमें चार, लांतव युगलमें दो, शुक्र युगलमें एक, शतार युगलमें एक, आनत आदि चार स्वर्गोमें छह, प्रत्येक तीन ग्रैवेयकोंमें तीन-तीन, नवअनुदिशोंमें एक, पांच अनुत्तरोंमें एक—इस प्रकार समूहरूपसे त्रेसठ इन्द्रक होते हैं।"

इसके पश्चात् प्रथम पटलका व्याख्यान करते हैं। मेरु पर्वतकी चूलिकाके ऊपर मनुष्य क्षेत्र जितने विस्तार वाले पूर्वोक्त ऋजु विमानकी इन्द्रक संज्ञा है। उसकी चारों दिशाओंमें पंक्तिरूपसे सर्वद्वीप और समुद्रोंके ऊपर प्रत्येक दिशामें जो असंख्य योजन विस्तारवाले त्रेसठ विमान हैं उनकी 'श्रेणीबद्ध' संज्ञा है। पंक्तिरहित पुष्पोंकि भांति चारों विदिशाओंमें जो संख्यात और असंख्यात योजन विस्तार वाले विमान हैं उनकी "प्रकीर्णक" संज्ञा है। इस प्रकार समूहमें प्रथम पटलका लक्षण जानना। उसमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन श्रेणियोंके विमान, उन तीन दिशाओंके मध्य दो विदिशाओंके विमान सौधर्म (नामक प्रथम स्वर्ग) संबंधी हैं। शेष दो विदिशाओंके विमान और उत्तर श्रेणीके विमान ईशान स्वर्ग संबंधी हैं। जिन भगवानके द्वारा देखे गये अनुसार इस पटलसे ऊपर संख्यात और असंख्यात योजन ऊपर जानेपर उसी क्रमसे द्वितीय आदि पटल हैं।

---

१. तिलोयपण्णत्ति ८/१५६

पटले पटले प्रतिदिशमेकैकविमानं हीयते यावत् पञ्चानुत्तरपटले चतुर्दिक्ष्वेकैकविमानं तिष्ठति । एते सौधर्मादिविमानाश्चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशतिप्रमिता अकृत्रिम-सुवर्णमयजिनगृहमण्डिता ज्ञातव्या इति ।

अथ देवानामायुःप्रमाणं कथ्यते । भवनवासिषु जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पुनरसुरकुमारेषु सागरोपमं, नागकुमारेषु पल्यत्रयं, सुपर्णे सार्धद्वयं, द्वीपकुमारे द्वयं, शेषकुलषट्के सार्धपल्यमिति । व्यन्तरे जघन्येन दशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण पल्य-मधिकमिति । ज्योतिष्कदेवे जघन्येन पल्याष्टमविभागः, उत्कर्षेण चन्द्रे लक्षवर्षाधिकं पल्यम्, सूर्ये सहस्राधिकं पल्यं, शेषज्योतिष्कदेवानामागमानुसारेणेति । अथ सौधर्मै-शानयोर्जघन्येन साधिकपल्यं, उत्कर्षेण साधिकसागरोपमद्वयं; सानत्कुमार माहेन्द्रयोः साधिकसागरोपमसप्तकं, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः साधिकसागरोपमदशकं, लान्तवकापिष्टयोः साधिकानि चतुर्दशसागरोपमानि, शुक्रमहाशुक्रयोः षोडश साधिकानि, शतारसहस्रार-

---

विशेष यह है कि—चारों श्रेणियोंमें प्रत्येक पटलमें प्रत्येक दिशामें एक-एक विमान कम होता है जब तक कि पांच अनुत्तर पटलमें चारों दिशाओंमें एक-एक विमान रहता है । ये सौधर्म आदि विमान चौरासी लाख, सत्ताणवें हजार, तेईस अकृत्रिम सुवर्णमय जिनगृहोंसे शोभित हैं ऐसा जानना ।

अब देवोंके आयुष्यका प्रमाण कहते हैं । भवनवासी देवोंमें जघन्य आयु दस हजार वर्ष है । असुरकुमार नामक देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागर, नागकुमारोंकी तीन पल्य, सुपर्णकुमारोंकी अढ़ाई पल्य, द्वीपकुमारोंकी दो पल्य, और शेष छह प्रकारके भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयु डेढ़ पल्य है । व्यंतरदेवोंमें जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है । ज्योतिषी देवोंमें जघन्य आयु एक पल्यके आठवें भाग प्रमाण है । चंद्रकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक लाख वर्ष है तथा सूर्यकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक हजार वर्ष है, शेष ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट आयु आगम अनुसार जानना । सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंकी जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक और उत्कृष्ट आयु दो सागरसे कुछ अधिक है । सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी आयु सात सागरसे कुछ अधिक, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें दस सागरसे कुछ अधिक, लांतव कापिष्ठमें चौदह सागरसे कुछ अधिक, शुक्र-महाशुक्रमें सोलह सागर से कुछ अधिक, शतार-सहस्रारमें अठा-

योरष्टादशसाधिकानि, आनतप्राणतयोर्विंशतिरेव, आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिरिति। अतः परमच्युतादूर्ध्वं कल्पातीतनवग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिसागरोपमप्रमाणादूर्ध्वमेकैकसागरोपमे वर्धमाने सत्येकत्रिंशत्सागरोपमान्यवसानग्रैवेयके भवन्ति। नवानुदिशपटले द्वात्रिंशत्, पञ्चानुत्तरपटले त्रयस्त्रिंशत्, उत्कृष्टायुः प्रमाणं ज्ञातव्यम्। तदायुः सौधर्मादिषु स्वर्गेषु यदुत्कृष्टं तत्परस्मिन् परस्मिन् स्वर्गे सर्वार्थसिद्धिं विहाय जघन्यं चेति। शेषं विशेषव्याख्यानं त्रिलोकसारादौ बोद्धव्यम्।

किञ्च—आदिमध्यान्तमुक्ते शुद्धबुद्धैकस्वभावे परमात्मनि सकलविमलकेवलज्ञानलोचनेनादर्शे बिम्बानीव शुद्धात्मादिपदार्था लोक्यन्ते दृश्यन्ते ज्ञायन्ते परिच्छिद्यन्ते। यतस्तेन कारणेन स एव निश्चयलोकस्तस्मिन्निश्चयलोकाख्ये स्वकीयशुद्धपरमात्मनि अवलोकनं वा स निश्चयलोकः। "सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदाय अत्तरुद्दाणि। णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति।१।" इति गाथोदितविभावपरिणाममादिं

रह सागरसे कुछ अधिक, आनत-प्राणतमें बीस सागर ही और आरण-अच्युतमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट आयु है।

इसके पश्चात् अच्युत स्वर्गसे ऊपर कल्पातीत नवग्रैवेयकोंमें प्रत्येकमें क्रमशः बाईस सागर प्रमाणसे एक-एक सागर अधिक-अधिक है और इस प्रकार अंतिम नवमें ग्रैवेयकमें इकत्तीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है। नव अनुदिश पटलमें बत्तीस सागर और पांच अनुत्तर पटलमें तेंतीस सागर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण जानना।

सौधर्म आदि स्वर्गमें जो उत्कृष्ट आयु है वह आयु सर्वार्थसिद्धिके अतिरिक्त ऊपर-ऊपरके स्वर्गमें जघन्य आयु है। शेषका विशेष व्याख्यान त्रिलोकसार आदि में से जानना।

विशेषः—आदि-मध्य-अंत रहित, शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मामें सकल निर्मल केवलज्ञानरूप नेत्र द्वारा दर्पणमें प्रतिबिंबोंके समान, शुद्धात्मा आदि पदार्थ आलोकित होते हैं–दिखलाई देते हैं–ज्ञात होते हैं–परिच्छिन्न होते हैं अतः इस कारण वही (शुद्धात्मा ही) निश्चयलोक है अथवा उस निश्चयलोक नामक अपने शुद्ध परमात्मामें अवलोकन वह निश्चयलोक है। "सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदाय अत्तरुद्दाणि। णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ।। (श्री पंचास्तिकाय गाथा १४०)

[अर्थः—संज्ञा, तीन लेश्या, इन्द्रियोंके वशमें होना, आर्त और रौद्रध्यान, दुष्प्रयुक्त (खोटे कार्यमें जुड़ा हुआ) ज्ञान और मोह–ये सब पाप देने वाले हैं।]"

कृत्वा समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पत्यागेन निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकसुखामृतरसास्वादानुभवनेन च या भावना सैव निश्चयलोकानुप्रेक्षा। शेषा पुनर्व्यवहारेणेत्येवं संक्षेपेण लोकानुप्रेक्षाव्याख्यानं समाप्तम् ॥१०॥

अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षां कथयति। तथाहि एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखव्यावर्त्तनक्रोधादिकषायनिवर्त्तनेषु परं परं दुर्लभेषु कथंचित् काकतालीयन्यायेन लब्धेष्वपि तल्लब्धिरूपबोधेः फलभूतस्वशुद्धात्मसंवित्त्यात्मकनिर्मलधर्मध्यानशुक्लध्यान-

---

इस गाथामें कथित विभावपरिणामसे प्रारंभ करके समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्प त्यागकर, निज शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न परम आह्लादरूप एक सुखामृतके रसास्वादके अनुभवसे जो भावना हो, वही निश्चय लोकानुप्रेक्षा है, शेष व्यवहारसे है।

इस प्रकार संक्षेपसे लोक-अनुप्रेक्षाका व्याख्यान समाप्त हुआ ॥१०॥

अब, बोधिदुर्लभ[1] अनुप्रेक्षा कहते हैं :—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, पर्याप्त, मनुष्य, उत्तमदेश, उत्तमकुल, सुन्दररूप, इन्द्रियोंकी पूर्णता, निरोगपना, लंबी आयु, उत्तमबुद्धि, सत्धर्मका श्रवण, ग्रहण, धारण तथा श्रद्धान, संयम, विषय सुखसे छूटना और क्रोधादि कषायोंकी निवृत्ति—ये सब उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। कदाचित् काकतालीय न्यायसे ये सब प्राप्त होने पर भी उनकी प्राप्तिरूप 'बोधि' के फलभूत ऐसी स्वशुद्धात्माके संवेदनात्मक[2] निर्मल धर्मध्यान-शुक्लध्यानरूप परम समाधि दुर्लभ है।

---

१. बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षाके संबंधमें श्री जयचंदजी पंडित कृत 'बारह भावना' ग्रन्थमें कहा है कि—

बोधि आपका भाव है निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भवमें प्राप्ति कठिन है यह व्यवहार कहाहिं ॥ (बोधि दुर्लभ)

अर्थ—बोधि (ज्ञान) आत्माका स्वभाव है, अतः वह निश्चयसे दुर्लभ नहीं है। संसारमें आत्मज्ञान (बोधि) को दुर्लभ तो व्यवहारनयसे कहा गया है। (देखो, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग १ पृ० ३६ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुरसे प्रसिद्ध-प्रकाशित)

२. श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वादशानुप्रेक्षा गाथा ८४ में कहते हैं :—"कर्मोदयसे उत्पन्न पर्यायके कारण क्षायोपशमिक ज्ञान हेय है तथा निज आत्मद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय होना वह सम्यग्ज्ञान है।"

तथा गाथा ८६ में कहते हैं कि :—"इस प्रकारसे स्वद्रव्य तथा परद्रव्यका चिंतवन करनेसे हेय उपादेयका ज्ञान होता है, परन्तु निश्चयनयमें हेय-उपादेयका विकल्प नहीं है। मुनियोंको संसारका विराम करनेके लिये बोधिका चिंतवन करना चाहिये।" (बोधि दुर्लभ भावना)

रूपः परमसमाधिर्दुर्लभः । कस्मादिति चेत्तत्प्रतिबन्धकमिथ्यात्वविषयकषायनिदानबन्धादि-विभावपरिणामानां प्रबलत्वादिति । तस्मात् स एव निरन्तरं भावनीयः । तद्भावना-रहितानां पुनरपि संसारे पतनमिति । तथा चोक्तम्—"इत्यतिदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात् । संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम् ।१।" पुनश्चोक्तं मनुष्यभवदुर्लभत्वम्—"अशुभपरिणामबहुलता लोकस्य विपुलता, महामहती । योनि-विपुलता च कुरुते सुदुर्लभां मानुषीं योनिम् । १ ।" बोधिसमाधिलक्षणं कथ्यते—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तप्रापणं बोधिस्तेषामेव निर्विघ्नेन भवान्तरप्रापणं समाधि-रिति । एवं संक्षेपेण दुर्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ।। ११ ।।

अथ धर्मानुप्रेक्षां कथयति । तद्यथा—संसारे पतन्तं जीवमुद्धृत्य नागेन्द्र-नरेन्द्रदेवेन्द्रादिवन्द्ये अव्याबाधानंतसुखाद्यनंतगुणलक्षणे मोक्षपदे धरतीति धर्मः । तस्य

प्रश्न—परमसमाधि दुर्लभ किस प्रकार है ?

समाधान—उसे (परमसमाधिको) रोकनेवाले मिथ्यात्व, विषय, कषाय, निदानबंध आदि विभाव परिणामोंका (जीवमें) प्रबलपना है अतः (परमसमाधि दुर्लभ है ।) अतः वह (परमसमाधि) ही निरन्तर भावना करने योग्य है । उस भावनासे रहित जीवोंका पुनः पुनः संसारमें पतन होता है । कहा है :—"जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ ऐसी 'बोधि' को प्राप्तकर भी प्रमादी होता है तो वह बेचारा संसाररूपी भयंकर वनमें लम्बे समय तक भ्रमण करता है ।"[1]

तथा मनुष्यभवकी दुर्लभताके विषयमें कहा है— [2]"अशुभ परिणामोंकी बहुलता, संसारकी विशालता, योनियोंकी अत्यन्त विपुलता—यह सब मनुष्य योनिको बहु दुर्लभ करते हैं ।।१।।"

अब बोधि और समाधिका लक्षण कहते हैं । प्राप्त नहीं किये हुए सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति करना वह बोधि है और उनको (सम्यग्दर्शनादिको) ही निर्विघ्नरूपसे अन्य भवमें साथ ले जाना वह समाधि है । इस प्रकार संक्षेपमें (बोधि) दुर्लभ अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ।।११।।

अब धर्म अनुप्रेक्षा कहते हैं । वह इस प्रकार है—संसारमें गिरते हुए जीवका उद्धार करके नागेन्द्र, चक्रवर्ती, देवेन्द्र आदिसे पूज्य, अव्याबाध अनंत

---

१. परमात्मप्रकाश गाथा ९ टीका

२. अज्ञात शास्त्र

च भेदाः कथ्यन्ते—अहिंसालक्षणः सागारानगारलक्षणो वा उत्तमक्षमादिलक्षणो वा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मको वा शुद्धात्मसंवित्त्यात्मकमोहक्षोभरहितात्मपरिणामो वा धर्मः । अस्य धर्मस्यालाभेऽतीतानन्तकाले "णिच्चिदरधाउसत्त य तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव । सुरणिरयतिरियचउरो चउदस मणुयेसु सदसहस्सा ।१।" इति गाथाकथित-चतुरशीतियोनिलक्षेषु मध्ये परमस्वास्थ्यभावनोत्पन्ननिर्व्याकुलपारमार्थिकसुखविलक्षणानि पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषजनितव्याकुलत्वोत्पादकानि दुःखानि सहमानः सन् भ्रमितोऽयं जीवः । यदा पुनरेवंगुणविशिष्टस्य धर्मस्य लाभो भवति तदा राजाधिराजार्द्धमाण्डलिक-महामाण्डलिकबलदेववासुदेवकामदेवसकलचक्रवर्तिदेवेन्द्रगणधरदेवतीर्थंकरपरमदेव प्रथम-कल्याणत्रयपर्यन्तं विविधाभ्युदयसुखं प्राप्य पश्चादभेदरत्नत्रयभावनाबलेनाक्षयानतसुखादि-

---

सुखादि अनंत गुणोंरूप लक्षणवाले मोक्षपदमें जो धरता है वह धर्म है। उस धर्मके भेद कहे जाते हैं। अहिंसा लक्षणयुक्त, गृहस्थ[1] और मुनिरूप लक्षणयुक्त, उत्तमक्षमादि लक्षणयुक्त, निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयात्मक अथवा शुद्धात्माके संवेदनरूप मोह-क्षोभ रहित आत्माका परिणाम धर्म है। इस धर्मकी प्राप्ति नहीं होनेसे अनंत भूतकालमें "णिच्चिदरधाउसत्त य तरुदस वियलेंदियेसु छच्चेव। सुरणिरयतिरियचउरो चउदस मणुयेसु सदसहस्सा ॥ [अर्थः—वनस्पतिमें सात लाख, नित्य तथा इतर निगोद वनस्पतिमें सात-सात लाख, पृथ्वीकायमें सात लाख, जलकायमें सात लाख, तेजकायमें सात लाख, वायुकायमें सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिमें दस लाख, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमें दो-दो लाख, देव-नारकी और तिर्यंचमें चार-चार लाख तथा मनुष्योंमें चौदह लाख]"—इस प्रकार इस गाथामें[2] कहे अनुसार चौरासी लाख योनियों में, परम स्वास्थ्यभावनासे उत्पन्न निर्व्याकुल पारमार्थिकसुखसे विपरीत पंचेन्द्रिय सुखकी अभिलाषासे उत्पन्न व्याकुलताको उत्पन्न करने वाले दुःखोंको सहन करते हुए इस जीवने भ्रमण किया है। जब जीवको इस प्रकारके विशिष्ट गुण वाले धर्मकी प्राप्ति होती है तब राजाधिराज, अर्धमांडलिक, महामांडलिक, बलदेव, वासुदेव, कामदेव, चक्रवर्ती, देवेन्द्र, गणधर देव और तीर्थंकर परमदेवके पद तथा तीर्थंकरके प्रथम तीन कल्याणकों (गर्भ,

---

१. श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव धर्म अनुप्रेक्षा गाथा ८२ में कहते हैं :—"निश्चयनयसे जीव गृहस्थ-धर्म और मुनिधर्मसे भिन्न है, अतः दोनों धर्मोंमें मध्यस्थ भावना रखकर निरन्तर शुद्ध आत्माका चिंतवन करना।"

२. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा—८९

गुणास्पदमर्हत्पदं सिद्धपदं च लभते । तेन कारणेन धर्म एव परमरसरसायनं निधिनिधानं कल्पवृक्षः कामधेनुश्चिन्तामणिरिति । किं बहुना, ये जिनेश्वरप्रणीतं धर्मं प्राप्य दृढमतयो जातास्त एव धन्याः । तथा चोक्तम् "धन्या ये प्रतिबुद्धा धर्मे खलु जिनवरैः समुपदिष्टे । ये प्रतिपन्ना धर्मं स्वभावनोपस्थितमनीषाः ।१।" इति संक्षेपेण धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ।।१२।।

इत्युक्तलक्षणा अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मतत्त्वानुचिन्तनसंज्ञा निरास्रवशुद्धात्मतत्त्वपरिणतिरूपस्य संवरस्य कारणभूता द्वादशानुप्रेक्षाः समाप्ताः ।

अथ परीषहजयः कथ्यते—क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानीति

जन्म और तप) तकके विविध प्रकारके वैभवके सुख प्राप्त कर, तत्पश्चात् अभेद रत्नत्रयकी भावनाके बलसे अक्षय अनंत सुखादि गुणोंके स्थानभूत अर्हंतपद और सिद्धपदको प्राप्त करता है । इस कारण धर्म ही परम रसका रसायन, निधियोंका निधान, कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि है । विशेष क्या कहना ? जो जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित धर्मको प्राप्त कर दृढ़ श्रद्धावान् (सम्यक्दृष्टि) हुए हैं वे ही धन्य हैं । कहा भी है कि "धन्या ये प्रतिबुद्धा धर्मे खलु जिनवरैः समुपदिष्टे । ये प्रतिपन्ना धर्मं स्वभावनोपस्थितमनीषाः ।।"[1] [अर्थः—जिनवरों द्वारा सम्यक् प्रकारसे उपदेशित धर्मसे जिन्होंने प्रतिबोध प्राप्त किया है वे वास्तवमें धन्य हैं और जिन्होंने स्वभावनामें अपनी बुद्धि जोड़कर (लगाकर) धर्म प्राप्त किया है उनको धन्य है ।]"

इस प्रकार संक्षेपमें धर्म-अनुप्रेक्षा समाप्त हुई ।।१२।।

इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणवाली अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मतत्त्वके चिंतनरूप संज्ञावाली, आस्रव रहित शुद्धात्मतत्त्वमें परिणतिरूप संवरके कारणभूत बारह अनुप्रेक्षायें समाप्त हुईं ।

अब परीषह जयका कथन करते हैं:—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, नग्नपना, अरति, स्त्री, गमन, आसन, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन—ये बाईस परीषह

---

१. अज्ञात शास्त्र

द्वाविंशतिपरीषहा विज्ञेयाः। तेषां क्षुधादिवेदनानां तीव्रोदयेऽपि सुखदुःखजीवितमरणलाभालाभनिंदाप्रशंसादिसमतारूपपरमसामायिकेन नवतरशुभाशुभकर्मसंवरणचिरंतनशुभाशुभकर्मनिर्जरणसमर्थेनायं निजपरमात्मभावनासंजातनिर्विकारनित्यानंदलक्षणसुखामृतसंवित्तेरचलनं स परीषहजय इति।

अथ चारित्रं कथयति। शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयपरिणते स्वशुद्धात्मस्वरूपे चरणमवस्थानं चारित्रम्। तच्च तारतम्यभेदेन पञ्चविधम्। तथाहि—सर्वे जीवाः केवलज्ञानमया इति भावनारूपेण समतालक्षणं सामायिकम्, अथवा परमस्वास्थ्यबलेन युगपत्समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पत्यागरूपसमाधिलक्षणं वा, निर्विकारस्वसंवित्तिबलेन रागद्वेषपरिहाररूपं वा, स्वशुद्धात्मानुभूतिबलेनार्त्तरौद्रपरित्यागरूपं वा, समस्तसुखदुःखादिमध्यस्थरूपं चेति। अथ छेदोपस्थापनं कथयति—यदा युगपत्समस्तविकल्पत्यागरूपे परमसामायिके स्थातुमशक्तोऽयं जीवस्तदा समस्तहिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतमित्यनेन पञ्चप्रकारविकल्पभेदेन व्रतच्छेदेन रागादिविकल्प-

---

जानना। उन क्षुधादि वेदनाओंका तीव्र उदय होने पर भी, सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, निंदा-प्रशंसा आदिमें समतारूप परम सामायिक द्वारा—कि जो (परम-सामायिक) नये शुभाशुभ कर्मोंका संवर करनेमें और पूर्व शुभाशुभ कर्मोंकी निर्जरा करनेमें समर्थ है उसके द्वारा—निज परमात्मभावनासे उत्पन्न निर्विकार, नित्यानंदलक्षण सुखामृतके अनुभवमेंसे चलित न होना वह परीषहजय है।

अब, चारित्रका कथन करते हैं:—शुद्धोपयोगलक्षण निश्चयरत्नत्रयमयी परिणतिरूप निजशुद्धात्मस्वरूपमें जो चरना-स्थिति करना वह चारित्र है। वह तारतम्यभेदसे पांच प्रकारका है। वह इस प्रकार—सर्व जीव केवलज्ञानमय हैं ऐसी भावनासे जो समतारूप परिणाम वह सामायिक है अथवा परम स्वास्थ्यके बलसे युगपत् समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पोंके त्यागरूप समाधि जिसका लक्षण है वह सामायिक है अथवा निर्विकार स्वसंवेदनके बलसे रागद्वेषके परिहाररूप सामायिक है अथवा निजशुद्धात्माके अनुभवके बलसे आर्त और रौद्रध्यानके परित्यागरूप सामायिक है अथवा समस्त सुख-दुःखादिमें मध्यस्थभावरूप सामायिक है।

अब, छेदोपस्थापनका कथन करते हैं: जब एक साथ समस्त विकल्पोंके त्यागरूप परम सामायिकमें स्थित होनेमें यह जीव अशक्त होता है, तब 'समस्त हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरति वह व्रत है'—इसप्रकार इस पांच प्रकारके विकल्पभेद द्वारा—व्रतरूप छेद द्वारा रागादि विकल्परूप सावद्योंसे

रूपसावद्येभ्यो निवर्त्य निजशुद्धात्मन्यात्मानमुपस्थापयतीति छेदोपस्थापनम् । अथवा छेदे व्रतखण्डे सति निर्विकारस्वसंवित्तिरूपनिश्चयप्रायश्चित्तेन तत्साधकबहिरंग-व्यवहारप्रायश्चित्तेन वा स्वात्मन्युपस्थापनं छेदोपस्थापनमिति । अथ परिहारविशुद्धिं कथयति—"तीसं वासो जम्मे वासपुहत्तं खु तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढिदो संज्झूण दुगाउ य विहारो ।१।" इति गाथाकथितक्रमेण मिथ्यात्वरागादिविकल्पमलानां प्रत्याख्यानेन परिहारेण विशेषेण स्वात्मनः शुद्धिर्नैर्मल्यं परिहारविशुद्धिश्चारित्रमिति । अथ सूक्ष्मसाम्परायचारित्रं कथयति । सूक्ष्मातीन्द्रियनिजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन सूक्ष्मलोभा-भिधानसाम्परायस्य कषायस्य यत्र निरवशेषोपशमनं क्षपणं वा तत्सूक्ष्मसाम्पराय-चारित्रमिति । अथ यथाख्यातचारित्रं कथयति—यथा सहजशुद्धस्वभावत्वेन निष्कम्प-त्वेन निष्कषायमात्मस्वरूपं तथैवाख्यातं कथितं यथाख्यातचारित्रमिति ।

इदानीं सामायिकादिचारित्रपञ्चकस्य गुणस्थानस्वामित्वं कथयति । प्रमत्ता-

---

अपनेको निवृत्त करके निजशुद्धात्मामें स्वयंको स्थापित करता है वह छेदोपस्थापन है अथवा छेद अर्थात् व्रतका भंग होनेपर निर्विकार स्वसंवेदनरूप निश्चय-प्रायश्चित्तसे अथवा उसके साधक बहिरंग व्यवहार-प्रायश्चित्तसे अपने आत्मामें स्थित होना वह छेदोपस्थापन है। अब, परिहारविशुद्धिका कथन करते हैं: "तीसं वासो जम्मे वासपुहत्तं खु तित्थयरमूले । पच्चक्खाणं पढिदो संज्झूण दुगाउ य विहारो ॥[1] [अर्थः—जो जन्मसे तीस वर्ष सुखमें व्यतीत करके, वर्ष पृथकत्व (आठ वर्ष) तक तीर्थंकरके चरणोंमें प्रत्याख्यान नामक नवम् पूर्व पढ़कर, तीनों संध्याकालके अतिरिक्त समयमें प्रतिदिन दो कोस गमन करता है]"—इस गाथामें कथित क्रम अनुसार मिथ्यात्व, राग आदि विकल्पमलोंके प्रत्याख्यानसे—'परिहारसे' अपने आत्माकी जो विशेषरूपसे 'शुद्धि' अर्थात् निर्मलता है वह परिहारविशुद्धि चारित्र है।

अब, सूक्ष्मसांपराय चारित्रका कथन करते हैं:—सूक्ष्म अतीन्द्रिय निज-शुद्धात्मसंवेदनके बलसे सूक्ष्मलोभ नामक सांपरायका-कषायका जहाँ पूर्णरूपसे उपशम अथवा क्षय होता है वह सूक्ष्मसांपराय चारित्र है।

अब, यथाख्यात चारित्रका कथन करते हैं:—'यथा' अर्थात् जैसा, सहज शुद्धस्वभावपनेके कारण, निष्कंपपनेके कारण, निष्कषाय (कषाय रहित) आत्माका स्वरूप है वैसाही जो 'आख्यात' अर्थात् कहा गया है वह यथाख्यात चारित्र है।

अब, सामायिकादि पांच प्रकारके चारित्रका गुणस्थान स्वामित्व कहते हैं—

---

१. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा—४७३

प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिसंज्ञगुणस्थानचतुष्टये सामायिकचारित्रं भवति छेदोपस्थापनं च, परिहारविशुद्धिस्तुप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वये, सूक्ष्मसांपरायचारित्रं पुनरेकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने, यथाख्यातचारित्रमुपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगिजिनायोगिजिनाभिधानगुणस्थानचतुष्टये भवतीति । अथ संयमप्रतिपक्षं कथयति — संयमासंयमसंज्ञं दार्शनिकाद्येकादशभेदभिन्नं देशचारित्रमेकस्मिन्नेव पञ्चमगुणस्थाने ज्ञातव्यम् । असंयमस्तु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिसंज्ञगुणस्थानचतुष्टये भवति । इति चारित्रव्याख्यानं समाप्तम् ।

एवं व्रतसमितिगुप्तिधर्मद्वादशानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्राणां भावसंवरकारणभूतानां यद्व्याख्यानं कृतं, तत्र निश्चयरत्नत्रयसाधकव्यवहाररत्नत्रयरूपस्य शुभोपयोगस्य प्रतिपादकानि यानि वाक्यानि तानि पापास्रवसंवरणानि ज्ञातव्यानि । यानि तु व्यवहाररत्नत्रयसाध्यस्य शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयस्य प्रतिपादकानि तानि

प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक चार गुणस्थानोंमें सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापन चारित्र होता है । परिहारविशुद्धि चारित्र प्रमत्त और अप्रमत्त—इन दो गुणस्थानोंमें होता है । सूक्ष्मसांपराय चारित्र एक सूक्ष्मसांपराय (दसवें) गुणस्थानमेंही होता है । यथाख्यात चारित्र उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगीजिन और अयोगीजिन नामक चार गुणस्थानोंमें होता है ।

अव, संयमके प्रतिपक्षका कथन करते हैं । दार्शनिक आदि ग्यारह प्रतिमाओंके भेदयुक्त, संयमासंयम नामक देशचारित्र–पांचवें गुणस्थानमें ही जानना । मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चार गुणस्थानोंमें असंयम होता है । इस प्रकार चारित्रका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

इसप्रकार व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्ररूप भावसंवरके कारणोंका जो व्याख्यान किया उसमें निश्चयरत्नत्रयके साधक व्यवहार-रत्नत्रयरूप शुभोपयोगके प्रतिपादन करनेवाले जो वाक्य हैं उन्हें पापास्रवके संवरके कारण[1] जानना और जो व्यवहार–रत्नत्रयसे साध्य शुद्धोपयोग

---

१. व्यवहार कारण हैं । निश्चयनयसे त्रिकाल शुद्ध आत्माके आश्रयसे उत्पन्न शुद्धता पापके संवररूप है । (देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा १४१ टीका)

पुण्यपापद्वयसंवरकारणानि भवन्तीति ज्ञातव्यम् । अत्राह सोमनामराजश्रेष्ठी—भगवन्नेतेषु व्रतादिसंवरकारणेषु मध्ये संवरानुप्रेक्षैव सारभूता, सा चैव संवरं करिष्यति किं विशेषप्रपञ्चेनेति । भगवानाह—त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्थानां यतीनां तयैव पूर्यते तत्रासमर्थानां पुनर्बहुप्रकारेण संवरप्रतिपक्षभूतो मोहो विजृम्भते, तेन कारणेन व्रतादि-विस्तरं कथयन्त्याचार्याः "असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं तु होइ चुलसीदी । सत्तट्ठी अण्णाणीणं वेणइयाणं हुंति बत्तीसं ।१। जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति । अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधो ठिदिकारणं णत्थि ।२।" ॥३५॥ एवं संवरतत्त्वव्याख्याने सूत्रद्वयेन तृतीयं स्थलं गतम् ।

लक्षण वाले निश्चयरत्नत्रयका प्रतिपादन करने वाले वाक्य हैं उन्हें पुण्य-पाप इन दोनोंके संवरके कारण जानना[1] ।

यहां सोम नामक राजश्रेष्ठी कहता है कि हे भगवान् ! इन व्रतादि संवरके कारणोंमें संवर-अनुप्रेक्षा ही सारभूत है, वही संवर करेगी, तो फिर विशेष विस्तारसे क्या लाभ ? भगवान नेमिचन्द्र आचार्य कहते हैं—त्रिगुप्तिलक्षणयुक्त निर्विकल्प समाधिमें स्थित मुनियोंको उससे ही (संवर अनुप्रेक्षासे ही) संवर हो जाता है परन्तु उसमें असमर्थ जीवोंको अनेक प्रकारसे संवरका प्रतिपक्षी ऐसा मोह उत्पन्न होता है इस कारण आचार्य व्रतादिका विस्तार-कथन करते हैं। "असिदिसदं किरियाणं अक्किरियाणं तु होइ चुलसीदी । सत्तट्ठी अण्णाणीणं वेणइयाणं हुंति बत्तीसं ॥[2] [अर्थः—क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी, अक्रियावादियोंके चौरासी, अज्ञानियोंके सड़सठ और वैनयिकोंके बत्तीस, इसप्रकार पाखंडियोंके कुल तीनसौ तरेसठ भेद हैं ।]" "जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति । अपरिण-दुच्छिण्णेसु य बंधो ठिदिकारणं णत्थि ॥[3] [अर्थः—योगसे प्रकृति और प्रदेश तथा कषायसे स्थिति और अनुभागबंध होता है, जिनको कषायका उदय नहीं है तथा कषायोंका क्षय हुआ है उनको (उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगी केवलीको) तत्कालबंध (एकसमयका बंध) स्थितिका कारण नहीं है ।]" ॥३५॥

इसप्रकार संवरतत्त्वके व्याख्यानमें दो सूत्रों द्वारा तृतीय स्थल पूर्ण हुआ ।

---

१. देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा १४२ टीका

२. श्री गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ८७६

३. श्री गोम्मटसार कर्मकांड गाथा २५७

अथ सम्यग्दृष्टिजीवस्य संवरपूर्वकं निर्जरातत्त्वं कथयतिः—

जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

यथाकालेन तपसा च भुक्तरसं कर्म्मपुद्गलं येन ।
भावेन सडति ज्ञेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥३६॥

व्याख्या :—"णेया" इत्यादिव्याख्यानं क्रियते—"णेया" ज्ञातव्या । का ? "णिज्जरा" भाव निर्जरा । सा का ? निर्विकारपरमचैतन्यचिच्चमत्कारानुभूतिसञ्जातसहजानन्दस्वभावसुखामृतरसास्वादरूपो भाव इत्यध्याहारः । "जेण भावेण" येन भावेन जीवपरिणामेन । किं भवति "सडदि" विशीर्यते पतति गलति विनश्यति । किं

अब, सम्यग्दृष्टि जीवको संवर पूर्वक निर्जरातत्त्व कहते हैं:—

गाथा-३६

गाथार्थः—(आत्माके) जिस भावसे यथासमय अथवा तप द्वारा फल देकर कर्म पुद्गल नष्ट होते हैं उसे निर्जरा (भावनिर्जरा) जानना तथा कर्म पुद्गलोंका नष्ट होना उसे निर्जरा (द्रव्यनिर्जरा) जानना । इसप्रकार निर्जरा दो प्रकारकी है ।

टीकाः—"णेया" आदि सूत्रका व्याख्यान करते है : "णेया"—जानना । क्या ? "णिज्जरा"—भाव निर्जरा । वह कौनसी ? निर्विकार परम चैतन्यरूप चित्चमत्कारके अनुभवसे उत्पन्न सहजानन्द जिसका स्वभाव है ऐसे सुखामृत रसके आस्वादरूप भाव—वह भावनिर्जरा[1] है । "जेण भावेण"—जिस भावसे–जीवके परिणामसे । क्या होता है ? "सडदि" जीर्ण होता है–गिर जाता है–गल जाता है–नष्ट होता है । कौन (नष्ट होता है) ? "कम्मपुग्गलं" कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट करने वाले

---

१. चौथे गुणस्थानसे भावनिर्जरा प्रारम्भ होती है अतः उस गुणस्थानसे निर्विकार चैतन्यरूप चित्चमत्कारके अनुभवसे उत्पन्न सहजानंदमय सुखामृत होता है ऐसा समझना । श्री जयसेनाचार्य श्री पंचास्तिकाय गाथा १६३ की टीकामें कहते हैं कि 'उस अनंत सुखको भव्य जीव जानता है, उपादेयरूपसे श्रद्धा करता है और अपने-अपने गुणस्थान अनुसार अनुभव करता है ।' (देखो, गुजराती पंचास्तिकाय पृ० २३९)

जथा काल अर तप–परभाव, कर्म निर्जरै रस दे जाय ।
जिनि भावनितैं होय सुभाव, कर्म झड़ै, इम दोय गिनाव ॥३६॥

कर्तृ ? "कम्मपुग्गलं" कर्मारिविध्वंसकस्वकीयशुद्धात्मनो विलक्षणं कर्मपुद्गलद्रव्यं। कथंभूतं ? "भुत्तरसं" स्वोदयकालं प्राप्य सांसारिकसुखदुःखरूपेण भुक्तरसं दत्तफलं। केन कारणभूतेन गलति ? "जहकालेण" स्वकालपच्यमानाम्रफलवत्सविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिपरिणामस्य वहिरंगसहकारिकारणभूतेन काललब्धिसंज्ञेन यथाकालेन, न केवलं यथाकालेन "तवेण य" अकालपच्यमानानामाम्रादिफलवदविपाकनिर्जरापेक्षया, अभ्यन्तरेण समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेन बहिरंगेणान्तस्तत्त्वसंवित्तिसाधकसंभूतेनानशनादिद्वादशविधेन तपसा चेति। "तस्सडणं" कर्म्मणो गलनं यच्च सा द्रव्यनिर्जरा। ननु पूर्वं यदुक्तं "सडदि" तेनैव द्रव्यनिर्जरा लब्धा, पुनरपि, "सडणं" किमर्थं भणितम् ? तत्रोत्तरम्—तेन सडदिशब्देन निर्मलात्मानुभूतिग्रहणभावनिर्जराभिधानपरिणामस्य सामर्थ्यमुक्तं, न च द्रव्यनिर्जरेति। "इदि दुविहा" इति द्रव्यभावरूपेण निर्जरा द्विविधा भवति।

अत्राह शिष्यः—सविपाकनिर्जरा नरकादिगतिष्वज्ञानिनामपि दृश्यते संज्ञा-

---

अपने शुद्धात्मासे विपरीत कर्मरूपी पुद्गल द्रव्य। कैसा होकर ? "भुत्तरसं" अपने उदयका काल प्राप्त होने पर जीवको सांसारिक सुख अथवा दुःखरूप फल देकर। किस कारणसे गलता है ? "जहकालेण" अपने समय पर पकनेवाले आमकी भांति सविपाक निर्जराकी अपेक्षासे अंतरंगमें निज शुद्धात्माके अनुभवरूप परिणामके बहिरंग सहकारी कारणभूत काललब्धिरूप यथासमय पर (निर्जरित होता है)। मात्र यथासमय पर ही नहीं निर्जरित होता किन्तु "तवेण य" अकालमें पकने वाले आमकी भांति अविपाक निर्जराकी अपेक्षासे तपसे भी निर्जरित होता है—कि जो तप समस्त परद्रव्योंकी इच्छाके निरोधरूप अभ्यंतर होता है और अंतःतत्त्वके, संवेदनके साधनभूत अनशन आदि बारह प्रकारका वहिरंग होता है। "तस्सडणं" कर्मका जो गलना वह द्रव्य-निर्जरा है।

शंकाः—पहले जो "सडदि" कहा था उसीसे द्रव्य-निर्जराका कथन हो गया, तो फिर पुनः "सडणं" शब्द किसलिये कहा है ?

समाधानः—पहले जो "सडदि" शब्द कहा था उसके द्वारा निर्मल आत्माके अनुभवका ग्रहण करनेवाले भावनिर्जरा नामक परिणामके सामर्थ्यका कथन किया था, द्रव्य-निर्जराका नहीं। "इदि दुविहा" इसप्रकार द्रव्य और भावरूप निर्जरा दो प्रकार है।

यहां शिष्य पूछता है—सविपाकनिर्जरा नरकादि गतियोंमें अज्ञानियोंको

निनामेवेति नियमो नास्ति। तत्रोत्तरम्—अत्रैवमोक्षकारणं या संवरपूर्विका निर्जरा सैव ग्राह्या। या पुनरज्ञानिनां निर्जरा सा गजस्नानवन्निष्फला। यतः स्तोकं कर्म निर्जरयति बहुतरं बध्नाति, तेन कारणेन सा न ग्राह्या। या तु सरागसद्दृष्टीनां निर्जरा सा यद्यप्यशुभकर्मविनाशं करोति तथापि संसारस्थितिं स्तोकां कुरुते। तद्भवे तीर्थंकरप्रकृत्यादिविशिष्टपुण्यबन्धकारणं भवति पारम्पर्येण मुक्तिकारणं चेति। वीतरागसद्दृष्टीनां पुनः पुण्यपापद्वयविनाशे तद्भवेऽपि मुक्तिकारणमिति। उक्तं च श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः "जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसदसहस्सकोडीहिं। तं णाणी तिहिंगुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ॥१॥" कश्चिदाह—सद्दृष्टीनां वीतरागविशेषणं किमर्थं, "रागादयो हेयो, मदीया न भवन्ति" इति भेदविज्ञाने जाते सति रागानुभवेऽपि ज्ञानमात्रेण मोक्षो भवतीति। तत्र परिहारः। अन्धकारे पुरुषद्वयम् एकः प्रदीपहस्त-

---

भी देखी जाती है। वह सम्यग्ज्ञानियोंको ही हो ऐसा नियम नहीं है। उसका उत्तर—यहां जो संवरपूर्वककी मोक्षके कारणरूप निर्जरा है वही ग्रहण करना। जो अज्ञानियोंकी निर्जरा है वह तो गजस्नानवत् निष्फल है क्योंकि अल्प कर्म खिरता है और वह बहुत अधिक बांधता है इस कारण वह ग्रहण करने योग्य नहीं है। सराग सम्यग्दृष्टियोंकी[1] जो निर्जरा है वह यद्यपि अशुभ कर्मोका विनाश करती है तो भी संसारकी स्थिति घटाती है, उस भवमें तीर्थंकर प्रकृति आदि विशिष्ट प्रकारके पुण्यबंधका कारण होती है और परम्परासे मोक्षका कारण होती है। वीतराग सम्यग्दृष्टियोंके पुण्य और पाप दोनोंका नाश होनेपर उस भवमें भी मुक्तिका कारण होती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवने वही कहा है : "अज्ञानी जो कर्म लाख करोड़ भवोंमें नाश करता है वे कर्म, ज्ञानी त्रिगुप्तिमें गुप्त होकर उच्छ्वासमात्रमें नाश करता है।"[1]

कोई कहता है कि सम्यग्दृष्टियोंको[2] 'वीतराग' विशेषणका क्या प्रयोजन है ? 'रागादि हेय हैं, ये भाव मेरे नहीं हैं' इसप्रकार भेदविज्ञान होनेपर, उनको रागका अनुभव होने पर भी, ज्ञानमात्रसे मोक्ष हो जाता है। (तो फिर 'वीतराग'

---

१. श्री प्रवचनसार गाथा २३८।

२. यहां जो सरागसम्यग्दृष्टि कहे हैं उन जीवोंको सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है परन्तु चारित्र अपेक्षासे उन्हें मुख्यरूपसे रागका अस्तित्व होनेसे उन्हें 'सराग सम्यग्दृष्टि' कहा है तथा उनके जो शुभ अनुष्ठान है वह मात्र उपचारसे ही 'निश्चय साधक (निश्चयका साधनभूत) कहा गया है ऐसा समझना। (देखो 'श्री पंचास्तिकाय संग्रह' पृष्ठ २५७-२५८ फुटनोट)

स्तिष्ठति, अन्यः पुनरेकः प्रदीपरहितस्तिष्ठति । स च कूपे पतनं सर्पादिकं वा न जानाति, तस्य विनाशे दोषो नास्ति । यस्तु प्रदीपहस्तस्तस्य कूपपतनादिविनाशे प्रदीपफलं नास्ति । यस्तु कूपपतनादिकं त्यजति तस्य प्रदीपफलमस्ति । तथा कोऽपि रागादयो हेया मदीया न भवन्तीति भेदविज्ञानं न जानाति स कर्मणा बध्यते तावत्, अन्यः कोऽपि रागादिभेदविज्ञाने जातेऽपि यावतांशेन रागादिकमनुभवति तावतांशेन सोऽपि बध्यते एव, तस्यापि रागादिभेदविज्ञानफलं नास्ति । यस्तु रागादि-भेदविज्ञाने जाते सति रागादिकं त्यजति तस्य भेदविज्ञानफलमस्तीति ज्ञातव्यम् । तथा चोक्तं—"चक्खुस्स दंसणस्स य सारो सप्पादिदोसपरिहारं । चक्खू होइ णिरत्थं दट्ठूण बिले पडंतस्स" ॥३६॥ एवं निर्जराव्याख्याने सूत्रेणैकेन चतुर्थस्थलं गतम् ।

अथ मोक्षतत्त्वमावेदयतिः—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

विशेषणका क्या प्रयोजन है ?)

समाधानः—अंधकारमें दो मनुष्य हैं, एकके हाथमें दीपक है और दूसरा दीपक रहित है, उस (दीपक रहित) मनुष्यको कुएंमें गिरने अथवा सर्पादिका ज्ञान नहीं है अतः उसका विनाश हो तो उसमें उसका दोष नहीं है । परन्तु जिसके हाथमें दीपक है वह कुएंमें गिरने आदिसे विनाशको प्राप्त हो तो उसे दीपकका फल प्राप्त नहीं हुआ । जो कुएंमें गिरने आदिसे बचता है उसे दीपक रखनेका फल है । उसीप्रकार कोई भी जीव 'रागादि हेय हैं, मेरे भाव नहीं हैं' इसप्रकार भेदविज्ञान नहीं जानता है तबतक तो वह कर्मसे बंधता है और अन्य कोई जीव रागादिसे भेदविज्ञान होने पर भी जितने अंशमें रागादिका अनुभव करता है उतने अंशमें वह भी बंधता ही है, उसे भी रागादिके भेदविज्ञानका फल नहीं है । जो रागादिसे भेदविज्ञान होने पर रागादिका त्याग करता है उसे भेदविज्ञानका फल है ऐसा जानना । वही कहा है—'चक्षुसे देखनेका फल सर्पादि दोषका त्याग है, देखने पर भी सर्पके बिलमें पड़नेवालेके नेत्र निरर्थक हैं ।'[1]

इस प्रकार निर्जरातत्त्वके व्याख्यानमें एक सूत्रसे चौथा स्थल पूर्ण हुआ ॥३६॥

अब मोक्षतत्त्वका कथन करते हैं :—

---

१. श्री भगवती आराधना गाथा १२

सर्व कर्मका क्षयकर भाव, चेतनकै है मोक्षसुभाव ।
कर्म जीव न्यारे जो होय, द्रव्य-विमोक्ष कहावै सोय ॥३७॥

सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः ।
ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्म्मपृथग्भावः ॥३७॥

व्याख्या—यद्यपि सामान्येन निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलंकस्याशरीरस्यात्मन आत्यन्तिकस्वाभाविकाचिन्त्याद्भुतानुपमसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणास्पदमवस्थान्तरं मोक्षो भण्यते तथापि विशेषेण भावद्रव्यरूपेण द्विधा भवतीति वार्तिकम् । तद्यथा—"णेयो स भावमुक्खो" णेयो ज्ञातव्यः स भावमोक्षः । स कः ? "अप्पणो हु परिणामो" निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररूपो "हु" स्फुटमात्मनः परिणामः । कथंभूतः ? "सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू" सर्वस्य द्रव्यभावरूपमोहनीयादिघातिचतुष्टयकर्मणो यः क्षयहेतुरिति । द्रव्यमोक्षं कथयति । "दव्वविमुक्खो" अयोगिचरमसमये द्रव्यविमोक्षो भवति । कोऽसौ ? "कम्मपुहभावो" टङ्कोत्कीर्णशुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मन आयुरादिशेषाघातिकर्मणामपि य आत्यन्तिकपृथग्भावो विश्लेषो विघटनमिति ।

तस्य मुक्तात्मनः सुखं कथ्यते । "आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं

गाथा-३७

गाथार्थः—जो सर्व कर्मोंके नाशका कारण है ऐसा आत्माका परिणाम उसे भावमोक्ष जानना; कर्मोंका आत्मासे सर्वथा पृथक् होना वह द्रव्यमोक्ष है ।

टीकाः—यद्यपि सामान्यरूपसे संपूर्ण कर्ममल-कलंकरहित, शरीररहित आत्माकी आत्यंतिक, स्वाभाविक, अचिंत्य, अद्भुत, अनुपम, संपूर्ण-निर्मल केवलज्ञानादि अनंत गुणोंके स्थानरूप जो अवस्थान्तर (–ऐसी जो विशिष्ट अवस्था) वही मोक्ष कहलाती है, तो भी विशेषरूपसे भाव और द्रव्यके भेदसे वह (मोक्ष) दो प्रकारका है—ऐसा वार्त्तिक है । वह इसप्रकार है—"णेयो स भावमुक्खो" उसे भावमोक्ष जानना । वह कौनसा ? "अप्पणो हु परिणामो" निश्चय रत्नत्रयात्मक कारण समयसाररूप "हु" प्रगट आत्माके परिणाम । कैसा परिणाम ? "सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू"—सर्व द्रव्य-भावरूप मोहनीय आदि चार घातिकर्मोंके नाशका जो कारण है वह ।

द्रव्यमोक्षका कथन करते हैं : "दव्व विमुक्खो" अयोगी गुणस्थानके अंतिम समयमें द्रव्यमोक्ष है । वह (द्रव्यमोक्ष) कैसा है ? "कम्मपुहभावो" टंकोत्कीर्ण शुद्ध-बुद्ध जिसका एक स्वभाव है ऐसे परमात्मासे, आयु आदि शेष चार अघाति-कर्मोंका भी अत्यन्तरूपसे पृथक् होना–भिन्न होना–छूट जाना वह द्रव्यमोक्ष है ।

उस मुक्तात्माके सुखका वर्णन किया जाता है:—"आत्माके उपादानसे सिद्ध,

विशालं वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम्। अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं शाश्वतं सर्वकालमुत्कृष्टानंतसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातं ।१।" कश्चिदाह— इन्द्रियसुखमेव सुखं, मुक्तात्मनामिन्द्रियशरीराभावे पूर्वोक्तमतीन्द्रियसुखं कथं घटत इति ? तत्रोत्तरं दीयते—सांसारिकसुखं तावत् स्त्रीसेवनादिपञ्चेन्द्रियविषयप्रभवमेव, यत्पुनः पञ्चेन्द्रियविषयव्यापाररहितानां निर्व्याकुलचित्तानां पुरुषाणां सुखं तदतीन्द्रियसुखमत्रैव दृश्यते। पञ्चेन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानां निर्विकल्पसमाधिस्थानां परमयोगिनां रागादिरहितत्वेन स्वसंवेद्यमात्मसुखं तद्विशेषेणातीन्द्रियम्। यच्च भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितानां सर्वप्रदेशाह्लादैकपारमार्थिकपरमानन्दपरिणतानां मुक्तात्मनामतीन्द्रियसुखं तदत्यन्तविशेषेण ज्ञातव्यम्। अत्राह शिष्यः—संसारिणां निरन्तरं कर्मबन्धोऽस्ति, तथैवोदयोऽप्यस्ति, शुद्धात्मभावनाप्रस्तावो नास्ति, कथं मोक्षो भवतीति ? तत्र प्रत्युत्तरं—यथा शत्रोः क्षीणावस्थां दृष्ट्वा कोऽपि धीमान् पर्यालोचयत्ययं मम हनने प्रस्तावस्ततः

स्वयं अतिशयतायुक्त, बाधारहित, विशाल, वृद्धि और ह्राससे रहित, विषयोंसे रहित, प्रतिपक्षभाव रहित, अन्य द्रव्योंसे निरपेक्ष, निरुपम, अपार, शाश्वत, सर्वदा उत्कृष्ट तथा अनंत-सारभूत परमसुख सिद्धोंको होता है।"

शंका:—इन्द्रियसुख ही सुख है, सिद्ध जीवोंको इन्द्रिय और शरीरका अभाव होनेसे पूर्वोक्त अतीन्द्रिय सुख किस प्रकार हो सकता है ? उसका उत्तर दिया जाता है:—सांसारिक सुख तो स्त्री सेवनादि पांच इन्द्रियोंके विषयोंसे ही उत्पन्न होता है, परन्तु पाँच इन्द्रियोंके विषयोंके व्यापार रहित, अव्याकुल चित्तवाले मनुष्योंको जो सुख है वह अतीन्द्रिय सुख है, वह यहाँ भी देखा जाता है। पाँच इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुए विकल्पोंके जाल रहित, निर्विकल्प समाधिमें स्थित परम योगियोंको रागादिका अभाव होनेसे जो स्वसंवेद्य आत्मसुख है वह विशेषरूपसे अतीन्द्रिय सुख है; और जो भावकर्म–द्रव्यकर्म–नोकर्म रहित, आत्माके सर्वप्रदेशोंमें आह्लादरूप ऐसे एक पारमार्थिक परमानंद परिणत मुक्त जीवोंको जो अतीन्द्रिय सुख है वह अत्यंत विशेषरूपसे अतीन्द्रिय सुख जानना।

यहाँ शिष्य कहता है—संसारी जीवोंको निरन्तर कर्मोका बंध होता है उसी प्रकार कर्मोका उदय भी होता है, शुद्धात्मभावनाका प्रसंग नहीं है; तो मोक्ष किस प्रकार हो ? उसका उत्तर:—जिस प्रकार कोई बुद्धिमान मनुष्य शत्रुकी निर्बल अवस्था देखकर विचार करता है कि 'यह मेरा मारनेका अवसर है,' तत्पश्चात् पुरुपार्थ करके शत्रुको नष्ट करता है, उसी प्रकार कर्मोंकी भी एकरूप अवस्था

पौरुषं कृत्वा शत्रुं हन्ति । तथा कर्मणामप्येकरूपावस्था नास्ति, हीयमानस्थित्यनुभागत्वेन कृत्वा यदा लघुत्वं क्षीणत्वं भवति तदा धीमान् भव्य आगमभाषया 'खयउवसमिय विसोही देसण पाउग्ग करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते ।१।' इति गाथाकथितलब्धिपञ्चकसंज्ञेनाध्यात्मभाषया निजशुद्धात्माभिमुखपरिणामसंज्ञेन च निर्मलभावनाविशेषखड्गेन पौरुषं कृत्वा कर्मशत्रुं हन्तीति । यत्पुनरन्तः कोटाकोटीप्रमितकर्मस्थितिरूपेण तथैव लतादारुस्थानीयानुभागरूपेण च कर्मलघुत्वे जाते अपि सत्ययं जीव आगमभाषया अधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञामध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणतिरूपां कर्महननबुद्धिं क्वापि काले न करिष्यतीति तदभव्यत्वगुणस्यैव लक्षणं ज्ञातव्यमिति । अन्यदपि दृष्टान्तनवकं मोक्षविषये ज्ञातव्यम्—"रयण दीव दिणयर दहिउ दुद्धउ घीव पहाणु । सुण्णुरुप्पफलिहउ अगणि, णव दिट्ठंता जाणि ।१।" नन्वनादिकाले मोक्षं गच्छतां जीवानां जगच्छून्यं

नहीं रहती है, जब कर्मकी स्थिति और अनुभाग हीन होने पर वह लघु और क्षीण होता है तब बुद्धिमान भव्य जीव आगमभाषासे[1] "खयउवसमियविसोही देसण पाउग्ग करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥ [अर्थः—क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि; इनमेंसे चार तो सामान्य हैं और करणलब्धि सम्यक्त्व होनेके समय होती है ।]"—इस गाथामें कथित पांच लब्धि नामक (निर्मलभावनाविशेषरूप खड्गसे) और अध्यात्मभाषासे निजशुद्धात्माभिमुख परिणाम नामक विशेष प्रकारकी निर्मलभावनारूप खड्गसे पुरुषार्थ करके कर्मशत्रुको नष्ट करता है। अंतःकोटाकोटी (–सागर) प्रमाण कर्मकी स्थितिरूप तथा लता और काष्ठस्थानीय अनुभागरूप[1] कर्मका लघुत्व होने पर भी यह जीव आगमभाषासे अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नामक और अध्यात्मभाषासे स्वशुद्धात्माभिमुख परिणतिरूप ऐसी कर्महननबुद्धि किसी भी कालमें नहीं करे तो वह अभव्यत्व गुणका लक्षण जानना ।

अन्य भी नौ दृष्टांत मोक्षके विषयमें जानना । "रयण दीव दिणयर दहिउ, दुद्धउ घीव पहाणु । सुण्णुरुप्पफलिहउ अगणि, णव दिट्ठंता जाणि[2] ॥ [अर्थः—रत्न,

---

१. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६५० । सम्यग्दर्शन संबंधी इस शास्त्रकी गाथा ४१ की फूटनोटमें करणलब्धिका वर्णन लिखा है उसे पढना चाहिए ।

२. श्री योगसार गाथा–५७

भविष्यतीति ? तत्र परिहारः—यथा भाविकालसमयानां क्रमेण गच्छतां यद्यपि भाविकालसमयराशेः स्तोकत्वं भवति तथाप्यवसानं नास्ति । तथा मुक्तिं गच्छतां जीवानां यद्यपि जीवराशेः स्तोकत्वं भवति तथाप्यवसानं नास्ति । इति चेर्त्तर्हि पूर्वकाले बहवोऽपि जीवा मोक्षं गता इदानीं जगतः शून्यत्वं किं न दृश्यते ? किञ्चा-भव्यानामभव्यसमानभव्यानां च मोक्षो नास्ति कथं शून्यत्वं भविष्यतीति ॥३७॥ एवं संक्षेपेण मोक्षतत्त्वव्याख्यानेनैकसूत्रेण पञ्चमं स्थलं गतम् ।

अतः ऊर्ध्वं षष्ठस्थले गाथापूर्वार्धेन पुण्यपापपदार्थद्वयस्वरूपमुत्तरार्धेन च पुण्यपापप्रकृतिसंख्यां कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदम् प्रतिपादयतिः—

सुहअसुहभावजुत्ता पुरणं पावं हवंति खलु जीवा ।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुरणं पराणि पावं च ॥३८॥

दीपक, सूर्य, दूध, दही, घी, पत्थर, सोना, चांदी, स्फटिकमणि और अग्नि—इसप्रकार नौ दृष्टांत जानना ।]"

शंका:—अनादिकालसे जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं अतः यह जगत कभी शून्य हो जायेगा ?

समाधानः—जिस प्रकार भविष्यकालके समय क्रम-क्रमसे व्यतीत होनेसे यद्यपि भविष्यकालकी समयराशिमें कमी होती है तो भी उसका कभी भी अंत नहीं होता है । उसी प्रकार जीव मोक्षमें जाने पर यद्यपि जीवोंकी राशिमें कमी होती है तो भी उसका अंत नहीं होता है । यदि जीव मोक्षमें जाने पर संसारमें जीवकी शून्यता होती हो तो भूतकालमें बहुत जीव मोक्ष गये हैं तो भी अभी जगतमें जीवोंकी शून्यता क्यों नहीं दिखाई देती है ? तथा अभव्य जीवों और अभव्य समान भव्य जीवोंका मोक्ष नहीं है तो फिर जगतमें जीवोंकी शून्यता किस प्रकार होगी ? ॥३७॥

इसप्रकार संक्षेपमें मोक्षतत्त्वके व्याख्यानरूप एक सूत्र द्वारा पांचवां स्थल समाप्त हुआ ।

इसके पश्चात् छट्ठे स्थलमें "गाथाके पूर्वार्धसे पुण्य-पापरूप दो पदार्थोंका

शुभ अर अशुभ भावजुत जीव, भाव पुण्य अरु पाप सदीव ।
साता शुभ गोचर अरु नाम, आयु पुण्य, पर पाप नकाम ॥३८॥

शुभाशुभभावयुक्ताः पुण्यं पापं भवन्ति खलु जीवाः ।
सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च ।।३८।।

व्याख्या—"पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा" चिदानन्दैकसहजशुद्धस्वभावत्वेन पुण्यपापबन्धमोक्षादिपर्यायरूपविकल्परहिता अपि सन्तानागतानादिकर्मबन्धपर्यायेण पुण्यं पापं च भवन्ति खलु स्फुटं जीवाः । कथंभूताः सन्तः ? "सुहअसुहभावजुत्ता" "उद्वमिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम् । भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि ।१। पञ्चमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम् । दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपःसिद्धिविधौ कुरूद्योगम् ।२।" इत्यार्याद्वयकथितलक्षणेन शुभोपयोगभावेन परिणामेन तद्विलक्षणेनाशुभोपयोगपरिणामेन च युक्ताः परिणताः । इदानीं पुण्यपापभेदान् कथयति "सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं" सद्वेद्यशुभायुर्नाम-

स्वरूप और उत्तरार्धसे पुण्य और पाप प्रकृतियोंकी संख्या मैं कहता हूँ" ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर भगवान इस सूत्रका प्रतिपादन करते हैं ।

गाथा—३८

गाथार्थः—शुभ और अशुभ परिणामोंसे युक्त जीव वास्तवमें पुण्य-पापरूप होते हैं; शातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्चगोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं, शेष सब पाप प्रकृतियां हैं ।

टीकाः—"पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा" चिदानन्द एक सहज शुद्ध-स्वभावसे जीव पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष आदि पर्यायरूप विकल्पोंसे रहित होने पर भी परंपरासे आगत अनादिकर्मबंधरूप पर्यायसे यथार्थमें स्पष्टरूपसे पुण्य और पापरूप होते हैं । किस प्रकारके होते हुए ? "सुहअसुहभावजुत्ता" "उद्वमिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम् । भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि ।१। पञ्च महाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम् । दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपःसिद्धिविधौ कुरूद्योगम् ।।'[1] [अर्थः—मिथ्यात्वरूपी विषका वमन करो, सम्यग्दर्शनकी भावना करो, उत्कृष्ट भक्ति करो और भावनमस्कारमें तत्पर होकर सदा ज्ञानमें युक्त रहो । पांच महाव्रतोंकी रक्षा करो, क्रोधादि चार कषायोंका पूर्ण निग्रह करो, प्रबल इन्द्रियोंका विजय करो और तपको सिद्ध करनेकी विधिका उद्यम करो ।] इस प्रकार ऊपरकी दो आर्यामें कथित लक्षणयुक्त शुभोपयोगरूप परिणामसे और उससे विपरीत अशुभोपयोगरूप परिणामसे युक्त–परिणत जीव पुण्य-पाप रूप होते हैं । अब, पुण्य और पापके भेद कहते हैं । "सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं" शातावेदनीय,

१. अज्ञात शास्त्र

गोत्राणि पुण्यं भवति "पराणि पावं च" तस्मादपराणि कर्माणि पापं चेति। तद्यथा—सद्वेद्यमेकं, तिर्यग्मनुष्यदेवायुस्त्रयं, सुभगयशःकीर्त्तितीर्थंकरत्वादिनामप्रकृतीनां सप्तत्रिंशत्, तथोच्चैर्गोत्रमिति समुदायेन द्विचत्वारिंशत्संख्याः पुण्यप्रकृतयो विज्ञेयाः। शेषा द्व्यशीतिपापमिति। तत्र 'दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य' इत्युक्तलक्षणषोडशभावनोत्पन्नतीर्थंकरनामकर्मैव विशिष्टं पुण्यम्। षोडशभावनासु मध्ये परमागमभाषया "मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्। अष्टौ शंकादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ।१।" इति श्लोककथितपञ्चविंशतिमलरहिता तथाध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूपा सम्यक्त्वभावनैव मुख्येति विज्ञेयम्। 'सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य पुण्यपापद्वयमपि हेयम्,' कथं पुण्यं करोतीति ? तत्र युक्तिमाह। यथा कोऽपि

शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र—ये कर्म तो पुण्यरूप हैं। "पराणि पावं च" उनसे अन्य कर्म पाप हैं। वे इस प्रकार हैं—शातावेदनीय एक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—ये तीन आयुष्य, सुभग, यशःकीर्ति, तीर्थंकरपना आदि नामकर्मकी सैंतीस और उच्च गोत्र एक—इसप्रकार कुल ब्यालीस पुण्य प्रकृतियां जानना। शेष ब्यासी पाप प्रकृतियां हैं। 'दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतोंमें अतिचाररहित आचरण, निरन्तरज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तिअनुसार त्याग, शक्तिअनुसार तप, साधुसमाधि, वैयावृत्य करना, अर्हंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकोंमें हानि न करना, मार्ग-प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य—ये तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके कारण हैं।' इन उपरोक्त लक्षणयुक्त सोलह भावनाओंसे उत्पन्न तीर्थंकर नामकर्म विशिष्ट पुण्य है। सोलह भावनाओंमें परमागमकी भाषासे "मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्। अष्टौ शंकादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ॥ [अर्थः—तीन[1] मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन और आठ शंकादि दोष—ये पच्चीस सम्यग्दर्शनके दोष हैं।]" इस श्लोकमें कथित पच्चीस मलरहित (सम्यक्त्वभावना) और अध्यात्मभाषासे निजशुद्धात्मा उपादेय है ऐसी रुचिरूप सम्यक्त्वकी भावना ही मुख्य है ऐसा जानना।

शंकाः—सम्यग्दृष्टि जीवको तो पुण्य-पाप दोनों हेय हैं, तो वह पुण्य क्यों करता है ?

---

१. ज्ञानार्णव पृ०-९३

देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणां तदर्थे दानसन्मानादिकं करोति तथा सम्यग्दृष्टिः अप्युपादेयरूपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति चारित्रमोहोदयात्तत्रासमर्थः सन् निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च परमात्मपदप्राप्त्यर्थं विषयकषायवञ्चनार्थं च दानपूजादिना गुणस्तवनादिना वा परमभक्तिं करोति तेन भोगाकाङ्क्षादिनिदानरहितपरिणामेन कुटुम्बिनां (कृषकानां) पलालमिव अनीहितवृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति तेन च स्वर्गे देवेन्द्रलोकान्तिकादिविभूतिं प्राप्य विमानपरिवारादिसंपदं जीर्णतृणमिव गणयन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा पश्यति । किं पश्यतीति चेत्—तदिदं समवसरणं, त एते वीतरागसर्वज्ञाः, त एते भेदाभेदरत्नत्रयाराधका गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयन्ते त इदानीं प्रत्यक्षेण दृष्टा इति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा चतुर्थगुणस्थानयोग्यामात्मनो भावनामपरित्यजन् भोगानुभवेऽपि सति धर्मध्यानेन कालं नीत्वा स्वर्गादागत्य तीर्थंकरादिपदे प्राप्तेऽपि पूर्वभवभावितविशिष्टभेदज्ञानवासनाबलेन मोहं न करोति ततो जिनदीक्षां गृहीत्वा

वहां युक्ति सहित समाधान करते हैं:—जिसप्रकार कोई मनुष्य अन्य देशमें स्थित (अपनी) मनोहर स्त्रीके पाससे आये हुए मनुष्योंको उसके लिये दान देता है और सन्मान आदि करता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी उपादेयरूपसे निज-शुद्धात्माकी ही भावना करता है और जब चारित्रमोहके उदयसे उसमें (शुद्धात्माकी भावना करनेमें) असमर्थ होता है तब निर्दोष परमात्मस्वरूप अर्हंत और सिद्धोंकी तथा उनके आराधक आचार्य, उपाध्याय और साधुओंकी, परमात्मपदकी प्राप्तिके लिये और विषयकषायोंसे बचनेके लिये, दान-पूजा आदिसे अथवा गुणोंकी स्तुतिसे परमभक्ति करता है। उस भोगाकांक्षादि निदानरहित परिणामसे तथा निःस्पृह-वृत्तिसे विशिष्ट पुण्यका आस्रव होता है, जिस प्रकार धानकी खेती करते हुए किसानको घास, छिलका आदि मिलता ही है। उसीप्रकार उस पुण्यसे जीव स्वर्गमें देवेन्द्र, लोकान्तिकदेव आदिकी विभूति प्राप्तकर विमान, परिवार आदि संपदाओंको जीर्ण तृणसमान गिनता हुआ पांच महाविदेहोंमें जाकर देखता है। क्या देखता है? 'वह यह समवशरण है, वह यह वीतराग सर्वज्ञ भगवान है, वे इस भेदाभेद रत्नत्रयके आराधक गणधरदेवादि हैं; जो पहले सुने थे उन्हें आज प्रत्यक्ष देखा'—ऐसा समझकर धर्ममें बुद्धि विशेष दृढ़ करके चौथे गुणस्थानके योग्य आत्मभावनाको नहीं छोड़ता हुआ, भोग भोगता हुआ भी धर्मध्यानमें काल बिताकर स्वर्गमेंसे आकर तीर्थंकरादि पदको प्राप्त करता है तो भी पूर्वभवमें भावित विशिष्ट भेद-

पुण्यपापरहितनिजपरमात्मध्यानेन मोक्षं गच्छतीति। मिथ्यादृष्टिस्तु तीव्रनिदानबन्ध पुण्येन भोगं प्राप्य पश्चादर्द्धचक्रवर्त्तिरावणादिवन्नरकं गच्छतीति। एवमुक्तलक्षणपुण्य-पापपदार्थद्वयेन सह पूर्वोक्तानि सप्ततत्त्वान्येव नव पदार्थां भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे "आसववंधण" इत्यादि एका सूत्रगाथा तदनन्तरं गाथादशकेन स्थलषट्कं चेति समुदायेनैकादशसूत्रैः सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोमहाधिकारः समाप्तः ॥२॥

ज्ञानकी वासनाके वलसे मोह नहीं करता है। तत्पश्चात् जिनदीक्षा लेकर पुण्य और पापसे रहित निज परमात्माके ध्यान द्वारा मोक्ष जाता है। मिथ्यादृष्टि तो तीव्र निदानवंधवाले पुण्यसे भोग प्राप्त करके फिर अर्ध चक्रवर्ती रावण आदिकी भांति नरकमें जाता है।

इसप्रकार उपरोक्त लक्षणयुक्त पुण्य-पापरूप दो पदार्थोंके साथ पूर्वोक्त सात तत्त्व ही नौ पदार्थ हैं ऐसा जानना ॥३८॥

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचित द्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथमें "आसव वंधण" आदि एक सूत्र गाथा, तत्पश्चात् दस गाथाओं द्वारा छह स्थल—इस प्रकार कुल ग्यारह सूत्रों द्वारा सात तत्त्व और नौ पदार्थोंका प्रतिपादन करने वाला द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ ॥२॥



— ३ —

मोक्षमार्ग अधिकार

अतः ऊर्ध्वं विंशतिगाथापर्यन्तं मोक्षमार्गं कथयति। तत्रादौ "सम्मद्दंसण" इत्याद्यष्टगाथाभिर्निश्चयमोक्षमार्गव्यवहारमोक्षमार्गप्रतिपादकमुख्यत्वेन प्रथमः अन्तराधिकारस्ततः परम् "दुविहं पि मुक्खहेउं" इति प्रभृतिद्वादशसूत्रैर्ध्यानध्यातृध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन द्वितीयोऽन्तराधिकारः। इति तृतीयाधिकारे समुदायेन पातनिका।

अथ प्रथमतः सूत्रपूर्वार्धेन व्यवहारमोक्षमार्गमुत्तरार्धेन च निश्चयमोक्षमार्गं निरूपयति :—

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

इसके पश्चात् वीस गाथाओं तक मोक्षमार्गका कथन करते हैं। वहां प्रारंभमें "सम्मद्दंसण" इत्यादि आठ गाथाओं द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्गके प्रतिपादनकी मुख्यतासे प्रथम अंतराधिकार है, तत्पश्चात् "दुविहं पि मुक्खहेउं" आदि बारह सूत्रों द्वारा ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यानफलके कथनकी मुख्यतासे द्वितीय अंतराधिकार है। इसप्रकार तीसरे अधिकारमें समूहरूपसे भूमिका है।

अब प्रथम ही सूत्रके पूर्वार्धसे व्यवहारमोक्षमार्ग और उत्तरार्धसे निश्चय-मोक्षमार्ग कहते हैं:—

अब मुनि दर्शन ज्ञान सुसार, चारित, शिव-कारन व्यवहार।
निश्चय एक आतमा जानि, तीनोंमयी मोक्षमग मानि ॥३९॥

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि ।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निजः आत्मा ।।३९।।

व्याख्या—"सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा" सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं मोक्षस्य कारणं, हे शिष्य ! जानीहि व्यवहारनयात् । "णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा" निश्चयतस्तत्त्रितयमयो निजात्मेति । तथाहि वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठान-विकल्परूपो व्यवहारमोक्षमार्गः । निजनिरञ्जनशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणैकाग्र्य-

---

गाथा–३९

गाथार्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको व्यवहारनयसे मोक्षका कारण जानो । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय निज आत्माको निश्चयसे मोक्षका कारण जानो ।

टीकाः—"सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ववहारा"—हे शिष्य ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—इन तीनोंको व्यवहारनयसे मोक्षका कारण जानो । "णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा" निश्चयसे[1] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—इन तीनोंमय निजात्मा ही मोक्षका कारण है । उसे समझाते हैं:—वीतरागसर्वज्ञप्रणीत छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोंके सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान और व्रतादिके आचरणके विकल्परूप[2] व्यवहार मोक्षमार्ग है; निज निरंजन शुद्धात्मतत्त्वके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणकी

---

१. "जैन शास्त्रोंका परमार्थसे वीतरागपना ही तात्पर्य है । इस वीतरागपनेको व्यवहार–निश्चयके अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाय तो इष्ट सिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं ।" [देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा १७२ टीका पृष्ठ २५२] "छट्ठे गुणस्थानमें मुनियोग्य शुद्ध परिणति निरंतर होना तथा महाव्रतादि संबंधी शुभभाव यथायोग्यरूपसे होना वह निश्चय–व्यवहारके अविरोधका उदाहरण है । पांचवें गुणस्थानमें उस गुण-स्थानके योग्य शुद्ध परिणति निरंतर होना तथा देशव्रतादि संबंधी शुभभाव यथायोग्य–रूपसे होना वह निश्चय–व्यवहारके अविरोधका उदाहरण है ।" [देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा–१७२, पृष्ठ २५२ फूटनोट ४]

२. विकल्प है वह राग है और उसका प्रत्येक समयमें आंशिकरूपसे अभाव होता जाता है अर्थात् कथंचित् भिन्न साध्य–साधन भावका अभाव होता जाता है, अतः उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं । [देखो, पंचास्तिकाय पृष्ठ २३३]

परिणतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गः। अथवा स्वशुद्धात्मभावनासाधकबहिर्द्रव्याश्रितो व्यवहार-मोक्षमार्गः। केवलस्वसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितसुखानुभूतिरूपोनिश्चय-मोक्षमार्गः। अथवा धातुपाषाणेऽग्निवत्साधको व्यवहारमोक्षमार्गः, सुवर्णस्थानीय-निर्विकारस्वोपलब्धिसाध्यरूपो निश्चयमोक्षमार्गः। एवं संक्षेपेण व्यवहारनिश्चयमोक्ष-मार्गलक्षणं ज्ञातव्यमिति ॥३९॥

अथाभेदेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि स्वशुद्धात्मैव तेन कारणेन निश्चये-नात्मैव निश्चयमोक्षमार्ग इत्याख्याति। अथवा पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्गं प्रकारान्तरेण दृढयतिः—

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

एकाग्रपरिणतिरूप निश्चयमोक्षमार्ग है। अथवा स्वशुद्धात्मभावनाका साधक,[1] बाह्य-पदार्थाश्रित व्यवहारमोक्षमार्ग है; मात्र स्वसंवेदनसे उत्पन्न, रागादि विकल्पकी उपाधिसे रहित—ऐसे सुखकी अनुभूतिरूप निश्चयमोक्षमार्ग है। अथवा धातु-पाषाणमें अग्निसमान[2] साधक वह व्यवहारमोक्षमार्ग है और सुवर्णसमान निर्विकार निजात्माकी उपलब्धिरूप साध्य वह निश्चयमोक्षमार्ग है। इसप्रकार संक्षेपसे व्यवहार और निश्चयमोक्षमार्गका लक्षण जानना ॥३९॥

अब, अभेदरूपसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वे शुद्धात्मा ही हैं, इसकारण निश्चयसे आत्माही निश्चयमोक्षमार्ग है ऐसा कहते हैं। अथवा पूर्वोक्त निश्चय-मोक्षमार्ग दूसरे प्रकारसे दृढ़ करते हैं:—

---

१. जिनको वह अनुष्ठान है उसको मात्र उपचारसे ही स्वशुद्धात्माकी भावनाका साधक कहा गया है ऐसा समझना। (पंचास्तिकाय संग्रह, पृष्ठ २५८ फूटनोट)

२. देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा १६० टीका, पृष्ठ २३२-२३३ दोनों आचार्योंकी टीका। अग्नि तो निमित्तमात्र है उसी प्रकार व्यवहार निमित्तमात्र है। यह क्रियाकांड परिणति है वह तो राग है। धर्मी जीवको उसका माहात्म्य किस प्रकार हो सकता है? देखो, श्री पंचास्तिकाय गाथा १७२ टीका पृ० २६१।

दर्शन बोध चारित्र जु तीन, आतम-बिन परमैं न प्रवीन।
तातैं तीनोंमयी सु आप, कारन मोक्ष कह्यौ बिन पाप ॥४०॥

रत्नत्रयं न वर्त्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥४०॥

व्याख्याः—"रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि" रत्नत्रयं न वर्त्तते स्वकीयशुद्धात्मानं मुक्त्वा अन्याचेतने द्रव्ये । 'तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा' तस्मात्तत्त्रितयमय आत्मैव निश्चयेन मोक्षस्य कारणं भवतीति जानीहि । अथ विस्तरः—रागादिविकल्पोपाधिरहितचिच्चमत्कारभावनोत्पन्नमधुररसास्वादसुखोऽहमिति निश्चयरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तस्यैव सुखस्य समस्तविभावेभ्यः स्वसंवेदनज्ञानेन पृथक् परिच्छेदनं सम्यग्ज्ञानं, तथैव दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षाप्रभृतिसमस्तापध्यानरूपमनोरथजनितसंकल्पविकल्पजालत्यागेन तत्रैव सुखे रतस्य सन्तुष्टस्य

गाथा–४०

गाथार्थः—आत्माके अतिरिक्त अन्य द्रव्यमें रत्नत्रय नहीं रहते हैं इसकारण रत्नत्रयमयी आत्मा ही मोक्षका कारण है ।

टीकाः—"रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि" निज शुद्धात्माको छोड़कर अन्य अचेतन द्रव्यमें रत्नत्रय नहीं वर्तते रहते हैं । "तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा"—अतः वह रत्नत्रयमय आत्माही निश्चयसे मोक्षका कारण[1] होता है ऐसा तू जान । अब विस्तार करते हैं:—'रागादि-विकल्प-उपाधि-रहित, चित्चमत्कारकी भावनासे उत्पन्न मधुररसके आस्वादरूप सुख मैं हूँ' ऐसी निश्चय रुचिरूप सम्यग्दर्शन है । उसी सुखको समस्त विभावोंसे स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा पृथक् जानना वह सम्यग्ज्ञान है । उसी प्रकार दृष्ट–श्रुत–अनुभूत भोगोंकी आकांक्षा आदि समस्त दुर्ध्यानरूप मनोरथसे उत्पन्न संकल्प-विकल्पके जालके त्याग द्वारा उसी सुखमें लीन–संतुष्ट–तृप्त और एकाकार परम-समरसीभावसे भीगे

---

१. इस गाथामें स्वात्मतत्त्वरूप निज शुद्धात्माको ही—अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमय शुद्धात्माको ही—मोक्षका कारण कहा है । इससे सिद्ध हुआ कि विकल्प–राग वास्तवमें मोक्षका कारण नहीं है, पर्याय-पर्यायमें रागका अभाव होता जाता है और शुद्धि बढ़ती जाती है । इस प्रकार सातवें गुणस्थानके सातिशय विभागमें निर्विकल्पता बढ़ने पर क्षपक श्रेणीमें आठवें, नवमें और दसवें गुणस्थानमें चढ़ने पर दसवेंके अंतमें संपूर्ण वीतराग होकर, बारहवें गुणस्थानमें संपूर्ण वीतरागरूपसे रहकर, उसके अंतमें केवलज्ञानरूप भावमोक्ष प्रगट करता है ।

तृप्तस्यैकाकारपरमसमरसीभावेन द्रवीभूतचित्तस्य पुनः पुनः स्थिरीकरणं सम्यक्चारित्रम् । इत्युक्तलक्षणं निश्चयरत्नत्रयं शुद्धात्मानं विहायान्यत्र घटपटादिबहिर्द्रव्ये न वर्त्तते यतस्ततः कारणादभेदनयेनानेकद्रव्यात्मकैकपानकवत्तदेव सम्यग्दर्शनं, तदेव सम्यग्ज्ञानं, तदेव सम्यक्चारित्रं, तदेव स्वात्मतत्त्वमित्युक्तलक्षणं निजशुद्धात्मानमेव मुक्तिकारणं जानीहि ।।४०।।

एवं प्रथमस्थले सूत्रद्वयेन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्वरूपं संक्षेपेण व्याख्याय तदनन्तरं द्वितीयस्थले गाथाषट्कपर्यन्तं सम्यक्त्वादित्रयं क्रमेण विवृणोति । तत्रादौ सम्यक्त्वमाहः—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ।।४१।।

हुए चित्तको पुनः पुनः स्थिर करना वह सम्यक्चारित्र है । इसप्रकार कथित लक्षण निश्चयरत्नत्रय शुद्धात्माको छोड़कर अन्यत्र घट-पटादि बहिर्द्रव्योंमें नहीं रहते हैं । इस कारण अभेदनयसे अनेक द्रव्यमय एक पानके समान वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यक्चारित्र है, वही स्वात्मतत्त्व है । इसप्रकार उक्त लक्षणवाले निज शुद्धात्माको ही मुक्तिका कारण तुम जानो ।।४०।।

इसप्रकार प्रथम स्थलमें दो गाथाओं द्वारा संक्षेपमें निश्चय और व्यवहार-मोक्षमार्गका स्वरूप कहकर उसके अनन्तर द्वितीय स्थलमें छह गाथाओंमें सम्यक्त्व आदि तीनोंका क्रमपूर्वक वर्णन करते हैं । वहां प्रथम ही सम्यग्दर्शनका कथन करते हैं:—

---

१. यहां सुखकी मुख्यतासे निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय चारित्रकी व्याख्या है । अतः सिद्ध होता है कि—चतुर्थ गुणस्थानमें जो शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसके साथ ही भूमिका अनुसार शुद्ध आत्मिक सुख प्रगट होता है ।

जीवादिक तत्त्वनिकी करै, श्रद्धा सो सम्यक्त्व हूँ वरै ।
याहीतैं सम्यक् ह्वै ज्ञान, दुर आशय-विन आतम मान ।।४१।।

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥४१॥

व्याख्याः—"जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं" वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धजीवादितत्त्वविषये चलमलिनागाढरहितत्वेन श्रद्धानं रुचिर्निश्चय इदमेवेत्थमेवेति निश्चयबुद्धिः सम्यग्दर्शनम् । "रूवमप्पणो तं तु" तच्चाभेदनयेन रूपं स्वरूपं तु; पुनः कस्य ? आत्मन आत्मपरिणाम इत्यर्थः । तस्य सामर्थ्यं माहात्म्यं दर्शयति । "दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि" यस्मिन् सम्यक्त्वे सति ज्ञानं सम्यग् भवति स्फुटं । कथम्भूतं सम्यग्भवति ? "दुरभिणिवेसविमुक्कं" चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृणस्पर्शशुक्तिकाशकलरजतविज्ञानसदृशैः संशयविभ्रमविमोहैर्मुक्तं रहितमित्यर्थः ।

गाथा-४१

गाथार्थः—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना वह सम्यक्त्व है । वह सम्यक्त्व आत्माका स्वरूप है । इस सम्यक्त्वके होनेपर दुरभिनिवेशरहित सम्यक्ज्ञान होता है ।

टीकाः—"जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं" वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत शुद्ध जीवादि तत्त्वोंमें चल, मल, अगाढ़ (दोष) रहित श्रद्धा-रुचि-निश्चय और 'यही है, इसीप्रकार है' ऐसी निश्चयबुद्धि वह सम्यग्दर्शन है । "रूवमप्पणो तं तु" और वह सम्यग्दर्शन अभेदनयसे स्वरूप है । किसका स्वरूप है ? आत्माका; वह आत्माका परिणाम[1] है ऐसा अर्थ है ।

उसका (सम्यग्दर्शनका) सामर्थ्य और माहात्म्य दिखलाते हैं; "दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि" जिस सम्यक्त्वके होने पर ज्ञान प्रगटरूपसे सम्यक् हो जाता है । कैसा सम्यक् हो जाता है ? "दुरभिणिवेसविमुक्कं" चलायमान संशयज्ञान (अर्थात् ऐसा होगा अथवा ऐसा, इसप्रकारका) संशयसे, गमन करते हुए तृणस्पर्श होने पर 'किसका स्पर्श हुआ' उसके अनिश्चयरूप विभ्रमसे और 'सीपके टुकड़ेमें चांदीका ज्ञान हो' ऐसे विमोहसे—इन तीन दोषोंसे रहित ज्ञान सम्यक् हो जाता है ।

---

१. वह आत्माका परिणाम होनेसे शुद्ध परिणाम है । सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके समय "निष्क्रिय चिन्मात्रभावको प्राप्त करता है" ऐसा श्री प्रवचनसार गाथा ८० पृष्ठ १४३ में कहा है वही निर्विकल्प दशा है । श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि "आगमकी भाषासे अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नामक परिणामविशेषोंके बलसे जो विशेषभाव दर्शनमोहका अभाव

इतो विस्तरः—सम्यक्त्वे सति ज्ञानं सम्यग्भवतीति यदुक्तं तस्य विवरणं क्रियते । तथाहि—गौतमाग्निभूतिवायुभूतिनामानो विप्राः पञ्चपञ्चशतब्राह्मणोपाध्याया वेदचतुष्टयं, ज्योतिष्कव्याकरणादिषडङ्गानि, मनुस्मृत्याद्यष्टादशस्मृतिशास्त्राणि तथा भारताद्यष्टादशपुराणानि मीमांसान्यायविस्तर इत्यादिलौकिकसर्वशास्त्राणि यद्यपि जानन्ति तथापि तेषां हि ज्ञानं सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानमेव । यदा पुनः प्रसिद्धकथान्यायेन श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थंकरपरमदेवसमवसरणे मानस्तम्भावलोकनमात्रादेवागमभाषया दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयसंज्ञेनाध्यात्मभाषया स्वशुद्धात्माभिमुखपरिणामसंज्ञेन च

इसका विस्तार:—'सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान सम्यक् होता है' इसप्रकार जो कहा है उसका विवरण करते हैं:—पांचसौ-पांचसौ ब्राह्मणोंको पढ़ाने वाले गौतम, अग्निभूति और वायुभूति नामक ब्राह्मण चार वेद, ज्योतिष-व्याकरण आदि छह अंग, मनुस्मृति आदि अठारह स्मृतिशास्त्र, महाभारतादि अठारह पुराण, मीमांसा, न्याय-विस्तार आदि समस्त लौकिक शास्त्र जानते थे तो भी उनका ज्ञान सम्यक्त्व बिना मिथ्याज्ञान ही था । जब, प्रसिद्ध कथाके अनुसार, श्री महावीर वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेवके समवशरणमें मानस्तम्भको देखनेमात्रसे ही आगमभाषा अपेक्षासे दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकर्मके उपशम-क्षय नामक (कालादि-लब्धि विशेषसे) और अध्यात्मभाषाकी अपेक्षासे निज शुद्धात्माभिमुख परिणाम

करनेमें समर्थ है उसमें अपने आत्माको जोड़ता है । तत्पश्चात् निर्विकल्प स्वरूपकी प्राप्तिके लिये—जिसप्रकार पर्यायरूप मोती, गुणरूप सफेदी आदि अभेदनयसे एक हाररूप ही ज्ञात होते हैं उसीप्रकार—पूर्व कथित द्रव्य-गुण-पर्याय अभेदनयसे आत्मा ही हैं ऐसी भावना करते-करते दर्शनमोहका अंधकार नष्ट हो जाता है ।" (श्री प्रवचनसार श्री जयसेनाचार्य टीका गाथा-८०, पृष्ठ १४३)

तथा श्री प्रवचनसार गाथा १९४ की टीकामें भी निम्न शब्दोंमें उसी सिद्धांतका प्रतिपादन किया है (पृष्ठ ३७५)

टीका:—"यथोक्त विधि द्वारा शुद्धात्माको जो ध्रुव जानता है, उसे उसीमें प्रवृत्ति द्वारा शुद्धात्मतत्त्व होता है अतः अनंत शक्तिवाले चिन्मात्र परम आत्माका एकाग्र संचेतन-ध्यान होता है और उससे साकार उपयोगवालेको अथवा अनाकार-उपयोग-वालेको—दोनोंको अविशेषरूपसे एकाग्र संचेतनको प्रसिद्धि होनेसे अनादिसंसारसे बंधी अतिदृढ़ मोहग्रन्थि (मोहकी दुष्ट गांठ) टूट जाती है ।

इससे ऐसा कहा गया है कि—मोहग्रन्थिभेद (दर्शनमोहरूपी गांठका टूटना) वह शुद्धात्माकी उपलब्धिका फल है ।"

कालादिलब्धिविशेषेण मिथ्यात्वं विलयं गतं तदा तदेव मिथ्याज्ञानं सम्यग्ज्ञानं जातम्। ततश्च "जयति भगवान्" इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोऽपि गणधरदेवाः संजाताः गौतमस्वामी भव्योपकारार्थं द्वादशाङ्गश्रुतरचनां कृतवान्; पश्चान्निश्चयरत्नत्रयभावनाबलेन त्रयोऽपि मोक्षं गताः। शेषाः पञ्चदशशतप्रमितब्राह्मणा जिनदीक्षां गृहीत्वा यथासम्भवं स्वर्गं मोक्षं च गताः। अभव्यसेनः पुनरेकादशाङ्गधारकोऽपि सम्यक्त्वं विना मिथ्याज्ञानी सञ्जात इति। एवं सम्यक्त्वमाहात्म्येन ज्ञानतपश्चरणव्रतोपशमध्यानादिकं मिथ्यारूपमपि सम्यग्भवति। तदभावे विषयुक्तदुग्धमिव सर्वं वृथेति ज्ञातव्यम्।

तच्च सम्यक्त्वं पञ्चविंशतिमलरहितं भवति तद्यथा—देवतामूढलोकमूढ-समयमूढभेदेन मूढत्रयं भवति। तत्र क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितमनन्तज्ञानाद्यनन्तगुणसहितं

नामक कालादिलब्धि विशेषसे मिथ्यात्व नष्ट हुआ तब वही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान हुआ। तत्पश्चात् 'भगवानकी जय हो' इत्यादि प्रकारसे नमस्कार करके जिनदीक्षा लेकर केशलोच करते ही चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) और सप्त ऋद्धिसंपन्न होकर तीनों ही गणधरदेव हो गये। गौतमस्वामीने भव्य जीवोंके उपकारके लिये बारह अंगरूप श्रुतकी रचनाकी। तत्पश्चात् उन तीनोंने ही निश्चयरत्नत्रयकी[1] भावनाके बलसे मोक्ष प्राप्त किया। शेष पंद्रहसौ ब्राह्मणोंने जिनदीक्षा लेकर यथासंभव स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त किया। परन्तु अभव्यसेन ग्यारह अंगका पाठी होने पर भी सम्यक्त्व बिना मिथ्याज्ञानी रहा। इसप्रकार सम्यक्त्वके माहात्म्यसे ज्ञान, तपश्चरण[2], व्रत, उपशम, ध्यान आदि मिथ्यारूप हो वह भी सम्यक् हो जाता है और उसके (सम्यक्त्वके) बिना ये सब विष सहित दूधकी भांति वृथा (व्यर्थ) हैं ऐसा जानना।

और यह सम्यक्त्व पच्चीस दोष-रहित होता है। वह इसप्रकार—देवमूढ़ता, लोकमूढ़ता और समयमूढ़ता—ये तीन मूढ़ता हैं।

क्षुधा आदि अठारह दोष रहित, अनंतज्ञानादि, अनंतगुणसहित, वीतरागसर्वज्ञ-

---

१. व्यवहार रत्नत्रयका क्रम-क्रमसे अभाव होने पर और शुद्धि क्रम-क्रमसे प्रत्येक समय वृद्धिगत होनेपर निश्चय रत्नत्रयकी पूर्णता कर मोक्ष प्राप्त किया ऐसा समझना।

२. सम्यक्त्व प्राप्त किये विना ज्ञान, तपश्चरण, व्रत, नियम, ध्यान आदि सर्व मिथ्या हैं ऐसा समझना। अतः सम्यग्दर्शन प्रगट करनेके लिये प्रथम प्रयत्न पुरुषार्थ करना ऐसी भगवानकी आज्ञा समझना।

वीतरागसर्वज्ञदेवतास्वरूपमजानन् ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादि-विभूतिनिमित्तं रागद्वेषोपहतार्त्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डिकादिमिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवतामूढत्वं भण्यते। न च ते देवाः किमपि फलं प्रयच्छन्ति। कथमिति चेत्? रावणेन रामस्वामिलक्ष्मीधरविनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता, कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थं कात्यायनी विद्या साधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं बह्व्योऽपि विद्याः समाराधितास्ताभिः कृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम्। तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता [1]नानुकूलितास्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातमिति। अथ लोकमूढत्वं कथयति। गङ्गादिनदीतीर्थस्नानसमुद्रस्नान-प्रातःस्नानजलप्रवेशमरणाग्निप्रवेशमरणगोग्रहणादिमरणभूम्यग्निवटवृक्षपूजादीनि पुण्य-कारणानि भवन्तीति यद्वदन्ति तल्लोकमूढत्वं विज्ञेयम्। अन्यदपि लौकिकपारमार्थिक-हेयोपादेयस्वपरज्ञानरहितानामज्ञानिजनानां प्रवाहेन यद्धर्मानुष्ठानं तदपि लोकमूढत्वं

देवका स्वरूप नहीं जानते हुए जो जीव ख्याति, पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्य आदि वैभवके लिये, राग-द्वेषसे आहत, आर्त और रौद्र परिणाम-वाले क्षेत्रपाल, चंडिका आदि मिथ्यादेवोंका आराधन करते हैं उसे देवमूढ़ता कहते हैं। वे देव कुछ भी फल नहीं देते।

प्रश्नः—(फल नहीं देते) वह किस प्रकार?

उत्तरः—रावणने रामचंद्र और लक्ष्मणका विनाश करनेके लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की; कौरवोंने पांडवोंका नाश करनेके लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध की; कंसने नारायणका (कृष्णका) विनाश करनेके लिये बहुतसी विद्यायें सिद्ध की; परन्तु उन विद्याओं द्वारा रामचंद्र, पांडवों और कृष्ण नारायणका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। उन्होंने (राम आदिने) यद्यपि मिथ्यादेवोंकी आराधना नहीं की तो भी निर्मल सम्यक्त्वसे उपार्जित[2] पहले किये हुए पुण्यसे उनके सर्व विघ्न दूर हुए।

अब, लोकमूढ़ताका कथन करते हैं: 'गंगा आदि नदीरूप तीर्थोंमें स्नान, समुद्रमें स्नान, प्रातःकालमें स्नान, जलमें प्रवेश करके मरना, अग्निमें प्रवेश करके मरना, गायकी पूंछ पकड़कर मरना, भूमि-अग्नि-वटवृक्षकी पूजा करना—ये सब पुण्यके कारण हैं' ऐसा जो कहते हैं उनको लोकमूढ़ता जानना। लौकिक–पारमार्थिक हेय-उपादेय और स्व-परज्ञानरहित अज्ञानियोंका प्रवाहसे (कुल परंपरासे) चला

१. "आराधना न कृता' इति पाठान्तरं
२. निर्मल सम्यक्त्वके साथ रहे हुए शुभरागसे उपार्जित पुण्य–ऐसा यहां समझना।

विज्ञेयमिति। अथ समयमूढत्वमाह। अज्ञानिजनचित्तचमत्कारोत्पादकं ज्योतिष्कमन्त्रवादादिकं दृष्ट्वा वीतरागसर्वज्ञप्रणीतसमयं विहाय कुदेवागमलिङ्गिनां भयाशास्नेहलोभैर्धर्मार्थं प्रणामविनयपूजापुरस्कारादिकरणं समयमूढत्वमिति। एवमुक्तलक्षणं मूढत्रयं सरागसम्यग्दृष्ट्यवस्थायां परिहरणीयमिति। त्रिगुप्तावस्थालक्षणवीतरागसम्यक्त्वप्रस्तावे पुनर्निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैव देव इति निश्चयबुद्धिर्देवतामूढरहितत्वं विज्ञेयम्। तथैव च मिथ्यात्वरागादिमूढभावत्यागेन स्वशुद्धात्मन्येवावस्थानं लोकमूढरहितत्वं विज्ञेयम्। तथैव च समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परूपपरभावत्यागेन निर्विकारतात्त्विकपरमा-

---

आया अन्य भी जो कोई धर्माचरण है वह भी लोकमूढ़ता है ऐसा जानना।

अब, समयमूढ़ता कहते हैं:—अज्ञानियोंके मनमें चमत्कार (आश्चर्य) उत्पन्न करनेवाले ज्योतिष, मंत्रवाद आदि देखकर वीतराग-सर्वज्ञप्रणीत धर्मको छोड़कर कुदेव–शास्त्र और वेषधारियोंको भय, आशा, स्नेह और लोभसे धर्मके लिये प्रणाम, विनय, पूजा, सत्कार आदि करना वह समयमूढ़ता है।

ये उक्त लक्षणयुक्त तीनों मूढ़ता [1]सरागसम्यग्दृष्टिकी अवस्थामें त्यागने योग्य हैं।

मन–वचन–कायाकी गुप्तिरूप अवस्था जिसका लक्षण है ऐसे वीतराग [2]सम्यक्त्वके अवसरमें तो—'अपना निरंजन, निर्दोष परमात्मा ही देव है' ऐसी निश्चयबुद्धि ही देवमूढ़तासे रहितपना है ऐसा जानना; तथा मिथ्यात्व-रागादि मूढ़भावोंका त्यागकर जो अपने शुद्धआत्मामें ही स्थिति है वह लोकमूढ़तासे रहितपना है ऐसा जानना; उसीप्रकार समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्परूप परभावका त्याग

---

१. सरागसम्यग्दृष्टिके अर्थके लिये देखो पृ० १७३ फूटनोट।

२. जिन जीवोंको यथार्थ सम्यग्दर्शन तो चतुर्थ गुणस्थानमें प्रगट हुआ है और चारित्र अपेक्षासे जिनको वीतरागता प्रगट हुई है उनको वीतराग सम्यक्त्वी कहते हैं। अन्य सच्चे सम्यग्दृष्टिके साथ चारित्रदशामें चौथे, पांचवें और छट्ठे गुणस्थानमें जो राग शेष है उसका ज्ञान करानेके लिये उसको सराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं। छट्ठे गुणस्थानधारी मुनिको निर्जरा अपेक्षासे वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा है। (देखो, श्री समयसार, श्री जयसेनाचार्य टीका गाथा–२०१–२)............... तथा आस्रव अपेक्षासे उसको ही सरागसम्यग्दृष्टि कहा है। अतः सर्वत्र जिस अपेक्षासे कथन किया हो वह अपेक्षा यथार्थरूपसे समझना। (देखो, श्री समयसार गाथा–१७७-१७८ की श्री जयसेनाचार्य टीका।)

नन्दैकलक्षणपरमसमरसीभावेन तस्मिन्नेव सम्यग्रूपेणायनं गमनं परिणमनं समयमूढरहितत्वं बोद्धव्यम् । इति मूढत्रयं व्याख्यातम् ।

अथ मदाष्टस्वरूपं कथ्यते । विज्ञानैश्वर्यज्ञानतपःकुलबलजातिरूपसंज्ञं मदाष्टकं सरागसम्यग्दृष्टिभिस्त्याज्यमिति । वीतरागसम्यग्दृष्टीनां पुनर्मानकषायादुत्पन्नमदमात्सर्यादिसमस्तविकल्पजालपरिहारेण ममकाराहंकाररहिते स्वशुद्धात्मनि भावनैव मदाष्टकत्याग इति । ममकाराहङ्कारलक्षणं कथयति । कर्मजनितदेहपुत्रकलत्रादौ ममेदमिति ममकारस्तत्रैवाभेदेन गौरस्थूलादिदेहोऽहं राजाहमित्यहङ्कारलक्षणमिति ।

अथानायतनषट्कं कथयति । मिथ्यादेवो, मिथ्यादेवाराधका, मिथ्यातपो, मिथ्यातपस्वी, मिथ्यागमो, मिथ्यागमधराः पुरुषाश्चेत्युक्तलक्षणमनायतनषट्कं सरागसम्यग्दृष्टीनां त्याज्यं भवतीति । वीतरागसम्यग्दृष्टीनां पुनः समस्तदोषायतनभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायरूपायतनानां परिहारेण केवलज्ञानाद्यनन्तगुणायतनभूते स्वशुद्धात्मनि निवास एवानायतनसेवापरिहार इति । अनायतनशब्दस्यार्थः कथ्यते । सम्यक्त्वादि-

---

कर, निर्विकार तात्त्विक परमानन्द जिसका एक लक्षण है ऐसे परम समरसीभावसे उसीमें (शुद्धात्मामें ही) सम्यक् प्रकारसे अयन-गमन-परिणमन है वह समयमूढ़तासे रहितपना है इसप्रकार जानना । इसप्रकार तीन मूढ़ताओंका व्याख्यान किया ।

अब, आठ मदोंका स्वरूप कहते हैं:—विज्ञान, ऐश्वर्य, ज्ञान, तप, कुल, वल, जाति और रूप—इन आठों मदोंका त्याग सराग सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा किया जाना चाहिये । वीतराग सम्यग्दृष्टियोंको तो मानकषायसे उत्पन्न हुए मद, मात्सर्य (ईर्ष्या) आदि समस्त विकल्पजालके त्याग द्वारा, ममकार–अहंकार रहित निज शुद्धात्मामें भावना वही आठ मदोंका त्याग है । ममकार और अहंकारका लक्षण कहते हैं—कर्मजनित देह, पुत्र, स्त्री आदिमें 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धि वह ममकार है और उसमें ही अभेदरूपसे 'मैं गोरा, मोटा आदि शरीर हूँ, मैं राजा हूँ' यह अहंकारका लक्षण है ।

अव, छह अनायतनोंका कथन करते हैं:—सम्यग्दृष्टियोंको मिथ्यादेव, मिथ्यादेवोंके आराधक, मिथ्या तप, मिथ्या तपस्वी, मिथ्या आगम, मिथ्याशास्त्रके पंडित—इन उपरोक्त लक्षणयुक्त छह अनायतनोंका त्याग सम्यग्दृष्टिको करना चाहिये । वीतराग सम्यग्दृष्टियोंको तो समस्त दोषोंके स्थानभूत मिथ्यात्व-विषय-कषायरूप आयतनोंके त्यागसे केवलज्ञानादि अनंतगुणके स्थानभूत स्वशुद्धात्मामें निवास करना वही अनायतनोंकी सेवाका त्याग है । अनायतन शब्दका अर्थ कहा

गुणानामायतनं गृहमावास आश्रय आधारकरणं निमित्तमायतनं भण्यते तद्विपक्ष-भूतमनायतनमिति ।

अतः परं शंकाद्यष्टमलत्यागं कथयति । निःशंकाद्यष्टगुणप्रतिपालनमेव शङ्काद्यष्टमलत्यागो भण्यते । तद्यथा—रागादिदोषा अज्ञानं वाऽसत्यवचनकारणं तदुभयमपि वीतरागसर्वज्ञानां नास्ति, ततः कारणात्तत्प्रणीते हेयोपादेयतत्त्वे मोक्षे मोक्षमार्गे च भव्यैः शंका संशयः सन्देहो न कर्त्तव्यः । तत्र शंकादिदोषपरिहारविषये पुनरञ्जन-चौरकथा प्रसिद्धा । तत्रैव विभीषणकथा । तथाहि—सीताहरणप्रघट्टके रावणस्य राम-लक्ष्मणाभ्यां सह संग्रामप्रस्तावे विभीषणेन विचारितं रामस्तावदष्टमबलदेवो लक्ष्मण-

---

जाता है । सम्यक्त्वादि गुणोंके आयतन-घर-आवास-आश्रय-आधारके निमित्तको 'आयतन' कहते हैं और उससे विपरीत वह 'अनायतन' है ।

तत्पश्चात्, शंका आदि आठ दोषोंके त्यागका कथन करते हैं:—निःशंकता आदि आठ गुणोंका पालन करना वही शंकादि आठ दोषोंका त्याग कहलाता है । वह इसप्रकार है—रागादि दोष अथवा अज्ञान असत्य वचनका कारण है और ये दोनों (रागादि और अज्ञान) वीतराग-सर्वज्ञदेवमें नहीं हैं, इसकारण उनके द्वारा कहे हुए हेय-उपादेय तत्त्वमें, मोक्षमें और मोक्षमार्गमें भव्योंको शंका-संशय-संदेह करना योग्य नहीं है । वहां शंका आदि दोषके त्यागके संबंधमें अंजनचोरकी[1] कथा प्रसिद्ध है । उस सम्बन्धमें ही विभीषणकी[1] कथा भी (प्रसिद्ध) है । वह इसप्रकार—सीता हरण प्रकरणमें रावणके राम-लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके प्रसंगमें विभीषणने विचार किया कि राम तो आठवां बलदेव है और लक्ष्मण आठवां

---

१. इस कथाके संबंधमें मोक्षमार्ग प्रकाशकमें निम्न प्रकार कहा है । पृ० २७३ "तथा प्रथमानुयोगमें उपचाररूप कोई धर्मअंग होनेपर वहां सम्पूर्ण धर्म हुआ कहते हैं । जिस प्रकार जीवोंको शंका-कांक्षादि न करनेसे उनको सम्यक्त्व हुआ कहते हैं; परन्तु किसी कार्यमें शंका-कांक्षादि न करने मात्रसे सम्यक्त्व तो नहीं होता । सम्यक्त्व तो तत्त्व श्रद्धा होनेपर ही होता है; परन्तु यहां निश्चयसम्यक्त्वका तो व्यवहारसम्यक्त्वमें उपचार किया तथा व्यवहारसम्यक्त्वके किसी अंगमें संपूर्ण व्यवहारसम्यक्त्वका उपचार किया; इसप्रकार उनको उपचारसे सम्यक्त्व हुआ कहते हैं ।"

नोट:—उपचारसे सम्यग्ज्ञान तथा उपचारसे सम्यक्चारित्रका स्वरूप भी वहां कहा है, उसे वहांसे समझ लेना ।

श्चाष्टमो वासुदेवो रावणश्चाष्टमः प्रतिवासुदेव इति। तस्य च प्रतिवासुदेवस्य वासुदेवहस्तेन मरणमिति जैनागमे कथितमास्ते, तन्मिथ्या न भवतीति निःशंको भूत्वा, त्रैलोक्यकण्टकं रावणं स्वकीयज्येष्ठभ्रातरं त्यक्त्वा, त्रिंशदक्षौहिणीप्रमितचतुरंगबलेन सह स रामस्वामिपार्श्वे गत इति। तथैव देवकीवसुदेवद्वयं निःशङ्कं ज्ञातव्यम्। तथाहि—यदा देवकीबालकस्य मारणनिमित्तं कंसेन प्रार्थना कृता तदा ताभ्यां पर्यालोचितं मदीयः पुत्रो नवमो वासुदेवो भविष्यति तस्य हस्तेन जरासिन्धुनाम्नो नवमप्रतिवासुदेवस्य कंसस्यापि मरणं भविष्यतीति जैनागमे भणितं तिष्ठतीति, तथैवातिमुक्तभट्टारकैरपि कथितमिति निश्चित्य कंसाय स्वकीयं बालकं दत्तम्। तथा शेषभव्यैरपि जिनागमे शंका न कर्तव्येति। इदं व्यवहारेण निःशंकितत्वं व्याख्यानम्। निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिःशंकागुणस्य सहकारित्वेनेहलोकपरलोकात्राणागुप्तिमरणव्याधिवेदनाऽऽकस्मिक अभिधानभयसप्तकं मुक्त्वा घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेऽपि शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनैव निःशंकगुणो ज्ञातव्य इति ॥ १ ॥

वासुदेव है तथा रावण आठवां प्रतिवासुदेव है। उस प्रतिवासुदेवका मरण वासुदेवके हाथसे होता है ऐसा जैन आगममें कहा है, वह मिथ्या नहीं हो सकता हैं;—इसप्रकार निःशंक होकर अपने बड़े भाई, तीन लोकके कंटकरूप रावणको छोड़कर, (अपनी) तीस अक्षौहिणी चतुरंग सेना सहित वह रामचन्द्रके पास चला गया। उसीप्रकार देवकी और वसुदेव—इन दोनोंको भी निःशंक जानना। वह इसप्रकार—जब देवकीके पुत्रको मारनेके लिये कंसने प्रार्थनाकी तब उन दोनोंने (देवकी और वसुदेवने) विचार किया कि मेरा पुत्र नवमा वासुदेव होगा और उसके हाथसे जरासिन्धु नामक नववें प्रतिवासुदेवका और कंसका भी मरण होगा ऐसा जैन आगममें कहा है उसी प्रकार अतिमुक्त भट्टारकने भी कहा है;—इस प्रकार निश्चय करके कंसको अपना बालक दे दिया। उसीप्रकार अन्य भव्य जीवोंको भी जिनागममें शंका नहीं करना चाहिये।

यह व्यवहारनयसे[1] निःशंकित अंगका व्याख्यान किया। निश्चयसे तो, उसी व्यवहार-निःशंकितगुणके सहकारीपनेसे इहलोकभय, परलोकभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, व्याधि-वेदनाभय और अकस्मात भय—ये सात भय छोड़कर घोर उपसर्ग अथवा परीषह आने पर भी शुद्धोपयोगरूप निश्चयरत्नत्रयकी भावना वही निःशंकितगुण जानना ॥१॥

---

१. जिसको निश्चयनिशंकितगुण प्रगट होता है उसे यह उपचार लागू होता है ऐसा समझना।

अथ निष्कांक्षितागुणं कथयति । इहलोकपरलोकाशारूपभोगाकांक्षानिदानत्यागेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपमोक्षार्थं दानपूजातपश्चरणाद्यनुष्ठानकरणं निष्कांक्षागुणो भण्यते । तथानन्तमतीकन्याकथा प्रसिद्धा । द्वितीया च सीतामहादेवीकथा । सा कथ्यते । सीता यदा लोकापवादपरिहारार्थं दिव्ये शुद्धा जाता तदा रामस्वामिना दत्तं पट्टमहादेवीविभूतिपदं त्यक्त्वा सकलभूषणानगारकेवलिपादमूले कृतान्तवक्रादिराजभिस्तथा बहुराज्ञीभिश्च सह जिनदीक्षां गृहीत्वा शशिप्रभाधार्मिकासमुदायेन सह ग्रामपुरखेटकादिविहारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनया द्विपष्टिवर्षाणि जिनसमयप्रभावनां कृत्वा पश्चादवसाने त्रयस्त्रिंशद्दिवसपर्यन्तं निर्विकारपरमात्मभावनासहितं संन्यासं कृत्वाऽच्युताभिधानषोडशस्वर्गे प्रतीन्द्रतां याता । ततश्च निर्मलसम्यक्त्वफलं दृष्ट्वा धर्मानुरागेण नरके रावणलक्ष्मणयोः संबोधनं कृत्वेदानीं स्वर्गे तिष्ठति । अग्रे स्वर्गादागत्य सकलचक्रवर्ती भविष्यति । तौ च रावणलक्ष्मीधरौ तस्य पुत्रौ भविष्यतः । ततश्च तीर्थंकरपादमूले पूर्वभवान्तरं दृष्ट्वा पुत्रद्वयेन सह परिवारेण च सह जिनदीक्षां गृहीत्वा

अब, निष्कांक्षितगुणका कथन करते हैं:—इस लोक और परलोककी तृष्णारूप भोगाकांक्षानिदानके त्याग द्वारा केवलज्ञानादि अनंत गुणोंकी प्रगटतारूप मोक्षके लिये दान, पूजा, तपश्चरण आदि आचरण करना वह निःकांक्षित गुण कहलाता है । इस गुणमें अनन्तमती कन्याकी कथा[१] प्रसिद्ध है । दूसरी सीता महादेवीकी[१] कथा है । उसे कहते हैं:—जब सीता लोगोंकी निंदा दूर करनेके लिये अग्निकुण्डमें प्रवेश कर शुद्ध (निर्दोष) हुई तब रामचन्द्र द्वारा दिये गये पट्ट-महाराणी-विभूतिपद छोड़कर, सकलभूषण नामक केवलज्ञानीके पादमूलमें, कृतान्तवक्र आदि राजाओं और बहुतसी रानियोंके साथ जिनदीक्षा लेकर, शशिप्रभा आदि आर्यिकाओंके समूहके साथमें ग्राम, पुर, खेटक आदिमें विहार करती हुई, भेदाभेद रत्नत्रय भावनासे बासठ वर्ष तक जैनमतकी प्रभावना करके अंत समयमें तेंतीस दिन तक निर्विकार परमात्माकी भावना सहित सन्यास करके (—समाधिमरण करके) अच्युत नामक सोलहवें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ; तत्पश्चात् निर्मल सम्यक्त्वका फल देखकर धर्मानुरागसे नरकमें रावण और लक्ष्मणको संबोधन कर अब स्वर्गमें है । भविष्यमें स्वर्गसे आकर सीताका जीव सकल चक्रवर्ती होगा; रावण और लक्ष्मणके जीव उसके (सीताके जीवके) पुत्र होंगे । तत्पश्चात् तीर्थंकर-

---

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ८ पृष्ठ २७३ में उपचारका स्वरूप बताया है वह इन कथाओंको लागू पड़ता है ।

भेदाभेदरत्नत्रयभावनया पञ्चानुत्तरविमाने त्रयोप्यहमिन्द्रा भविष्यन्ति । तस्मादागत्य रावणस्तीर्थंकरो भविष्यति, सीता च गणधर इति, लक्ष्मीधरो धातकीखण्डद्वीपे तीर्थंकरो भविष्यति । इति व्यवहारनिष्कांक्षितागुणो विज्ञातव्यः । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिष्कांक्षागुणस्य सहकारित्वेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगत्यागेन निश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपारमार्थिकस्वात्मोत्थसुखामृतरसे चित्तसन्तोषः स एव निष्कांक्षागुण इति ॥ २ ॥

अथ निर्विचिकित्सागुणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयाराधकभव्यजीवानां दुर्गन्धबीभत्सादिकं दृष्ट्वा धर्मबुद्ध्या कारुण्यभावेन वा यथायोग्यं विचिकित्सापरिहरणं द्रव्यनिर्विचिकित्सागुणो भण्यते । यत्पुनर्जैनसमये सर्वं समीचीनं परं किन्तु वस्त्रा-प्रावरणं जलस्नानादिकं च न कुर्वन्ति तदेव दूषणमित्यादिकुत्सितभावस्य विशिष्टविवेक-बलेन परिहरणं सा भाव निर्विचिकित्सा भण्यते । अस्य व्यवहारनिर्विचिकित्सागुणस्य विषय उद्दायनमहाराजकथा रुक्मिणीमहादेवीकथा चागमप्रसिद्धा ज्ञातव्येति । निश्चयेन

देवके पादमूलमें अपना पूर्वभव देखकर, परिवार सहित दोनों पुत्र तथा सीताका जीव जिनदीक्षा लेकर भेदाभेदरत्नत्रयकी भावनासे पंच अनुत्तर विमानमें तीनों अहमिन्द्र होंगे । वहांसे आकर रावण तीर्थंकर होगा, और सीता (उसका) गणधर होगी । लक्ष्मण धातकीखंड द्वीपमें तीर्थंकर होगा । इसप्रकार व्यवहार निष्कांक्षित गुण जानना । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार निःकांक्षितगुणके सहकारीपनेसे[1], दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पंचेन्द्रियभोगोंका त्याग कर, निश्चयरत्नत्रयकी भावनासे उत्पन्न पारमार्थिक निजात्मजनित सुखामृतके रसमें चित्तका संतोष वही निष्कांक्षित गुण है ।।२।।

अब, निर्विचिकित्सागुण कहते हैं:—भेदाभेद रत्नत्रयके आराधक भव्य जीवोंकी दुर्गंध, खराब आकृति आदि देखकर धर्मबुद्धिसे अथवा करुणाभावसे योग्यता प्रमाण ग्लानि छोड़ना उसे द्रव्य-निर्विचिकित्सा गुण कहते हैं । "जैनमतमें सब बातें अच्छी हैं किन्तु मुनिको वस्त्र-रहितपना तथा वे जलस्नानादि नहीं करते वही दोष है"—ऐसा कुत्सित भाव, विशिष्ट विवेकबल द्वारा छोड़ना वह भाव-निर्विचिकित्सा कहलाता है । इस व्यवहार-निर्विचिकित्सागुणके विषयमें उद्दायन महाराजाकी और रुक्मिणी महादेवीकी कथा आगम प्रसिद्ध जानना । निश्चयसे

१. सहकारीपनेसे=निमित्तपनेसे; निमित्त उपादानमें कोई विशिष्टता उत्पन्न नहीं करता परन्तु उसी प्रकारके उचित निमित्तकी सन्निधि होती है । (देखो, श्री प्रवचनसार गाथा–९५ टीका पृ० १७९ आवृत्ति दूसरी)

पुनस्तस्यैव व्यवहारनिर्विचिकित्सागुणस्य बलेन समस्तद्वेषादिविकल्परूपकल्लोलमालात्यागेन निर्मलात्मानुभूतिलक्षणे निजशुद्धात्मनि व्यवस्थानं निर्विचिकित्सागुण इति ॥ ३ ॥

इतः परं अमूढदृष्टिगुणं कथयति । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतागमार्थाद्बहिर्भूतैः कुदृष्टिभिर्यत्प्रणीतं धातुवादखन्यवादहरमेखलक्षुद्रविद्याव्यन्तरविकुर्वणादिकमज्ञानिजनचिच्चमत्कारोत्पादकं दृष्ट्वा श्रुत्वा च योऽसौ मूढभावेन धर्मबुद्ध्या तत्र रुचिं भक्तिं न कुरुते स एव व्यवहारोऽमूढदृष्टिरुच्यते । तत्र चोत्तरमथुरायां उदुरुलिभट्टारकरेवतीश्राविकाचन्द्रप्रभनामविद्याधरब्रह्मचारिसम्बन्धिनीकथा प्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारामूढदृष्टिगुणस्य प्रसादेनान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वनिश्चये जाते सति समस्तमिथ्यात्वरागादिशुभाशुभसंकल्पविकल्पेष्टात्मबुद्धिमुपादेयबुद्धिं हितबुद्धिं ममत्वभावं त्यक्त्वा त्रिगुप्तिरूपेण विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजात्मनि यन्निश्चलावस्थानं तदेवामूढदृष्टित्वमिति । संकल्पविकल्पलक्षणं कथ्यते । पुत्रकलत्रादौ बहिर्द्रव्ये ममेदमिति कल्पना संकल्पः,

---

तो, उसी व्यवहार निर्विचिकित्सागुणके[1] वलसे समस्त द्वेषादि विकल्परूप तरंगोंका त्याग कर निर्मल आत्मानुभूति जिसका लक्षण है ऐसी निज शुद्धात्मामें स्थिति वही निर्विचिकित्सागुण है ॥३॥

इसके पश्चात्, अमूढ़दृष्टिगुणका कथन करते हैं:—वीतराग-सर्वज्ञ-प्रणीत आगमके अर्थसे विपरीत कुदृष्टियों द्वारा रचित जो रसायनशास्त्र, खनिजविद्या, हरमेखल, क्षुद्रविद्या, व्यन्तर-विकुर्वण आदि अज्ञानियोंके चित्तमें विस्मय उत्पन्न करने वाले शास्त्र देखकर और सुनकर जो कोई जीव मूढ़तासे उनमें धर्मवुद्धि द्वारा रुचि अथवा भक्ति नहीं करता है वही व्यवहार–अमूढ़दृष्टि कहलाता है। इस विषयमें उत्तर-मथुरामें उदुरुलि भट्टारक, रेवती श्राविका तथा चन्द्रप्रभ नामक विद्यावर व्रह्मचारीकी कथायें प्रसिद्ध हैं। निश्चयसे तो उसी व्यवहार-अमूढ़दृष्टि-गुणके प्रसादसे[2] अंतःतत्त्व और वहिःतत्त्वका निश्चय होनेपर समस्त मिथ्यात्व-रागादि शुभाशुभ संकल्प-विकल्पोंमें इष्टवुद्धि-आत्मवुद्धि-उपादेयवुद्धि-हितवुद्धि-ममत्वभावका त्याग कर त्रिगुप्तिरूपसे विशुद्धज्ञान-दर्शनस्वभावी निजात्मामें जो निश्चल स्थिति करना वही अमूढ़दृष्टिपना है। संकल्प और विकल्पका लक्षण कहते हैं : पुत्र, स्त्री आदि वाह्य द्रव्योंमें 'यह मेरा है' ऐसी कल्पना वह संकल्प है,

---

१. व्यवहार वल अर्थात् निमित्तकारण।

२. व्यवहारके प्रसादसे अर्थात् जव स्वसन्मुखतारूप निश्चय प्रसाद हो तव निमित्तको व्यवहार-नयसे प्रसाद कहा जाता है।

अभ्यन्तरे सुख्यहं दुःख्यहमिति हर्षविषादकारणं विकल्प इति। अथवा वस्तुवृत्त्या संकल्प इति कोऽर्थो विकल्प इति तस्यैव पर्यायः ॥४॥

अथोपगूहनगुणं कथयति। भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपो मोक्षमार्गः स्वभावेन शुद्ध एव तावत्, तत्राज्ञानिजननिमित्तेन तथैवाशक्तजननिमित्तेन च धर्मस्य पैशुन्यं दूषणमपवादो दुष्प्रभावना यदा भवति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्यऽर्थेन धर्मोपदेशेन वा यद्धर्मार्थं दोषस्य झम्पनं निवारणं क्रियते तद्व्यवहारनयेनोपगूहनं भण्यते। तत्र मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालग्नरत्नहरणे कृते सत्युपगूहनविषये जिनदत्तश्रेष्ठिकथा प्रसिद्धेति। अथवा रुद्रजनन्या ज्येष्ठासंज्ञाया लोकापवादे जाते सति यद्दोषझम्पनं कृतं तत्र चेलिनीमहादेवीकथेति। तथैव निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारोपगूहनगुणस्य सहकारित्वेन निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मनः प्रच्छादका ये मिथ्यात्वरागादिदोषास्तेषां तस्मिन्नेव परमात्मनि सम्यग्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपं यद्ध्यानं तेन प्रच्छादनं विनाशनं गोपनं झम्पनं तदेवोपगूहनमिति ॥ ५ ॥

अंतरंगमें 'मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं' ऐसा हर्ष-विषाद करना वह विकल्प है, अथवा वास्तविकरूपसे संकल्पका अर्थ क्या? विकल्प। [संकल्प वही विकल्प] वह उसकी ही पर्याय है। (संकल्प, विकल्पकी ही पर्याय है।) ॥४॥

अब उपगूहन गुण कहते हैं:—भेदाभेद[1] रत्नत्रयकी भावनारूप मोक्षमार्ग स्वभावसे शुद्ध ही है। उसमें अज्ञानी मनुष्योंके निमित्तसे तथा अशक्त मनुष्योंके निमित्तसे धर्मकी निन्दा-दोष-अपवाद अथवा अप्रभावना जब होती है तब आगमके अविरोधरूपसे शक्ति अनुसार धनसे अथवा धर्मोपदेशसे धर्मके लिये जो दोषोंको ढंका जाता है अथवा दूर किया जाता है वह व्यवहारनयसे उपगूहन कहलाता है। इस विषयमें मायाचारसे ब्रह्मचारीने पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमामें जड़ित रत्नकी चोरी की तब जिनदत्त श्रेष्ठीने उपगूहन किया वह कथा प्रसिद्ध है। अथवा रुद्रकी ज्येष्ठा नामक माताकी लोकनिंदा हुई तब उसका दोष ढंकने वाली चेलिनी महाराणीकी कथा प्रसिद्ध है। निश्चयसे तो, उसी व्यवहार उपगूहनगुणके सहकारीपनेसे[2] निज निरंजन निर्दोष परमात्माके आच्छादक मिथ्यात्व-रागादि दोषोंका, उसी परमात्माके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप ध्यानद्वारा प्रच्छादन-नाश-गोपण करना-ढंकना वही उपगूहनगुण है ॥५॥

---

१. भेद रत्नत्रय व्यवहारनय से शुद्ध है और अभेद रत्नत्रय निश्चयनयसे शुद्ध है, दोनों साथ होते हैं।

२. सहकारी=निमित्त।

अथ स्थितीकरणं कथयति । भेदाभेदरत्नत्रयधारकस्य चातुर्वर्णसङ्घस्य मध्ये यदा कोऽपि दर्शनचारित्रमोहोदयेन दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा परित्यक्तं वाञ्छति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्या धर्मश्रवणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन वा केनाप्युपायेन यद्धर्मे स्थिरत्वं क्रियते तद्व्यवहारेण स्थितीकरणमिति । तत्र च पुष्पडालतपोधनस्य स्थिरीकरणप्रस्तावे वारिषेणकुमारकथाऽऽगमप्रसिद्धेति । निश्चयेन पुनस्तेनैव व्यवहारेण स्थितीकरणगुणेन धर्मदृढत्वे जाते सति दर्शनचारित्रमोहोदयजनितसमस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निजपरमात्मस्वभावभावनोत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादेन तल्लयतन्मयपरमसमरसीभावेन चित्तस्थितीकरणमेव स्थितीकरणमिति ॥६॥

अथ वात्सल्याभिधानं सप्तमाङ्गं प्रतिपादयति । बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयाधारे चतुर्विधसंघे वत्से धेनुवत्पञ्चेन्द्रियविषयनिमित्तं पुत्रकलत्रसुवर्णादिस्नेहवद्वा यदकृत्रिम-

---

अब, स्थितिकरण गुणका कथन करते हैं:—भेदाभेद[1] रत्नत्रयके धारक (मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविकारूप) चार प्रकारके संघमेंसे कोई जब दर्शन और चारित्रमोहके उदयसे दर्शन, ज्ञान अथवा चारित्रका त्याग करनेकी इच्छा करता है तब आगमसे अविरोधरूपसे शक्ति प्रमाण धर्मश्रवणसे, धनसे, सामर्थ्यसे अथवा किसी भी उपायसे उसे धर्ममें स्थिर किया जाता है वह व्यवहारसे स्थितिकरण है । पुष्पडाल मुनिको धर्ममें स्थिर करनेके प्रसंगमें वारिषेणकुमारकी कथा आगम प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार-स्थितिकरण[2] गुणसे धर्ममें दृढ़ता होनेपर दर्शन और चारित्रमोहके उदयसे उत्पन्न समस्त मिथ्यात्व-रागादि विकल्पजालका त्याग कर निज परमात्मस्वभावकी भावनासे उत्पन्न परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वाद द्वारा परमात्मामें तल्लीन-तन्मय परम समरसीभावसे चित्तको स्थिर करना वही स्थितिकरणगुण है ॥६॥

अब, वात्सल्य नामक सातवां अंग कहते हैं:—बाह्य और अभ्यन्तर रत्नत्रयके धारक ऐसे चतुर्विध संघके प्रति, गायको बछड़ेके प्रति होता है उसीप्रकार अथवा पांच इन्द्रियके विषयके निमित्तभूत पुत्र, स्त्री, सुवर्णादिके प्रति स्नेह होता है उसीप्रकार,

---

१. भेदाभेद रत्नत्रय एकसाथ पांचवें तथा छट्ठे गुणस्थानमें होता है ऐसा यहां बतलाया है ।

२. व्यवहार-स्थितिकरण गुणके निमित्तसे ।

स्नेहकरणं तद् व्यवहारेण वात्सल्यं भण्यते। तत्र च हस्तिनागपुराधिपतिपद्मराजसंबन्धिना बलिनामदुष्टमन्त्रिणा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकाकम्पनाचार्यप्रभृतिसप्तशतयतीनामुपसर्गे क्रियमाणे सति विष्णुकुमारनाम्ना निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाराधकपरमयतिना विकुर्वणर्द्धि-प्रभावेण वामनरूपं कृत्वा बलिमन्त्रिपार्श्वे पादत्रयप्रमाणभूमिप्रार्थनं कृत्वा पश्चादेकः पादो मेरुमस्तके दत्तो द्वितीयो मानुषोत्तरपर्वते तृतीयपादस्यावकाशो नास्तीति वचनछलेन मुनिवात्सल्यनिमित्तं बलिमन्त्री बद्ध इत्येका तावदागमप्रसिद्धा कथा। द्वितीया च दशपुरनगराधिपतेर्वज्रकर्णनाम्नः उज्जयिनीनगराधिपतिना सिंहोदरमहाराजेन जैनोऽयं, मम नमस्कारं न करोतीति मत्वा दशपुरनगरं परिवेष्ट्य घोरोपसर्गे क्रियमाणे भेदाभेद-रत्नत्रयभावनाप्रियेण रामस्वामिना वज्रकर्णवात्सल्यनिमित्तं सिंहोदरो बद्ध इति रामायण-मध्ये प्रसिद्धेयं वात्सल्यकथेति। निश्चयवात्सल्यं पुनस्तस्यैव व्यवहारवात्सल्यगुणस्य सहकारित्वेन धर्मे दृढत्वे जाते सति मिथ्यात्वरागादिसमस्तशुभाशुभबहिर्भावेषु प्रीतिं त्यक्त्वा रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमस्वास्थ्यसंवित्तिसञ्जातसदानन्दैकलक्षणसुखामृत-

---

जो स्वाभाविक स्नेह होना उसे व्यवहारसे वात्सल्यगुण कहते हैं। उस संबंधमें हस्तिनागपुरके राजा पद्मराजके बलि नामक दुष्ट मंत्रीने जब निश्चय-व्यवहार रत्नत्रयके आराधक श्री अकंपनाचार्य आदि सातसौ मुनियोंने उपसर्ग किया तब निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गके आराधक विष्णुकुमार नामक मुनिने विक्रिया ऋद्धिके प्रभावसे, वामनरूप धारण करके बलि नामक मंत्रीके पास तीन डग भूमि मांगकर, एक पैर मेरुपर्वतके शिखर पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रखा और तीसरा पग रखनेका स्थान खाली नहीं है ऐसा कहकर वचनके छलसे मुनियोंके वात्सल्यके निमित्त बलि नामक मन्त्रीको बांधा—ऐसी एक आगमप्रसिद्ध कथा है। दूसरी एक वात्सल्यकी कथा, दशपुर नगरके वज्रकर्ण नामक राजाकी, रामायणमें प्रसिद्ध है; उज्जयिनीके राजा सिंहोदरने 'यह वज्रकर्ण जैन है और मुझे नमस्कार नहीं करता है' ऐसा जानकर दशरथपुर नगरको घेरा डालकर घोर उपसर्ग किया। तब भेदाभेदरत्नत्रयकी भावना जिनको प्रिय थी ऐसे रामचंद्रने वज्रकर्ण प्रतिके वात्सल्यके निमित्त सिंहोदरको बांधा। (—यह वात्सल्य कथा रामायणमें प्रसिद्ध है।) निश्चय वात्सल्य तो, उसी व्यवहार वात्सल्यगुणके सहकारीपनेसे धर्ममें दृढ़ता होनेपर, मिथ्यात्व-रागादि समस्त शुभाशुभ बहिर्भावोंमें प्रीति छोड़कर रागादि विकल्पोपाधिरहित, परम स्वास्थ्यके संवेदनसे उत्पन्न सदानन्द (नित्य आनंद) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादमें प्रीति करना ही है। इसप्रकार

रसास्वादं प्रति प्रीतिकरणमेवेति सप्तमाङ्गं व्याख्यातम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमाङ्गं नाम प्रभावनागुणं कथयति । श्रावकेन दानपूजादिना तपोधनेन च तपःश्रुतादिना जैनशासनप्रभावना कर्तव्येति व्यवहारेण प्रभावनागुणो ज्ञातव्यः । तत्र पुनरुत्तरमथुरायां जिनसमयप्रभावनशीलाया उर्विल्लामहादेव्याः प्रभावननिमित्तमुपसर्गे जाते सति वज्रकुमारनाम्ना विद्याधरश्रमणेनाकाशे जैनरथभ्रमणेन प्रभावना कृतेत्येका आगमप्रसिद्धा कथा । द्वितीया तु जिनसमयप्रभावनाशीलवप्रामहादेवीनाम-स्वकीयजनन्या निमित्तं स्वस्य धर्मानुरागेण च हरिषेणनामदशमचक्रवर्तिना तद्भवमोक्ष-गामिना जिनसमयप्रभावनार्थमुत्तुङ्गतोरणजिनचैत्यालयमण्डितं सर्वभूमितलं कृतमिति रामायणे प्रसिद्धेयं कथा । निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारप्रभावनागुणस्य बलेन मिथ्यात्व-विषयकषायप्रभृतिसमस्तविभावपरिणामरूपपरसमयानां प्रभावं हत्वा शुद्धोपयोगलक्षण-स्वसंवेदनज्ञानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मनः प्रकाशनमनुभवनमेव प्रभावनेति ॥ ८ ॥

सातवें अंगका व्याख्यान किया ॥७॥

अब, प्रभावनागुण नामक आठवें अंगका कथन करते हैं:—श्रावकको दान-पूजा आदि द्वारा और मुनिको तप-श्रुत आदिसे जैन शासनकी प्रभावना करना—इसे व्यवहारसे प्रभावनागुण जानना । इस विषयमें उत्तर मथुरामें जिनसमयकी प्रभावना करनेके स्वभाववाली उर्विल्ला महादेवीको प्रभावनाके निमित्तसे उपसर्ग होनेपर वज्रकुमार नामक विद्याधर श्रमणने आकाशमें जैनरथ भ्रमण कराकर प्रभावना की थी—यह एक आगमप्रसिद्ध कथा है । तथा दूसरी कथा यह है:—तद्भव मोक्षगामी हरिषेण नामक दसवें चक्रवर्तीने, जिनसमयकी प्रभावनाशील अपनी माता वप्रा महादेवीके निमित्तसे और अपने धर्मानुरागसे, जैनमतकी प्रभावनाके लिये ऊँचे तोरणवाले जिनमंदिरोंसे समस्त पृथ्वीको विभूषित किया था । यह कथा रामायणमें प्रसिद्ध है । निश्चयसे तो, उसी व्यवहार प्रभावना गुणके बलसे[1] मिथ्यात्व-विषय-कषायादि समस्त विभाव परिणामरूप परसमयोंका प्रभाव नष्ट करके शुद्धोपयोगलक्षण स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी निज शुद्धात्माका प्रकाशन–अनुभवन करना वही प्रभावना है ॥८॥

---

१. बलसे=निमित्तसे

एवमुक्तप्रकारेण मूढत्रयमदाष्टकषडनायतनशङ्काद्यष्टमलरहितं शुद्धजीवादितत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सरागसम्यक्त्वाभिधानं व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयम् । तथैव तेनैव व्यवहारसम्यक्त्वेन पारम्पर्येण साध्यं शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रियसुखादिकं च हेयमिति रुचिरूपं वीतरागचारित्राविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति । अत्र व्यवहारसम्यक्त्वमध्ये निश्चयसम्यक्त्वं किमर्थं व्याख्यातमिति चेत ? व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति ।

इदानीं येषां जीवानां सम्यग्दर्शनग्रहणात्पूर्वमायुर्बन्धो नास्ति तेषां व्रताभावेऽपि नरनारकादिकुत्सितस्थानेषु जन्म न भवतीति कथयति । "सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि । दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥१॥" इतः परं मनुष्यगतिमुत्पन्नसम्यग्दृष्टेः प्रभावं कथयति । "ओजस्तेजोविद्या-

---

इसप्रकार उक्त प्रकारसे तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन और शंका आदि आठ दोष रहित शुद्ध जीवादितत्त्वार्थोंका श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसा सरागसम्यक्त्व नामक व्यवहार[1]-सम्यक्त्व जानना। उसीप्रकार उसी व्यवहारसम्यक्त्वसे परंपरासे साध्य ऐसा, शुद्धोपयोगलक्षण निश्चयरत्नत्रयकी भावनासे उत्पन्न परमाह्लाद जिसका एक रूप है ऐसे सुखामृतरसका आस्वाद ही उपादेय है और इन्द्रियसुखादि हेय है ऐसी रुचिरूप, वीतरागचारित्रका अविनाभावी वीतराग-सम्यक्त्व नामक निश्चय-सम्यक्त्व जानना।

प्रश्नः—यहां व्यवहारसम्यक्त्वके कथनमें निश्चयसम्यक्त्वका कथन किसलिये किया ?

उत्तरः—व्यवहार-सम्यक्त्वसे निश्चय-सम्यक्त्वकी सिद्धि होती है ऐसा साध्यसाधकभावका ज्ञान करानेके लिये कथन किया है।

अब, जिन जीवोंको सम्यग्दर्शनके ग्रहण होनेसे पहले आयुष्यका बंध न हुआ हो उनको व्रत न हों तो भी निन्द्य नर-नारक आदिके स्थानमें जन्म नहीं होता है ऐसा कहते हैं : "सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यग्नपुंसकस्त्रीत्वानि । दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥[2] [अर्थः—जिनको सम्यग्दर्शन शुद्ध है परन्तु अव्रती है वे भी नरकगति, तिर्यंचगति, नपुंसकपना, स्त्रीपना, नीचकुल, अंगहीन शरीर, अल्प आयु और दरिद्रपनेको प्राप्त नहीं होते हैं।]" अब, मनुष्यगतिमें उत्पन्न

---

१. भूमिकायोग्य व्यवहार अर्थात् शुभरागके साथका अनुपचरित सम्यग्दर्शन ।
२. श्री रत्नकरंड श्रावकाचार गाथा-३५

वीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः । महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥१॥" अथ देवगतौ पुनः प्रकीर्णकदेववाहनदेवकिल्विषदेवनीचदेवत्रयं विहायान्येषु महर्द्धिकदेवेषूत्पद्यते सम्यग्दृष्टिः । इदानीं सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं देवायुष्कं विहाय ये बद्धायुष्कास्तान् प्रति सम्यक्त्वमाहात्म्यं कथयति । "हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसवण-भवणसव्वइत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ।" तमेवार्थं प्रकारान्तरेण कथयति । "ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यक्षु नृसुरस्त्रीषु सद्दृष्टिनैव जायते"[1] ॥१॥ अथौपशमिकवेदकक्षायिकाभिधानसम्यक्त्वत्रयमध्ये कस्यां गतौ कस्य सम्यक्त्वस्य सम्भवोऽस्तीति कथयति—"[2]सौधर्मादिष्वसंख्याब्दायुष्कतिर्यक्षु

सम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रभावका कथन करते हैं:—"ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजय-विभवसनाथाः । उत्तमकुला महार्था मानवतिलका भवन्तिद् र्शनपूताः ॥ [अर्थः—जो दर्शनसे पवित्र हैं वे उत्साह, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय और वैभव सहित, उत्तम कुलयुक्त, प्रचुर धनवान और मनुष्योंमें शिरोमणि होते हैं ।]"[3] तथा देवगतिमें प्रकीर्णक देव, वाहन देव, किल्विष देव और तीनों नीच देवों (व्यन्तर-भवनवासी-ज्योतिषी) के अतिरिक्त महाऋद्धिधारक देवोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं ।

अब, सम्यक्त्वके ग्रहणके पूर्व जिन्होंने देव-आयुष्य बांधी हो उनके संबंधमें सम्यक्त्वका माहात्म्य कहते हैं । "हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसवणभवणसव्वइत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥ [अर्थः—नीचेके छह नरकोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें, सब स्त्रियोंमें, लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता है; तथा सासादन सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त नारकीरूपसे उत्पन्न नही होता है ।]"[4] वही अर्थ दूसरे प्रकारसे कहते हैं:—"ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्-स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यक्षु नृसुरस्त्रीषु सद्दृष्टिर्नैव जायते ॥ [अर्थः—ज्योतिषी, भवन-वासी और व्यन्तरदेवोंमें, नीचेकी छह नरककी पृथ्वियोंमें, तिर्यंचोंमें, मनुष्य स्त्रियोंमें और देवांगनाओंमें सम्यग्दृष्टि उत्पन्न[5] नही होते हैं ।]"

औपशमिक, वेदक और क्षायिक नामक तीन सम्यक्त्वोंमेंसे किस गतिमें कौनसा सम्यक्त्व संभव है उसका कथन करते हैं:—"सौधर्म[5] आदि स्वर्गोंमें, असंख्य

---

१. निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु षट्स्वधः वनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिर्न जायते ॥२९८॥
२. नृभोगभूमितिर्यक्षु सौधर्मादिषु नाकिषु । आद्यायां श्वभ्रभूमौ च सम्यक्त्वत्रयमिष्यते ॥३००॥ [अमितगति (पंचसंग्रह)]
३. श्री रत्नकरंड श्रावकाचार गाथा–३६
४. श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा–१२८
५. श्री सुभाषित रत्न संदोह गाथा–८२९

नृष्वपि । रत्नप्रभावनौ च स्यात्सम्यक्त्वत्रयमङ्गिनाम् ॥२॥" कर्मभूमिजपुरुषे च त्रयं सम्भवति बद्धायुष्के लब्धायुष्केऽपि । किन्त्वौपशमिकमपर्याप्तावस्थायां महर्द्धिकदेवेष्वेव । "[1]शेषेषु देवतिर्यक्षु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । द्वौ वेदकोपशमकौ स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ।३।" इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविनः प्रथमावयवभूतस्य सम्यक्त्वस्य व्याख्यानेन गाथा गता ॥ ४१ ॥

अथ रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गद्वितीयावयवरूपस्य सम्यग्ज्ञानस्य स्वरूपं प्रतिपादयति—

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु ॥४२॥

वर्षके आयुष्यवाले, तिर्यंचोंमें, मनुष्योंमें और रत्नप्रभा प्रथम नरकमें तीनों सम्यक्त्व होते हैं ॥२॥" जिन्होंने आयुष्य बांधा हो अथवा न बांधा हो वैसे कर्मभूमिके मनुष्योंमें तीनों सम्यक्त्व होते हैं, परन्तु अपर्याप्त अवस्थामें औपशमिक सम्यक्त्व महर्द्धिक देवोंमें ही होता है । "शेषेषु देवतिर्यक्षु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । द्वौ वेदकोपशमकौ स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ॥ [अर्थः—शेष देवों और तिर्यंचोंमें और नीचेकी छह नरक भूमियोंमें पर्याप्त जीवोंको वेदक और उपशम ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं ।]"

इसप्रकार निश्चय-व्यवहार[1] रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग जोकि अवयवी है, उसके प्रथम अवयवरूप सम्यक्त्वका व्याख्यान करनेवाली गाथा पूर्ण हुई ॥४१॥

अब रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गके दूसरे अवयवरूप सम्यग्ज्ञानका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं:—

---

१. शेष त्रिदशतिर्यक्षु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । पर्याप्तेषु द्वयं ज्ञेयं क्षायिकेण विनांगिषु ॥३०१॥ (अमितगति) पंचसंग्रह प्रथम परिच्छेद

१. निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय एक साथ ही होता है । व्यवहारका प्रत्येक समय आंशिक अभाव होकर निश्चय रत्नत्रय वृद्धिगत होता है ।

संसंय विमोह विभ्रम दूरि, आपा परकूं गहै जरूरि ।
सो है सम्यक्ज्ञान, अनेक, भेद लीयें साकार अटेक ॥४२॥

संशयविमोहविभ्रमविवर्जित आत्मपरस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यक् ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ।।४२।।

व्याख्याः—"संसयविमोहविब्भमविवज्जियं" "संशयः" शुद्धात्मतत्त्वादिप्रतिपादकमागमज्ञानं किं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं भविष्यति परसमयप्रणीतं वेति, संशयः । तत्र दृष्टान्तः—स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । "विमोहः" परस्परसापेक्षनयद्वयेन द्रव्यगुणपर्यायादिपरिज्ञानाभावो विमोहः । तत्र दृष्टान्तः—गच्छत्तृणस्पर्शवद्दिग्मोहवद्वा । "विभ्रमः" अनेकान्तात्मकवस्तुनो नित्यक्षणिकैकान्तादिरूपेण ग्रहणं विभ्रमः । तत्र दृष्टान्तः—शुक्तिकायां रजतविज्ञानवत् । "विवज्जियं" इत्युक्तलक्षणसंशयविमोहविभ्रमैर्वर्जितं, "अप्पपरसरूवस्स गहणं" सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्वात्मरूपस्य ग्रहणं परिच्छेदनं परिच्छित्तिस्तथा परद्रव्यस्य च भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरूपस्य जीवसम्बन्धिनस्तथैव

गाथा–४२

गाथार्थः—आत्मा और परपदार्थोंके स्वरूपको संशय, विमोह और विभ्रम-रहित जानना वह सम्यक्ज्ञान है; वह साकार और अनेक भेदोंवाला है ।

टीकाः—"संसयविमोहविब्भमविवज्जियं" संशय—शुद्ध आत्मतत्त्वादिका प्रतिपादक शास्त्रज्ञान, क्या वीतरागसर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य होगा या अन्यमतियों द्वारा कथित सत्य होगा, यह संशय है । उसका दृष्टांत—वृक्षका ठूंठ है या मनुष्य है ? विमोह—परस्पर सापेक्ष[1] द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंके प्रमाणसे द्रव्य-गुण-पर्यायादिके ज्ञानका अभाव वह विमोह है । वहां दृष्टांत—गमन करनेवाले पुरुषको पैरमें तृण आदिका स्पर्श होनेपर स्पष्ट ज्ञान न हो कि किसका स्पर्श हुआ अथवा दिशा भूल जाना । विभ्रम—अनेकान्तात्मक वस्तुको 'यह नित्य ही है,' 'यह क्षणिक ही है' ऐसा एकान्तरूप जानना वह विभ्रम है । उसका दृष्टांत—सीपमें चांदीका ज्ञान । "विवज्जियं" इन पूर्वोक्त लक्षणोंवाले संशय, विमोह और विभ्रमसे रहित, "अप्पपरसरूवस्स गहणं" सहज शुद्ध केवलज्ञान-दर्शन-स्वभावी निजात्मस्वरूपका ग्रहण-परिच्छेदन-परिच्छित्ति और परद्रव्यका स्वरूप अर्थात् भावकर्म–द्रव्यकर्म–नोकर्मका स्वरूप, पुद्गल आदि पांच द्रव्योंका स्वरूप

---

१. द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय एक दूसरेकी अपेक्षा सहित होते हैं, निरपेक्ष नहीं होते । जैसे, द्रव्यका ज्ञान मुख्य हो तब पर्यायका ज्ञान गौण होता है, सर्वथा अभावरूप नहीं होता है–पर्यायका सर्वथा अस्वीकार नहीं होता है ।

पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपस्य परकीयजीवरूपस्य च परिच्छेदनं यत्तत् "सम्मण्णाणं" सम्यग्ज्ञानं भवति । तच्च कथंभूतं ? "सायारं" घटोऽयं पटोऽयमित्यादिग्रहण-व्यापाररूपेण साकारं सविकल्पं व्यवसायात्मकं निश्चयात्मकमित्यर्थः । पुनश्च किं विशिष्टं ? "अणेयभेयं तु" अनेकभेदं तु पुनरिति ।

तस्य भेदाः कथ्यन्ते । मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदेन पञ्चधा । अथवा श्रुतज्ञानापेक्षया द्वादशाङ्गमङ्गबाह्यं चेति द्विभेदम् । द्वादशाङ्गानां नामानि कथ्यन्ते । आचारं, सूत्रकृतं, स्थानं, समवायनामधेयं, व्याख्याप्रज्ञप्तिः, ज्ञातृकथा, उपासकाध्ययनं, अन्तकृतदशं, अनुत्तरोपपादिकदशं, प्रश्नव्याकरणं, विपाकसूत्रं, दृष्टिवादश्चेति । दृष्टिवादस्य च परिकर्मसूत्रप्रथमानुयोगपूर्वगतचूलिकाभेदेन पञ्चभेदाः कथ्यन्ते । तत्र चन्द्रसूर्य-जम्बूद्वीपद्वीपसागरव्याख्याप्रज्ञप्तिभेदेन परिकर्म पञ्चविधं भवति । सूत्रमेकभेदमेव । प्रथमानुयोगोऽप्येकभेदः । पूर्वगतं पुनरुत्पादपूर्वं, अग्रायणीयं, वीर्यानुप्रवादं, अस्तिनास्ति-प्रवादं, ज्ञानप्रवादं, सत्यप्रवादं, आत्मप्रवादं, कर्मप्रवादं, प्रत्याख्यानं, विद्यानुवादं,

---

तथा अन्य जीवका स्वरूप जानना वह "सम्मण्णाणं" सम्यक्ज्ञान है । वह कैसा है ? "सायारं" यह घट है, यह वस्त्र है, इत्यादि जाननेके व्यापाररूपसे साकार है; सविकल्प-व्यवसायात्मक-निश्चयात्मक ऐसा ('साकार' का) अर्थ है । तथा कैसा है ? "अणेयभेयं तु" अनेक भेदोंवाला है ।

सम्यग्ज्ञानके भेद कहते हैं:—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान—इन भेदोंसे सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार है अथवा श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे द्वादशांग और अंगबाह्य—इस भांति दो प्रकार है । बारह अंगके नाम कहते है:—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अंतकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्न व्याकरणांग, विपाकसूत्रांग और दृष्टिवाद—ये बारह अंगोंके नाम हैं । दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगके परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका—इन पांच भेदोंका कथन करते हैं । चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्या-प्रज्ञप्ति—इस प्रकार परिकर्मके पांच प्रकार हैं । सूत्र एक ही प्रकारका है । प्रथमानुयोगका भी एक भेद है । पूर्वगतके चौदह भेद हैं:—उत्पादपूर्व, अग्रायणीपूर्व, वीर्यानुप्रवादपूर्व, अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवाद-पूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणपूर्व, प्राणानुवादपूर्व,

कल्याणनामधेयं, प्राणानुवादं, क्रियाविशालं, लोकसंज्ञं, पूर्वं चेति चतुर्दशभेदम् । जलगतस्थलगताकाशगतहरमेखलादिमायास्वरूपशाकिन्यादिरूपपरावर्तनभेदेन चूलिका पञ्चविधा चेति संक्षेपेण द्वादशाङ्गव्याख्यानम् । अङ्गबाह्यं पुनः सामायिकं, चतुर्विंशतिस्तवं, वन्दना, प्रतिक्रमणं, वैनयिकं, कृतिकर्म, दशवैकालिकम्, उत्तराध्ययनं, कल्पव्यवहारः, कल्पाकल्पं, महाकल्पं, पुण्डरीकं, महापुण्डरीकं, अशीतिकं चेति चतुर्दशप्रकीर्णकसंज्ञं बोद्धव्यमिति ।

अथवा वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्करभरतादिद्वादशचक्रवर्तिविजयादिनवबलदेव त्रिपृष्ठादिनववासुदेवसुग्रीवादिनवप्रतिवासुदेवसम्बन्धित्रिषष्टिपुरुषपुराणभेदभिन्नः प्रथमानुयोगो भण्यते । उपासकाध्ययनादौ श्रावकधर्मम्, आचाराराधनादौ यतिधर्मं च यत्र मुख्यत्वेन कथयति स चरणानुयोगो भण्यते । त्रिलोकसारे जिनान्तरलोकविभागादिग्रन्थव्याख्यानं करणानुयोगो विज्ञेयः । प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तादौ यत्र शुद्धाशुद्धजीवादिषड्द्रव्यादीनां मुख्यवृत्त्या व्याख्यानं क्रियते स द्रव्यानुयोगो भण्यते । इत्युक्तलक्षणा-

---

क्रियाविशालपूर्व और लोकविन्दुसारपूर्व । जलगत चूलिका, स्थलगत चूलिका, आकाशगत चूलिका, हरमेखला आदि मायास्वरूप चूलिका और शाकिनी आदि रूप परिवर्तन चूलिका—इस भांति चूलिकाके पांच प्रकार हैं । इसप्रकार संक्षेपमें बारह अंगका व्याख्यान है और जो अंगबाह्य श्रुतज्ञान है वह सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक और अशीतिक—इसप्रकार चौदह प्रकारका प्रकीर्णक जानना ।

अथवा श्री ऋषभनाथ आदि चौबीस तीर्थंकर, भरतादि बारह चक्रवर्ती, विजय आदि नव बलदेव, त्रिपृष्ठ आदि नव नारायण और सुग्रीव आदि नव प्रतिनारायण संबंधी त्रेसठ शलाका पुरुषोंके पुराणभेदसे भेदवाले प्रथमानुयोग कहलाता है । उपासकाध्ययनादिमें श्रावकधर्मका और आचार आराधना आदिमें यतिधर्मका जहां मुख्यरूपसे कथन किया जाता है वह चरणानुयोग कहलाता है । त्रिलोकसारमें तीर्थंकरोंका अंतरकाल और लोकविभाग आदिका व्याख्यान है—ऐसे ग्रन्थ करणानुयोगके जानना । प्राभृत और तत्त्वार्थसिद्धांतादिमें जहां मुख्यरूपसे शुद्ध-अशुद्ध जीवादि छह द्रव्य आदिका व्याख्यान किया जाता है वह द्रव्यानुयोग कहलाता है । इसप्रकार उक्त लक्षणवाले चार अनुयोगरूपसे चार प्रकारका श्रुतज्ञान जानना ।

नुयोगचतुष्टयरूपेण चतुर्विधं श्रुतज्ञानं ज्ञातव्यम् । अनुयोगोऽधिकारः परिच्छेदः प्रकरणमित्याद्येकोऽर्थः । अथवा षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु (मध्ये) निश्चयनयेन स्वकीय शुद्धात्मद्रव्यं, स्वशुद्धजीवास्तिकायो निजशुद्धात्मतत्त्वं निजशुद्धात्म-पदार्थ उपादेयः । शेषं च हेयमिति संक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विधा व्यवहारज्ञानमिति ।

इदानीं तेनैव विकल्परूपव्यवहारज्ञानेन साध्यं निश्चयज्ञानं कथ्यते । तथाहि— रागात् परकलत्रादिवाञ्छारूपं, द्वेषात् परवधबन्धच्छेदादिवाञ्छारूपं; च मदीयापध्यानं कोऽपि न जानातीति मत्वा स्वशुद्धात्मभावनासमुत्पन्नसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसनिर्मल-जलेन चित्तशुद्धिमकुर्वाणः सन्नयं जीवो बहिरङ्गबकवेषेण यल्लोकरञ्जनां करोति तन्मायाशल्यं भण्यते । निजनिरञ्जननिर्दोषपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपसम्यक्त्वाद्वि-लक्षणं मिथ्याशल्यं भण्यते । निर्विकारपरमचैतन्यभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृत-रसास्वादमलभमानोऽयं जीवो दृष्टश्रुतानुभूतभोगेषु यन्नियतम् निरन्तरम् चित्तम् ददाति

अनुयोग, अधिकार, परिच्छेद और प्रकरण आदिका एक ही अर्थ है । अथवा छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थोंमें निश्चयनयसे अपना शुद्धात्म-द्रव्य, स्वशुद्धजीवास्तिकाय, निज शुद्धात्मतत्त्व और निजशुद्धात्म पदार्थ उपादेय है और शेष हेय हैं—इसप्रकार संक्षेपमें हेय-उपादेयके भेदसे व्यवहारज्ञान दो प्रकारका है ।

अब, उसी विकल्परूप व्यवहारज्ञानसे साध्य निश्चयज्ञानका कथन करते हैं । वह इसप्रकार है—रागसे परस्त्री आदिकी वांछारूप और द्वेषसे दूसरेको मारने, बांधने, छेदने आदिकी वांछारूप मेरा दुर्ध्यान है, उसे कोई भी नहीं जानता है इसप्रकार विचारकर स्वशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न सदानंद (नित्य आनंद) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतरसरूप निर्मल जलसे (अपने) चित्तकी शुद्धि न करता हुआ, यह जीव बाह्यमें बगुले जैसा वेष धारण करके लोगोंका रंजन करता है वह मायाशल्य कहलाती है । 'निज निरंजन[1] निर्दोष परमात्मा ही उपादेय है' ऐसी रुचिरूप सम्यक्त्वसे विलक्षण मिथ्याशल्य कहलाती है । निर्विकार परमचैतन्यकी भावनासे उत्पन्न परमाह्लाद जिसका एकरूप है ऐसे सुखामृतरसका स्वाद न लेते हुए यह जीव देखे हुए, सुने हुए और अनुभव किये गये भोगोंमें जो निरन्तर चित्तको

---

१. सर्व प्रकारकी शुद्धि निज निरञ्जन निर्दोष परमात्माके ही आश्रयसे होती है, अन्य प्रकारसे नहीं—ऐसा ज्ञान कराने के लिये उसीको उपादेय कहा जाता है ।

तन्निदानशल्यमभिधीयते । इत्युक्तलक्षणशल्यत्रयविभावपरिणामप्रभृतिसमस्तशुभाशुभ-सङ्कल्पविकल्परहितेन परमस्वास्थ्यसंवित्तिसमुत्पन्नतात्त्विकपरमानंदैकलक्षणसुखामृततृप्तेन स्वेनात्मना स्वस्य सम्यग्निर्विकल्परूपेण वेदनं परिज्ञानमनुभवनमिति निर्विकल्पस्वसंवेदन-ज्ञानमेव निश्चयज्ञानं भण्यते ।

अत्राह शिष्यः । इत्युक्तप्रकारेण प्राभृतग्रन्थे यन्निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं भण्यते, तन्न घटते । कस्मादितिचेत् ? तदुच्यते—सत्तावलोकरूपं चक्षुरादिदर्शनं यथा जैनमते निर्विकल्पं कथ्यते, तथा बौद्धमते ज्ञानं निर्विकल्पकं भण्यते, परं किन्तु तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनकं भवति । जैनमते तु विकल्पस्योत्पादकं भवत्येव न, किन्तु स्वरूपेणैव सविकल्पमिति । तथैव स्वपरप्रकाशकं चेति । तत्र परिहारः । कथंचित् सविकल्पकं निर्विकल्पकं च । तथाहि—यथा विषयानन्दरूपं स्वसंवेदनं रागसंवित्ति-विकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । तथा स्वशुद्धात्मसंवित्तिरूपं वीतराग-

---

रोकता है उसे निदानशल्य कहते हैं । उपरोक्त लक्षणयुक्त तीन शल्य, विभाव-परिणाम आदि समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्परहित, परम स्वास्थ्यके संवेदनसे उत्पन्न हुआ तात्त्विक परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतसे तृप्त अपने आत्मा द्वारा अपना सम्यक् निर्विकल्परूपसे वेदन-परिज्ञान-अनुभवन ऐसा जो निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान वही निश्चयज्ञान कहलाता है ।

यहां शिष्य शंका करता है:—उपरोक्त प्रकारसे प्राभृत ग्रन्थमें जो निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कहा गया है वह घटित नहीं होता है । 'किसलिये घटित नहीं होता है ?' ऐसा कहा जाय तो कारण बतलाते हैं:—जिसप्रकार जैनमतमें सत्तावलोकन-रूप चक्षु आदि दर्शन निर्विकल्प कहलाता है उसीप्रकार बौद्धमतमें ज्ञान निर्विकल्प कहलाता है । परन्तु वह निर्विकल्प होने पर भी (वहां) विकल्पको उत्पन्न करने-वाला कहलाता है । जैनमतमें तो ज्ञान विकल्पको उत्पन्न करनेवाला ही नहीं है परन्तु स्वरूपसे ही सविकल्प है और उसी प्रकार स्वपरप्रकाशक है । शंकाका परिहार:—जैनसिद्धांतमें ज्ञानको कथंचित् सविकल्प और कथंचित् निर्विकल्प माना जाता है । वह इस प्रकार है—जिसप्रकार विषयानंदरूप जो संवेदन है वह राग सवेदनके विकल्परूप होनेसे सविकल्प है तो भी शेष अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पोंका सद्भाव होने पर भी उनका मुख्यपना नहीं है इस कारण निर्विकल्प भी कहलाता है; उसीप्रकार स्वशुद्धात्माके संवेदनरूप वीतराग स्वसंवेदनज्ञान भी स्वसंवेदनके

स्वसंवेदनज्ञानमपि स्वसंवित्त्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते । यत एवेहापूर्वस्वसंवित्त्याकारान्तर्मुखप्रतिभासेऽपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मा-विकल्पा अपि सन्ति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशकं च सिद्धम् । इदं तु सविकल्पक-निर्विकल्पकस्य तथैव स्वपरप्रकाशकस्य ज्ञानस्य च व्याख्यानं यद्यागमाध्यात्मतर्कशास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तारो भवति । स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न कृत इति ।

एवं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गावयविनो द्वितीयावयवभूतस्य ज्ञानस्य व्याख्यानेन गाथा गता ॥४२॥

अथ निर्विकल्पसत्ताग्राहकं दर्शनं कथयति:—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

एक आकाररूप विकल्पमय होनेसे सविकल्प है तो भी बाह्यविषयोंके अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पोंका सद्भाव होने पर भी उनका मुख्यपना न होने से निर्विकल्प भी कहलाता है । यहां अपूर्व स्वसंवेदनके आकाररूप अंतर्मुख प्रतिभास होने पर भी बाह्य-विषयोंके अनिच्छित सूक्ष्म विकल्प भी हैं, इसीकारण ज्ञान स्वपरप्रकाशक भी सिद्ध होता[1] है । यदि यह सविकल्प-निर्विकल्प और स्व-परप्रकाशक ज्ञानका व्याख्यान आगम, अध्यात्म और तर्कशास्त्रका अनुसरण करके विशेषरूपसे किया जाय तो बहुत विस्तार हो जाये । परन्तु यह (द्रव्यसंग्रह) अध्यात्मशास्त्र होनेसे उतना विस्तार नहीं किया है ।

इसप्रकार रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग जो अवयवी है उसके दूसरे अवयवरूप ज्ञानके व्याख्यान द्वारा गाथा समाप्त हुई ॥४२॥

अब विकल्परहित सत्ताका ग्रहण करनेवाले दर्शनका कथन करते हैं:—

---

१. श्री समयसार मोक्षअधिकार गाथा २९२ की श्री जयसेनाचार्य कृत टीका पृ० ३८३–३८४ (श्री राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)

दर्शन अवलोकन, सो जुदा, गहै वस्तु सामान्यहि तदा ।
बिन आकार विशेषनि हीन, जिनमत भाषैं यों परवीन ॥४३॥

यत् सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम् ।
अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनं इति भण्यते समये ॥४३॥

व्याख्या—"जं सामण्णं गहणं भावाणं" यत् सामान्येन सत्तावलोकनेन ग्रहणं परिच्छेदनं, केषां ? भावानां पदार्थानां; किं कृत्वा ? "णेव कट्टुमायारं" नैव कृत्वा, कं ? आकारं विकल्पं, तदपि किं कृत्वा ? "अविसेसिदूण अट्ठे" अविशेष्याविभेद्यार्थान्; केन रूपेण ? शुक्लोऽयं, कृष्णोऽयं, दीर्घोऽयं, ह्रस्वोऽयं, घटोऽयं, पटोऽयमित्यादि । "दंसणमिदि भण्णए समए" तत्सत्तावलोकं दर्शनमिति भण्यते समये परमागमे । नेदमेव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यग्दर्शनं वक्तव्यम् । कस्मादिति-चेत् ? तत्र श्रद्धानं विकल्परूपमिदं तु निर्विकल्पं यतः । अयमत्र भावः—यदा कोऽपि किमप्यवलोकयति पश्यति, तदा यावत् विकल्पं न करोति तावत् सत्तामात्रग्रहणं दर्शनं भण्यते, पश्चाच्छुक्लादिविकल्पे जाते ज्ञानमिति ॥४३॥

गाथा–४३

गाथार्थः—पदार्थोंमें विशेषपना किये बिना (भेद किये बिना), आकार अर्थात् विकल्प किये बिना, पदार्थोंका जो सामान्यरूपसे (सत्तावलोकनरूप) ग्रहण उसे परमागममें दर्शन कहा जाता है ।

टीकाः—"जं सामण्णं गहणं भावाणं" जो सामान्यरूपसे अर्थात् सत्तावलोकन-रूपसे ग्रहण करना—परिच्छेदन करना; किसका ग्रहण करना ? पदार्थोंका-भावोंका ग्रहण करना; किस प्रकार ? "णेव कट्टुमायारं" नहीं करके, क्या नहीं करके ? आकार अथवा विकल्प; वह भी क्या करके ? "अविसेसिदूण अट्ठे" पदार्थोंका विशेष (भेद) न करके; किस रूपसे ? यह सफेद है, यह काला है, यह दीर्घ है, यह ह्रस्व है, यह घट है, यह पट है इत्यादिरूपसे; "दंसणमिदि भण्णए समए" वह परमागममें सत्तावलोकनरूप दर्शन कहलाता है । इस दर्शनको ही तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणयुक्त सम्यग्दर्शन नहीं कहना । किसलिये नहीं कहना ? क्योंकि वह श्रद्धान तो विकल्परूप[1] है और यह दर्शन विकल्परहित है । यहां तात्पर्य यह है : जब कोई भी कुछ भी अवलोकन करता है–देखता है, तब, जब तक वह विकल्प नहीं करता तब तक सत्तामात्रके ग्रहणरूप दर्शन कहलाता है, तत्पश्चात् शुक्ल आदि विकल्प[2] होने पर ज्ञान कहलाता है ॥४३॥

---

१. वह श्रद्धा तो विकल्परूप है—वह श्रद्धा सब पदार्थोंसे भिन्न निज शुद्ध परमात्मद्रव्यको विषय करती है ।

२. अर्थोंके आकारोंका अवभासन वह विकल्प ।

अथ छद्मस्थानां ज्ञानं सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं भवति, मुक्तात्मनां युगपदिति प्रतिपादयतिः—

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा ।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानां न द्वौ उपयोगौ ।
युगपत् यस्मात् केवलिनाथे युगपत् तु तौ द्वौ अपि ॥४४॥

व्याख्या—"दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं" सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति छद्मस्थानां संसारिणां । कस्मात् ? "ण दोण्णि उवउग्गा जुगवं जह्मा" ज्ञान-दर्शनोपयोगद्वयं युगपन्न भवति यस्मात् । "केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि" केवलिनाथे तु युगपत्तौ ज्ञानदर्शनोपयोगौ द्वौ भवत इति ।

अथ विस्तरः—चक्षुरादीन्द्रियाणां स्वकीयस्वकीयक्षयोपशमानुसारेण तद्योग्य-देशस्थितरूपादिविषयाणां ग्रहणमेव सन्निपातः सम्बन्धः सन्निकर्षो भण्यते । न च

अब छद्मस्थोंको ज्ञान, सत्तावलोकनरूप दर्शनपूर्वक होता है और मुक्त जीवोंको दर्शन और ज्ञान एक साथ ही होता है—ऐसा प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा–४४

गाथार्थः—छद्मस्थ जीवोंको दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है क्योंकि छद्मस्थोंको ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं । केवली भगवानको ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग एक साथ ही होते हैं ।

टीकाः—"दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं" छद्मस्थ-संसारी जीवोंके सत्तावलोकन-रूप दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है । क्यों ? "ण दोण्णि उवउग्गा जुगवं जह्मा" क्योंकि छद्मस्थोंके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग—ये दोनों एक साथ नहीं होते । "केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि" केवलीभगवानके ज्ञान और दर्शन उपयोग दोनों एक ही साथ होते हैं ।

उसका विस्तार:—चक्षु आदि इन्द्रियोंके अपने-अपने क्षयोपशम प्रमाण अपने योग्य स्थानमें स्थित रूपादि विषयोंका ग्रहण करना वही सन्निपात संबंध

छदमस्थाकै क्रमतैं ज्ञान, पहलैं दर्शन पीछैं ज्ञान ।
दो उपयोग न एकैं काल, केवलज्ञानी युगपत भाल ॥४४॥

नैयायिकमतवच्चक्षुरादीन्द्रियाणां रूपादिस्वकीयस्वकीयविषयपार्श्वे गमनं इति सन्निकर्षो वक्तव्यः। स एव सम्बन्धो लक्षणं यस्य तल्लक्षणं यन्निर्विकल्पं सत्तावलोकनदर्शनं तत्पूर्वं शुक्लमिदमित्याद्यवग्रहादिविकल्परूपमिन्द्रियानिन्द्रियजनितं मतिज्ञानं भवति। इत्युक्तलक्षणमतिज्ञानपूर्वकं तु धूमादग्निविज्ञानवदर्थादर्थान्तरग्रहणरूपं लिङ्गजं, तथैव घटादिशब्दश्रवणरूपं शब्दजं चेति द्विविधं श्रुतज्ञानं भवति। अथावधिज्ञानं पुनरवधिदर्शनपूर्वकमिति। ईहामतिज्ञानपूर्वकं तु मनःपर्ययज्ञानं भवति।

अत्र श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानजनकं यदवग्रहेहादिरूपं मतिज्ञानं भणितम्, तदपि दर्शनपूर्वकत्वादुपचारेण दर्शनं भण्यते, यतस्तेन कारणेन श्रुतज्ञानमनःपर्ययज्ञानद्वयमपि दर्शनपूर्वकं ज्ञातव्यमिति। एवं छद्मस्थानां सावरणक्षायोपशमिकज्ञानसहितत्वात् दर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति। केवलिनां तु भगवतां निर्विकारस्वसंवेदनसमुत्पन्ननिरावरणक्षायिकज्ञानसहितत्वान्निर्मेघादित्ये युगपदातपप्रकाशवद्दर्शनं ज्ञानं च युगपदेवेति विज्ञेयम्। छद्मस्था इति कोऽर्थः? छद्मशब्देन ज्ञानदर्शनावरणद्वयं भण्यते, तत्र तिष्ठन्तीति

अथवा सन्निकर्ष कहलाता है। परन्तु नैयायिकमतकी भांति चक्षु आदि इन्द्रियोंका जो रूपादि अपने-अपने विषयोंके पास जाना उसे सन्निकर्ष न कहना। ऐसा संबंध जिसका लक्षण है ऐसे लक्षणयुक्त निर्विकल्प सत्तावलोकनरूप दर्शन है; उस दर्शनपूर्वक 'यह सफेद है' इत्यादि अवग्रहादि विकल्परूप, इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होनेवाला मतिज्ञान है। उक्त लक्षण वाले मतिज्ञानपूर्वक, धुएंसे अग्निका ज्ञान होता है उसीप्रकार, एक पदार्थसे दूसरे पदार्थके ग्रहणरूप 'लिंगज' (चिह्नसे उत्पन्न होनेवाला) और घटादि शब्दोंके श्रवणरूप 'शब्दज' (शब्दसे उत्पन्न होनेवाला)—ऐसा दो प्रकारका श्रुतज्ञान है। अवधिज्ञान, अवधिदर्शनपूर्वक होता है। ईहा (नामक) मतिज्ञानपूर्वक मन:पर्ययज्ञान होता है।

यहां श्रुतज्ञान और मन:पर्ययज्ञानको उत्पन्न करनेवाला, अवग्रह–ईहा आदिरूप जो मतिज्ञान कहा है वह मतिज्ञान भी दर्शनपूर्वक उत्पन्न होनेसे उपचारसे दर्शन कहलाता है; इस कारण श्रुतज्ञान और मन:पर्ययज्ञान—ये दोनों भी दर्शनपूर्वक जानना। इसप्रकार छद्मस्थोंको आवरणवाला क्षायोपशमिक ज्ञान होनेसे दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। केवलीभगवानको निर्विकार स्वसंवेदनसे उत्पन्न निरावरण क्षायिकज्ञान होनेसे, मेघरहित सूर्यके युगपद् आतप और प्रकाशकी भांति, दर्शन और ज्ञान (दोनों) युगपद् ही होते हैं ऐसा जानना।

प्रश्नः—छद्मस्थ शब्दका अर्थ क्या है?

छद्मस्थाः । एवं तर्काभिप्रायेण सत्तावलोकनदर्शनं व्याख्यातम् ।

अत ऊर्ध्वं सिद्धान्ताभिप्रायेण कथ्यते । तथाहि—उत्तरज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं यत् प्रयत्नं तद्रूपं यत् स्वस्यात्मनः परिच्छेदनमवलोकनं तद्दर्शनं भण्यते । तदनन्तरं यद्बहिर्विषये विकल्परूपेण पदार्थग्रहणं तद्ज्ञानमिति वार्त्तिकम् । यथा कोऽपि पुरुषो घटविषयविकल्पं कुर्वन्नास्ते, पश्चात् पटपरिज्ञानार्थं चित्ते जाते सति घटविकल्पाद्-व्यावर्त्य यत् स्वरूपे प्रयत्नमवलोकनं परिच्छेदनं करोति तद्दर्शनमिति । तदनन्तरं पटोऽयमिति निश्चयं यद्बहिर्विषयरूपेण पदार्थग्रहणविकल्पं करोति तद् ज्ञानं भण्यते ।

अत्राह शिष्यः—यद्यात्मग्राहकं दर्शनं, परग्राहकं ज्ञानं भण्यते, तर्हि यथा नैयायिकमते ज्ञानमात्मानं न जानाति; तथा जैनमतेऽपि ज्ञानमात्मानं न जानातीति दूषणं प्राप्नोति । अत्र परिहारः । नैयायिकमते ज्ञानं पृथग्दर्शनं पृथगिति गुणद्वयं नास्ति; तेन कारणेन तेषामात्मपरिज्ञानाभावदूषणं प्राप्नोति । जैनमते पुनर्ज्ञानगुणेन परद्रव्यं जानाति दर्शनगुणेनात्मानं च जानातीत्यात्मपरिज्ञानाभावदूषणं न प्राप्नोति ।

उत्तरः—'छद्म', शब्दसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण—ये दो कहे जाते हैं; उस छद्ममें जो रहता है वह छद्मस्थ है । इसप्रकार तर्कके अभिप्रायसे सत्तावलोकनरूप दर्शनका व्याख्यान किया ।

अब, आगे सिद्धांतके अभिप्रायसे कथन किया जाता है । वह इसप्रकार:—उत्तर (आगेके) ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये जो प्रयत्न, उस रूप जो अपने आत्माका परिच्छेदन-अवलोकन वह दर्शन कहलाता है । तत्पश्चात् बाह्य विषयमें विकल्परूपसे जो पदार्थोंका ग्रहण है वह ज्ञान है; यह वार्तिक है । जैसे कोई मनुष्य पहले घट संबंधी विकल्प करता है; तत्पश्चात् पटका ज्ञान करनेकी इच्छा होनेपर वह घटके विकल्पसे हटकर (निवृत्त होकर) जो स्वरूपमें प्रयत्न-अवलोकन-परिच्छेदन करता है वह दर्शन है । तत्पश्चात् 'यह पट है' ऐसा निश्चय अथवा बाह्य विषयरूपसे पदार्थके ग्रहणरूप जो विकल्प करता है वह ज्ञान कहलाता है ।

यहां शिष्य पूछता है:—जो आत्मग्राहक (अपना ग्रहण करनेवाला) वह दर्शन और परग्राहक (परको जाननेवाला) वह ज्ञान कहा जाये तो जिसप्रकार नैयायिकमतमें ज्ञान आत्माको नहीं जानता है उसीप्रकार जैनमतमें भी ज्ञान आत्माको नहीं जानता है ऐसा दूषण प्राप्त होता है । उसका समाधान:—नैयायिक-मतमें ज्ञान भिन्न और दर्शन भिन्न इसप्रकार दो गुण नहीं हैं । इसकारण उनको (नैयायिकोंको) आत्माके ज्ञानके अभावरूप दोष प्राप्त होता है । परन्तु जैनमतमें तो (आत्मा) ज्ञानगुणसे परद्रव्यको जानता है और दर्शनगुणसे आत्माको जानता

कस्मादिति चेत ? यथैकोऽप्यग्निर्दहतीति दाहकः, पचतीति पाचकः, विषयभेदेन द्विधा भिद्यते। तथैवाभेदनयेनैकमपि चैतन्यं भेदनयविवक्षायां यदात्मग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तदा तस्य दर्शनमिति संज्ञा, पश्चात् यच्च परद्रव्यग्राहकत्वेन प्रवृत्तं तस्य ज्ञानसंज्ञेति विषयभेदेन द्विधा भिद्यते। किं च, यदि सामान्यग्राहकं दर्शनं विशेषग्राहकं ज्ञानं भण्यते, तदा ज्ञानस्य प्रमाणत्वं न प्राप्नोति। कस्मादिति चेत ? वस्तुग्राहकं प्रमाणं; वस्तु च सामान्यविशेषात्मकं; ज्ञानेन पुनर्वस्त्वेकदेशो विशेष एव गृहीतो; न च वस्तु। सिद्धान्तेन पुनर्निश्चयेन गुणगुणिनोरभिन्नत्वात् संशयविमोहविभ्रमरहितवस्तुज्ञानस्वरूपात्मैव प्रमाणम्। स च प्रदीपवत् स्वपरगतं सामान्यं विशेषं च जानाति। तेन कारणेनाभेदेन तस्यैव प्रमाणत्वमिति।

अथ मतं—यदि दर्शनं बहिर्विषये न प्रवर्त्तते तदान्धवत् सर्वजनानामन्धत्वं प्राप्नोतीति ? नैवं वक्तव्यम्। बहिर्विषये दर्शनाभावेऽपि ज्ञानेन विशेषेण सर्वं परिच्छिनत्तीति। अयं तु विशेषः—दर्शनेनात्मनि गृहीते सत्यात्माविनाभूतं ज्ञानमपि

है—इसप्रकार आत्माके ज्ञानके अभावरूप दोष प्राप्त नहीं होता है। यह दोष क्यों नहीं प्राप्त होता है ? जिसप्रकार एक ही अग्नि जलाती है अतः वह दाहक है और पकाती है अतः वह पाचक है; विषयके भेदसे अग्नि (दाहक और पाचक) ऐसे दो प्रकारके भेदरूप होती है; उसीप्रकार अभेदनयसे चैतन्य एक ही होनेपर भी भेदनयकी विवक्षामें जब आत्माका ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होता है तब उसको 'दर्शन' ऐसा नाम मिलता है और तत्पश्चात् जब परपदार्थका ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होता है तब उसको 'ज्ञान' नाम मिलता है—इसप्रकार विषयके भेदसे चैतन्यके दो भेद होते हैं। विशेष यह है कि यदि दर्शनको सामान्यका ग्राहक और ज्ञानको विशेषका ग्राहक कहा जाये तो ज्ञानको प्रमाणपना प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्न :—किस प्रकार ?

उत्तर :—वस्तुको ग्रहण करता है वह प्रमाण है। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। ज्ञानने वस्तुके एकदेशका–विशेषका ही ग्रहण किया, वस्तुका ग्रहण नहीं किया। सिद्धांतसे तो निश्चयनयकी अपेक्षासे गुण और गुणी अभिन्न हैं अतः संशय, विमोह और विभ्रम रहित वस्तुका जो ज्ञान वह ज्ञानस्वरूप आत्मा ही प्रमाण है; वह दीपककी भांति स्व और परके सामान्य और विशेषको जानता है इसकारण अभेदरूपसे उसीको (उस आत्माको ही) प्रमाणपना है।

शंका :—यदि दर्शन बाह्यविषयका ग्रहण नहीं करता तो अंधेकी भांति सब मनुष्योंको अंधपनेका प्रसंग आता है।

गृहीतं भवति; ज्ञाने च गृहीते सति ज्ञानविषयभूतं बहिर्वस्त्वपि गृहीतं भवति इति। अथोक्तं भवता यद्यात्मग्राहकं दर्शनं भण्यते, तर्हि "जं सामण्णं गहणं भावाणं तद्दर्शनम्" इति गाथार्थः कथं घटते ? तत्रोत्तरं—सामान्यग्रहणमात्मग्रहणं तद्दर्शनम्। कस्मादिति चेत् ? आत्मा वस्तुपरिच्छित्तिं कुर्वन्निदं जानामीदं न जानामीति विशेषपक्षपातं न करोति; किन्तु सामान्येन वस्तु परिच्छिनत्ति तेन कारणेन सामान्यशब्देनात्मा भण्यत इति गाथार्थः।

किं बहुना, यदि कोऽपि तर्कार्थं सिद्धान्तार्थं च ज्ञात्वैकान्तदुराग्रहत्यागेन नयविभागेन मध्यस्थवृत्त्या व्याख्यानं करोति, तदा द्वयमपि घटत इति। कथमिति चेत् ? तर्के मुख्यवृत्त्या परसमयव्याख्यानं, तत्र यदा कोऽपि परसमयी पृच्छति—जैनागमे दर्शनं ज्ञानं चेति गुणद्वयं जीवस्य कथ्यते, तत्कथं घटत इति ? तदा तेषामात्मग्राहकं दर्शनमिति कथिते सति ते न जानन्ति। पश्चादाचार्यैस्तेषां

उत्तरः—ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि बाह्य विषयमें दर्शनका अभाव होने पर भी (अर्थात् उसमें दर्शन प्रवृत्त नहीं होने पर भी) आत्मा ज्ञान द्वारा विशेषरूप सब पदार्थोंको जानता है तथा यह विशेष है:—जब दर्शन द्वारा आत्माका ग्रहण होता है तब आत्माके साथ अविनाभूत ज्ञानका भी (दर्शन द्वारा) ग्रहण हो जाता है और ज्ञानका ग्रहण होने पर ज्ञानके विषयभूत बाह्य वस्तुका भी ग्रहण हो जाता है।

प्रश्न :—जो आत्माको ग्रहण करता है उसे आप यदि दर्शन कहते हो, तो 'जो पदार्थोंका सामान्य ग्रहण वह दर्शन है,' इस गाथाका अर्थ आपके कथनमें किस प्रकार घटित हो सकता है ?

उत्तर :—'सामान्य ग्रहण' अर्थात् 'आत्माका ग्रहण'; वह दर्शन है।

प्रश्न :—'सामान्य' का अर्थ 'आत्मा' किस प्रकार है ?

उत्तर :—आत्मा वस्तुका ज्ञान करते हुए, 'मैं इसको जानूं' और 'इसको न जानूं' ऐसा विशेष-पक्षपात नहीं करता है परन्तु सामान्यरूपसे वस्तुको जानता है, इस कारण 'सामान्य' शब्द द्वारा 'आत्मा' कहा जाता है। इसप्रकार गाथाका अर्थ है। अधिक कहनेसे क्या ? जो कोई भी तर्क और सिद्धांतका अर्थ जानकर, एकान्त दुराग्रहका त्याग कर, नयविभाग द्वारा मध्यस्थ वृत्ति रखकर व्याख्यान करता है तो दोनोंही अर्थ (तर्कके और सिद्धांतके) सिद्ध होते हैं। किस प्रकारसे सिद्ध होते हैं ? तर्कमें मुख्यतासे अन्यमतका व्याख्यान है; वहां जब कोई अन्यमती पूछता है कि जैन सिद्धांतमें जीवके दर्शन और ज्ञान ये दो गुण कहे हैं वे किस

प्रतीत्यर्थं स्थूलव्याख्यानेन बहिर्विषये यत् सामान्यपरिच्छेदनं तस्य सत्तावलोकन-दर्शनसंज्ञा स्थापिता, यच्च शुक्लमिदमित्यादिविशेषपरिच्छेदनं तस्य ज्ञानसंज्ञा स्थापितेति दोषो नास्ति। सिद्धान्ते पुनः स्वसमयव्याख्यानं मुख्यवृत्त्या। तत्र सूक्ष्म-व्याख्याने क्रियमाणे सत्याचार्यैरात्मग्राहकं दर्शनं व्याख्यातमित्यत्रापि दोषो नास्ति।

अत्राह शिष्यः—सत्तावलोकनदर्शनस्य ज्ञानेन सह भेदो ज्ञातस्तावदिदानीं यत्तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं वस्तुविचाररूपं सम्यग्ज्ञानं तयोर्विशेषो न ज्ञायते। कस्मादिति चेत्? सम्यग्दर्शने पदार्थनिश्चयोऽस्ति, तथैव सम्यग्ज्ञाने च, को विशेष इति? अत्र परिहारः—अर्थग्रहणपरिच्छित्तिरूपः क्षयोपशमविशेषो ज्ञानं भण्यते, तत्रैव भेदनयेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशुद्धात्मादितत्त्वेष्विदमेवेत्थमेवेति निश्चयसम्यक्त्वमिति। अविकल्प-रूपेणाभेदनयेन पुनर्यदेव सम्यग्ज्ञानं तदेव सम्यक्त्वमिति। कस्मादिति चेत्? अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिरदेवे देवबुद्धिरधर्मे धर्मबुद्धिरित्यादिविपरीताभिनिवेशरहितस्य ज्ञानस्यैव सम्यग्विशेषणवाच्योऽवस्थाविशेषः सम्यक्त्वं भण्यते यतः कारणात्।

प्रकार घटित होते हैं? तब उसे कहते हैं:—'जो आत्माको ग्रहण करता है वह दर्शन है' तो वे समझ नहीं सकते हैं। अतः आचार्योंने उन्हें प्रतीति करानेके लिये स्थूल व्याख्यानसे बाह्य विषयमें जो सामान्यका ग्रहण है उसका नाम सत्तावलोकन-रूप दर्शन स्थापित किया। और जो 'यह सफेद है' इत्यादि विशेष परिच्छेदन हुआ उसे ज्ञान संज्ञासे स्थापित किया। इसप्रकार दोष नहीं है। सिद्धांतमें मुख्य-रूपसे स्वसमयका व्याख्यान होता है; वहां सूक्ष्म व्याख्यान करते हुए आचार्योंने 'जो आत्माको ग्रहण करता है वह दर्शन है' इसप्रकार व्याख्यान किया। इसप्रकारसे इसमें भी दोष नहीं है।

यहां शिष्य शंका करता है:—सत्तावलोकनरूप दर्शनका ज्ञानके साथ भेद ज्ञात होता है परन्तु तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन और वस्तुविचाररूप सम्यग्ज्ञान—इन दो में भेद ज्ञात नहीं होता है। यदि कहते हो कि 'क्यों नहीं ज्ञात होता है?' तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शनमें पदार्थका निश्चय है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञानमें भी है; तो उनमें क्या अंतर है?

समाधान :—पदार्थके ग्रहणमें जाननेरूप क्षयोपशम-विशेष 'ज्ञान' कहलाता है और उस ज्ञानमें ही भेदनयसे, वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित शुद्धात्म आदि तत्त्वोंमें 'यही है, इसप्रकार ही है' ऐसा निश्चय वह सम्यक्त्व है। निर्विकल्प अभेदनयसे तो जो सम्यग्ज्ञान है वही सम्यग्दर्शन है।

शंका :—ऐसा किस प्रकार है?

यदि भेदो नास्ति तर्हि कथमावरणद्वयमिति चेत् ? तत्रोत्तरम्—येन कर्मणार्थपरिच्छित्तिरूपः क्षयोपशमः प्रच्छाद्यते तस्य ज्ञानावरणसंज्ञा, तस्यैव क्षयोपशमविशेषस्य यत् कर्म पूर्वोक्तलक्षणं विपरीताभिनिवेशमुत्पादयति तस्य मिथ्यात्वसंज्ञेति भेदनयेनावरणभेदः । निश्चयनयेन पुनरभेदविवक्षायां कर्मत्वं प्रत्यावरणद्वयमप्येकमेव विज्ञातव्यम् । एवं दर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवतीति व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥४४॥

अथ सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं रत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गतृतीयावयवभूतं स्वशुद्धात्मानुभूतिरूपशुद्धोपयोगलक्षणवीतरागचारित्रस्य पारम्पर्येण साधकं सरागचारित्रं प्रतिपादयति:—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥४५॥

समाधान :—'अतत्त्वमें तत्त्वबुद्धि, अदेवमें देवबुद्धि, अधर्ममें धर्मबुद्धि' इत्यादि विपरीत अभिनिवेशरहित ज्ञानकी ही 'सम्यक्' विशेषणसे वाच्य (कहने योग्य) अवस्था विशेषको सम्यग्दर्शन कहा जाता है ।

शंका :—यदि (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें) भेद नहीं है तो दो गुणोंके घातक ज्ञानावरण और मिथ्यात्व—दो कर्म कैसे कहे हैं ?

समाधान :—जिस कर्मसे पदार्थको जाननेरूप क्षयोपशम ढंका जाता है उसका नाम 'ज्ञानावरण' है और उस क्षयोपशम विशेषमें जो कर्म पूर्वोक्त लक्षणयुक्त विपरीत अभिनिवेशको उत्पन्न करता है उसका नाम 'मिथ्यात्व' है । इसप्रकार भेदनयसे आवरणमें भेद है । निश्चयनयसे तो अभेद विवक्षामें कर्मपनेकी अपेक्षासे तो दो आवरणोंको भी एक ही जानना चाहिये ।

इसप्रकार दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है इस कथन रूपसे गाथा पूर्ण हुई ॥४४॥

अब, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गके तीसरे अवयवरूप और स्वशुद्धात्माके अनुभवरूप शुद्धोपयोगरूप लक्षणवाले वीतरागचारित्रके परंपरासे[1] साधक ऐसे सरागचारित्रका प्रतिपादन करते हैं:—

---

१. सरागचारित्रमें अवशेष रागका क्रम-क्रमसे अभाव होने पर वीतरागचारित्र प्रगट होता है अतः सरागचारित्रको परंपरासे वीतरागचारित्रका साधक व्यवहारनयसे कहा जाता है । निश्चयनयसे साधक वीतरागचारित्र पूर्वमें (पहले) जो शुद्धि थी वही है । देखो, यह शास्त्र गाथा १३ की टीका का अंतिम भाग । श्री नियमसार गाथा–६० नीचेका फूटनोट ३ पृष्ठ ११७ तथा श्री पंचास्तिकाय गाथा–१५९ की फूटनोट नं० ५ तथा ३ पृष्ठ २३०–२३१–२३२ तथा गाथा–१६१ फूटनोट पृष्ठ २३६, गाथा–१७० फूटनोट पृ० २४८, गाथा–१७२ फूटनोट १ पृ० २५३ ।

शुभक्रं गहै अशुभतैं दूरि, चारित सो व्यवहारे पूरि ।
व्रत अरु समिति गुप्ति जामाहि, मुनि धारैं अति यतन कराहि ॥४५॥

असुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम् ।
व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिनभणितम् ॥४५॥

व्याख्या—अस्यैव सरागचारित्रस्यैकदेशावयवभूतं देशचारित्रं तावत्कथ्यते । तद्यथा—मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षये सति, अध्यात्मभाषया निजशुद्धात्माभिमुखपरिणामे वा सति शुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारवास्तवसुखामृतमुपादेयं कृत्वा संसारशरीरभोगेषु योऽसौ हेयबुद्धिः सम्यग्दर्शनशुद्धः स चतुर्थगुणस्थानवर्ती व्रतरहितो दार्शनिको भण्यते । यश्चाप्रत्याख्यानावरणसंज्ञद्वितीयकषायक्षयोपशमे जाते सति पृथिव्यादिपञ्चस्थावरवधे प्रवृत्तोऽपि यथाशक्त्या त्रसवधे निवृत्तः स पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावको भण्यते ।

तस्यैकादशभेदाः कथ्यन्ते । तथाहि—सम्यक्त्वपूर्वकत्वेन मद्यमांसमधुत्यागोदुम्बरपञ्चकपरिहाररूपाष्टमूलगुणसहितः सन् संग्रामादिप्रवृत्तोऽपि पापर्द्ध्यादिभिर्निष्प्रयोजनजीवघातादौ निवृत्तः प्रथमो दार्शनिकश्रावको भण्यते । स एव सर्वथा त्रसवधे

गाथा–४५

गाथार्थ :—अशुभकार्यकी निवृत्ति और शुभकार्यमें प्रवृत्ति–उसे (व्यवहार) चारित्र जानो । व्रत-समिति-गुप्तिरूप ऐसा वह (चारित्र) व्यवहारनयसे जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

टीका :—इसी सरागचारित्रके एकदेश अवयवरूप देशचारित्रका प्रथम कथन करते हैं । वह इसप्रकार है:—मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंके उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय होनेपर अथवा अध्यात्मभाषासे निजशुद्धात्माभिमुख परिणाम होनेपर शुद्धात्मभावनासे उत्पन्न, निर्विकार, वास्तविक सुखामृतको उपादेय करके, संसार-शरीर और भोगोंमें जो हेयवुद्धियुक्त, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध है, वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित दार्शनिक कहलाता है । जो, अप्रत्याख्यानावरण नामक द्वितीय कषायका क्षयोपशम होनेपर पृथ्वी आदि (–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिरूप) पांच स्थावरोंके वधमें प्रवृत्त होने पर भी यथाशक्ति त्रसके वधसे निवृत्त होता है वह पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक कहलाता है ।

उस श्रावकके ग्यारह भेद कहे जाते हैं:—सम्यग्दर्शनपूर्वक मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बर फलोंके त्यागरूप आठ मूलगुणोंका पालन करता हुआ जो जीव, युद्धादिमें प्रवृत्त होनेपर भी पापकी वृद्धि करने वाले शिकार आदिके समान बिना प्रयोजन जीवघातसे निवृत्त हुआ है वह प्रथम दार्शनिक श्रावक कहलाता है । वही

निवृत्तः सन् पञ्चाणुव्रतत्रयगुणव्रतशिक्षाव्रतचतुष्टयसहितो द्वितीयव्रतिकसंज्ञो भवति। स एव त्रिकालसामायिके प्रवृत्तः तृतीयः, प्रोषधोपवासे प्रवृत्तश्चतुर्थः, सचित्तपरिहारेण पञ्चमः, दिवा ब्रह्मचर्येण षष्ठः, सर्वथा ब्रह्मचर्येण सप्तमः, आरम्भादिसमस्तव्यापार-निवृत्तोऽष्टमः, वस्त्रप्रावरणं विहायान्यसर्वपरिग्रहनिवृत्तोनवमः, गृहव्यापारादिसर्वसावद्यानु-मतनिवृत्तो दशमः, उद्दिष्टाहारनिवृत्त एकादशम इति। एतेष्वेकादशश्रावकेषु मध्ये प्रथमषट्कं तारतम्येन जघन्यम्, ततश्च त्रयं मध्यमम्, ततो द्वयमुत्तममिति संक्षेपेण दार्शनिकश्रावकाद्येकादशभेदाः ज्ञातव्याः।

अथैकदेशचारित्रव्याख्यानानन्तरं सकलचारित्रमुपदिशति। "असुहादो विणि-वित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं" अशुभान्निवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिश्चापि

दार्शनिक श्रावक जब त्रस जीवोंकी हिंसासे सर्वथा निवृत्त होकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सहित होता है तब 'व्रती' नामक दूसरा श्रावक होता है। वही जब तीनोंकाल सामायिक करता है तब तीसरी प्रतिमाधारक, प्रोषध-उपवास करता है तब चौथी प्रतिमाधारक, सचित्तके त्यागसे पांचवीं प्रतिमा-धारक, दिवसमें ब्रह्मचर्य पालन करनेसे छट्ठी प्रतिमाधारक, सर्वथा ब्रह्मचर्य पालन करनेसे सातवीं प्रतिमाधारक, आरम्भ आदि संपूर्ण व्यापारके त्यागसे आठवीं प्रतिमाधारक, पहिनने-ओढ़नेके वस्त्रोंके अतिरिक्त अन्य सर्व परिग्रहोंके त्यागसे नवमीं प्रतिमाधारक, घर-व्यापार आदि संबंधी समस्त पापमयकार्योंमें सम्मति (सलाह) देनेका त्याग करनेसे दशवीं प्रतिमाधारक और उद्दिष्ट आहारके त्यागसे ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक श्रावक होता है। इन ग्यारह प्रकारके श्रावकोंमें पहली छह प्रतिमाधारक तारतम्यरूपसे जघन्य श्रावक हैं, उसके पश्चात्की तीन प्रतिमा-धारक मध्यम श्रावक और अंतिम दो प्रतिमाधारक उत्तम श्रावक हैं—इसप्रकार संक्षेपमें देशचारित्रके[1] दार्शनिक श्रावक आदि ग्यारह भेद जानना।

अब, एकदेश चारित्रके व्याख्यानके पश्चात् सकल चारित्रका उपदेश करते हैं:—"असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं" हे शिष्य! अशुभ कार्योंसे निवृत्ति और शुभ कार्योंमें प्रवृत्तिको तू चारित्र जान। वह कैसा है? "वदसमिदि-

---

१. देशचारित्र पांचवें गुणस्थानमें अंतरंगमें मिथ्यात्वके तथा प्रथमके दो कषायके अभावरूप होता है।

जानीहि चारित्रम् । तच्च कथम्भूतं ? "वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियं" व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयाज्जिनैरुक्तमिति । तथाहि प्रत्याख्यानावरणसंज्ञतृतीय-कषायक्षयोपशमे सति "विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो । उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥१॥" इति गाथाकथितलक्षणादशुभो-पयोगान्निवृत्तिस्तद्विलक्षणे शुभोपयोगे प्रवृत्तिश्च हे शिष्य ! चारित्रं जानीहि । तच्चाचाराराधनादिचरणशास्त्रोक्तप्रकारेण पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिरूपमप्यपहृत-संयमाख्यं शुभोपयोगलक्षणं सरागचारित्राभिधानं भवति । तत्र योऽसौ बहिर्विषये पञ्चेन्द्रियविषयादिपरित्यागः स उपचरितासद्भूतव्यवहारेण यश्चाभ्यन्तरे रागादि-परिहारः स पुनरशुद्धनिश्चयेनेति नयविभागो ज्ञातव्यः । एवं निश्चयचारित्रसाधकं व्यवहारचारित्रं व्याख्यातमिति ॥४५॥

गुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियं" व्रत, समिति और गुप्तिरूप है और व्यवहार-नयसे श्री जिनेंद्र भगवंतों द्वारा कथित है । वह इसप्रकार है:—प्रत्याख्यानावरण[1] नामक तीसरे कषायका क्षयोपशम होनेपर, "विषयकषाओगाढो दुस्सुदिदुचित्त दुट्ठ-गोट्ठिजुदो । उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥" [अर्थः—जिसका उपयोग विषय-कषायोंमें मग्न है, दुःश्रुति (विकथा), दुष्टचित्त और दुष्ट गोष्ठी (खराब संगति) सहित है, जो उग्र है और उन्मार्गमें तत्पर है, उसे वह अशुभ उपयोग[2] है ।]"—इस गाथामें कथित लक्षणोंयुक्त अशुभोपयोगसे निवृत्ति और उससे विपरीत शुभोपयोगमें प्रवृत्ति, उसे हे शिष्य ! तू चारित्र जान । आचार-आराधना आदि चरणानुयोगके शास्त्रोंमें कहे अनुसार वह चारित्र पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्तिरूप है, तो भी अपहृतसंयम नामक शुभोपयोगलक्षणयुक्त सराग-चारित्र है । वहां, जो बाह्यमें पांच इन्द्रियोंके विषय आदिका त्याग है वह उपचरित-असद्भूतव्यवहारनयसे चारित्र है और अंतरंगमें जो रागादिका त्याग है वह अशुद्ध निश्चयनयसे चारित्र है:—इसप्रकार नयविभाग जानना । इसप्रकार निश्चय-चारित्रके साधक व्यवहारचारित्रका व्याख्यान किया ॥४५॥

---

१. छट्ठे गुणस्थानमें अंतरंगमें मिथ्यात्वका त्याग तथा प्रथमके तीन कषायोंका अभाव होता है ।

२. श्री प्रवचनसार गाथा–१५८

अथ तेनैव व्यवहारचारित्रेण साध्यं निश्चयचारित्रं निरूपयतिः—

वहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

वहिरभ्यन्तरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम् ।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तम् तत् परमं सम्यक्चारित्रम् ॥४६॥

व्याख्या—"तं" तत् "परमं" परमोपेक्षालक्षणं निर्विकारस्वसंवित्त्यात्मक-शुद्धोपयोगाविनाभूतं परमं "सम्मचारित्तं" सम्यक्चारित्रं ज्ञातव्यम् । तत्किं—"वहिरब्भंतरकिरियारोहो" निष्क्रियनित्यनिरञ्जनविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य निजात्मनः प्रतिपक्षभूतस्य वहिर्विषये शुभाशुभवचनकायव्यापाररूपस्य तथैवाभ्यन्तरे शुभाशुभमनोविकल्परूपस्य च क्रियाव्यापारस्य योऽसौ निरोधस्त्यागः, स च किमर्थं ? "भवकारणप्पणासट्ठं" पञ्चप्रकारभवातीतनिर्दोषपरमात्मनो विलक्षणस्य भवस्य–

अब उसी व्यवहारचारित्रसे साध्य[1] निश्चयचारित्रका निरूपण करते हैं:—

गाथा–४६

गाथार्थ :—संसारके कारणोंका नाश करनेके लिये ज्ञानीको जो बाह्य और अंतरंग क्रियाओंका निरोध है; श्री जिनेन्द्र द्वारा कथित वह परम सम्यक् चारित्र है ।

टीकाः—"तं" वह "परमं" परम-उपेक्षालक्षणयुक्त, निर्विकार स्वसंवेदनरूप शुद्धोपयोगका अविनाभूत, परम "सम्मचारित्तं" सम्यक्चारित्र जानना । वह क्या ? "वहिरब्भंतरकिरियारोहो" निष्क्रिय, नित्यनिरंजन, विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी निजात्मासे प्रतिपक्षभूत क्रियाव्यापारका—जो (क्रियाव्यापार) बाह्यमें वचन और कायाके शुभाशुभ व्यापाररूप है और अंतरंगमें मनके शुभाशुभ विकल्परूप है उसका—निरोध अर्थात् त्याग (वह परम सम्यक्चारित्र है ।) वह निरोध किस-लिये है ? "भवकारणप्पणासट्ठं" पांच प्रकारके संसारसे रहित, निर्दोष परमात्मासे

---

१. इसका स्पष्टीकरण गाथा–४५ की फूटनोट में किया गया है ।

वाह्याभ्यंतर किरिया रोकि, आतम शुद्ध गहै अवलोकि ।
आस्रव बंध अभाव निमित्त, ज्ञानी धरैं परम चारित्त ॥४६॥

संसारस्य व्यापारकारणभूतो योऽसौ शुभाशुभकर्मास्रवस्तस्य प्रणाशार्थं विनाशार्थमिति। इत्युभयक्रियानिरोधलक्षणचारित्रं कस्य भवति? "णाणिस्स" निश्चयरत्नत्रयात्मकाभेदज्ञानिनः। पुनरपि किं विशिष्टं? "जं जिणुत्तं" यज्जिनेन वीतरागसर्वज्ञेनोक्तमिति। एवं वीतरागसम्यक्त्वज्ञानाविनाभूतं निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गः तृतीयावयवरूपं वीतरागचारित्रं व्याख्यातम् ॥४६॥

इति द्वितीयस्थले गाथाष्टकं गतम्।

एवं मोक्षमार्गप्रतिपादकतृतीयाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसंक्षेपकथनेन सूत्रद्वयम्, तदनन्तरं तस्यैव मोक्षमार्गस्यावयवभूतानां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां विशेषविवरणरूपेण सूत्रषट्कं चेति स्थलद्वयसमुदायेनाष्टगाथाभिः प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

अतः परं ध्यानध्यातृध्येयध्यानफलकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रयं, ततः परं पञ्चपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं, ततश्च तस्यैव ध्यानस्योप-

---

विलक्षण जो संसार उस संसारके व्यापारके कारणभूत जो शुभाशुभ कर्म-आस्रव उनके विनाशके लिये है। ऐसा बाह्य और अंतरंग क्रियाओंके निरोधरूप चारित्र किसको होता है? "णाणिस्स" निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अभेदज्ञानीको ऐसा चारित्र होता है। तथा वह चारित्र कैसा है? "जं जिणुत्तं" वह चारित्र जिनेन्द्रदेव, वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित है। इसप्रकार वीतराग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अविनाभूत तथा निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चयमोक्षमार्गके तीसरे अवयवरूप वीतरागचारित्रका व्याख्यान किया ॥४६॥

इसप्रकार द्वितीय स्थलमें आठ गाथायें पूर्ण हुईं।

इसप्रकार मोक्षमार्गके प्रतिपादक तीसरे अधिकारमें निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्गके संक्षेपकथनसे दो गाथायें, तत्पश्चात् उसी मोक्षमार्गके अवयवरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके विशेष व्याख्यानरूपसे छः गाथायें—इसप्रकार दो स्थलोंके समुदायरूप आठ गाथाओं द्वारा प्रथम अंतराधिकार समाप्त हुआ।

इसके पश्चात् ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यानफलके (ध्यानके फलके) कथनकी मुख्यतासे प्रथम स्थलमें तीन गाथायें, तत्पश्चात् पंचपरमेष्ठियोंके व्याख्यानरूपसे दूसरे स्थलमें पांच गाथायें और तत्पश्चात् उसी ध्यानके उपसंहाररूप विशेष

संहाररूपविशेषव्याख्यानेन तृतीयस्थले सूत्रचतुष्टयमिति स्थलत्रयसमुदायेन द्वादशसूत्रेषु द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका ।

तथाहि—निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसाधकध्यानाभ्यासं कुरुत यूयमित्युपदिशति:—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥ ४७ ॥

द्विविधं अपि मोक्षहेतुं ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात् ।
तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूयं ध्यानं समभ्यसत ॥ ४७ ॥

व्याख्या—"दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा" द्विविधमपि मोक्षहेतुं ध्यानेन प्राप्नोति यस्मात् मुनिर्नियमात् । तद्यथा—निश्चय-रत्नत्रयात्मकं निश्चयमोक्षहेतुं निश्चयमोक्षमार्गं तथैव व्यवहाररत्नत्रयात्मकं व्यवहार-मोक्षहेतुं व्यवहारमोक्षमार्गं च यं साध्यसाधकभावेन कथितवान् पूर्वं, तद् द्विविधमपि

व्याख्यान द्वारा तीसरे स्थलमें चार गाथायें हैं; इसप्रकार तीनों स्थलोंके समुदाय द्वारा बारह गाथाओं सम्बन्धी दूसरे अंतराधिकारकी समुदायरूप भूमिका है ।

अब, निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्गका जो ध्यान उसका अभ्यास करो इसप्रकार उपदेश देते हैं:—

गाथा–४७

गाथार्थः—ध्यान करनेसे मुनि नियमसे निश्चय और व्यवहाररूप मोक्षमार्गको प्राप्त करते हैं । अतः तुम चित्तको एकाग्र करके ध्यानका सम्यक् प्रकारसे अभ्यास करो ।

टीकाः—"दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा" क्योंकि मुनि नियमसे ध्यान द्वारा दोनों प्रकारके मोक्षके कारणोंको प्राप्त करते हैं । विशेषः—क्योंकि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चय-मोक्ष हेतु अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार-रत्नत्रयात्मक व्यवहार-मोक्ष हेतु अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग जिनका [1]साध्य-साधकभावरूपसे पहले कथन किया है उन दोनों प्रकारके मोक्षमार्गोंको

---

१. दोनों साथ रहते हैं अतः सहचारी, सहकारी, निमित्त, साधन कहा जाता है, परन्तु वह

इम दो विध चारित मुनिराज, ध्यान योग पावैं सु समाज ।
जातैं यत्न धारि यह धरो । नियमरूप भाषैं मुनिवरो ॥४७॥

निर्विकारस्वसंवित्यात्मकपरमध्यानेन मुनिः प्राप्नोति यस्मात्कारणात् "तह्मा पयत्त-चित्ता जूयं झाणं समब्भसह" तस्मात् प्रयत्नचित्ताः सन्तो हे भव्या यूयं ध्यानं सम्यगभ्यसत। तथाहि—तस्मात्कारणात् दृष्टश्रुतानुभूतनानामनोरथरूपसमस्तशुभाशुभ-रागादिविकल्पजालं त्यक्त्वा, परमस्वास्थ्यसमुत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानु-भवे स्थित्वा च ध्यानाभ्यासं कुरुत यूयमिति ॥४७॥

अथ ध्यातृ-पुरुषलक्षणं कथयति :—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुह्यत मा रज्यत मा द्विष्यत इष्टानिष्टार्थेषु।
स्थिरं इच्छत यदि चित्तं विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥४८॥

निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमध्यान द्वारा मुनि प्राप्त करते हैं "तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह" इसलिये एकाग्रचित्त होकर हे भव्यजनो! तुम ध्यानका सम्यक् प्रकारसे अभ्यास करो, अथवा इसी कारण देखे हुए, सुने हुए और पूर्वमें अनुभव किये हुए अनेक मनोरथरूप समस्त शुभाशुभ रागादि विकल्पजालका त्याग करके, परम स्वास्थ्यसे उत्पन्न सहजानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादके अनुभवमें स्थिर होकर, तुम ध्यानका अभ्यास करो ॥४७॥

अब ध्याता-पुरुषका (ध्यान करनेवाले पुरुषका) लक्षण कहते हैं:—

गाथा–४८

गाथार्थः—यदि तुम विचित्र (अनेक प्रकारके) अथवा विचित्त (विकल्प-जाल रहित) ध्यानकी सिद्धिके लिये चित्तको स्थिर करना चाहते हो, तो इष्ट और अनिष्ट इन्द्रिय विषयोंमें मोह, राग और द्वेष न करो।

निश्चय साधन नहीं है। वह तो शुभाशुभ-बंधका कारण है, परिहरने योग्य है, माहात्म्यमें से वारने योग्य (निवारण करने योग्य) है। श्री पंचास्तिकाय गाथा–१६६ से १७२।

इष्ट-अनिष्ट वस्तुकूं देखि, राग-द्वेष अरु मोह न पेखि।
जो चित्तकूं थिर करना होय, ऐसें किये ध्यान सिधि होय ॥४८॥

व्याख्या—"मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह" समस्तमोहरागद्वेषजनितविकल्पजालरहितनिजपरमात्मतत्त्वभावनासमुत्पन्नपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसात्सकाशादुद्गता संजाता तत्रैव परमात्मसुखास्वादे लीना तन्मया या तु परमकला परमसंविचिस्तत्र स्थित्वा हे भव्या मोहरागद्वेषान्मा कुरुत। केषु विषयेषु? "इट्ठणिट्ठअट्ठेसु" स्रग्वनिताचन्दनताम्बूलादय इष्टेन्द्रियार्थाः, अहिविषकण्टक शत्रुव्याधिप्रभृतयः पुनरनिष्टेन्द्रियार्थास्तेषु। यदि किम्? "थिरमिच्छहि जइ चित्तं" तत्रैव परमात्मानुभवे स्थिरं निश्चलं चित्तं यदीच्छत यूयं। किमर्थम्? "विचित्तझाणप्पसिद्धीए" विचित्रं नानाप्रकारं यद्ध्यानं तत्प्रसिद्ध्यै निमित्तं। अथवा विगतं चित्तं चित्तोद्भवशुभाशुभविकल्पजालं यत्र तद्विचित्तं ध्यानम् तदर्थमिति।

इदानीं तस्यैव ध्यानस्य तावदागमभाषया विचित्रभेदाः कथ्यन्ते। तथाहि—इष्टवियोगानिष्टसंयोगव्याधिप्रतीकारभोगनिदानेषु वाञ्छारूपं चतुर्विधमार्त्तध्यानम्। तच्च तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिषट्गुणस्थानवर्तिजीवसम्भवम्। यद्यपि मिथ्या-

---

टीका:—"मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह" समस्त मोह-राग-द्वेषजनित विकल्पजालसे रहित निज परमात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न परमानंद जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रससे उत्पन्न हुए और उसी परमात्मसुखके आस्वादमें लीन-तन्मयरूप जो परमकला अर्थात् परम संविति, उसमें स्थिर होकर हे भव्य जीवों! मोह, राग और द्वेष न करो। किन विषयोंमें? "इट्ठणिट्ठअट्ठेसु" माला, स्त्री, चन्दन, तांबूल आदि इष्ट इन्द्रिय विषयोंमें और सर्प, विष, कंटक, शत्रु, रोग आदि अनिष्ट इन्द्रियविषयों में। क्या चाहते हो तो राग-द्वेष न करना? "थिरमिच्छहि जइ चित्तं" यदि उसी परमात्माके अनुभवमें तुम स्थिर-निश्चल चित्त चाहते हो तो। किसलिये स्थिर चित्त चाहते हो? "विचित्तझाणप्पसिद्धीए" 'विचित्र' अर्थात् अनेक प्रकारके ध्यानकी प्रसिद्धिके लिये; अथवा जिस ध्यानमेंसे चित्त विगत (नष्ट) हो गया हो अर्थात् चित्तमें उत्पन्न होते हुए शुभाशुभ विकल्पजाल नष्ट हो गये हों, वह 'विचित्त' ध्यान है, ऐसे 'विचित्त ध्यान' की सिद्धिके लिये।

अब प्रथम ही आगमभाषासे उसी ध्यानके अनेक प्रकारके भेदोंका कथन किया जाता है। वह इसप्रकार है:—इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और रोग—इन तीनोंको दूर करनेमें और भोगोंके कारणोंमें वांछारूप—इस भांति चार प्रकारका आर्त्तध्यान है। वह आर्त्तध्यान तारतम्यतासे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर छट्ठे गुणस्थान तकके जीवोंको संभव है। वह आर्त्तध्यान यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवोंको तिर्यंचगतिके बंधका कारण होता है तो भी जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त होनेसे

दृष्टीनां तिर्यग्गतिकारणं भवति तथापि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां न भवति। कस्मादिति चेत्? स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति विशिष्टभावनाबलेन तत्कारण-भूतसंक्लेशाभावादिति।

अथ रौद्रध्यानं कथ्यते—हिंसानन्दमृषानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दप्रभवं रौद्रं चतुर्विधम्। तारतम्येन मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चमगुणस्थानवर्त्तिजीवसम्भवम्। तच्च मिथ्या-दृष्टीनां नरकगतिकारणमपि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां तत्कारणं न भवति। तदपि कस्मादिति चेत्? निजशुद्धात्मतत्त्वमेवोपादेयमिति विशिष्टभेदज्ञानबलेन तत्कारणभूततीव्रसंक्लेशाभावादिति।

अतः परम् आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणमाज्ञापायविपाकसंस्थानविचयसंज्ञचतुर्भेदभिन्नं, तारतम्यवृद्धिक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्टि देशविरतप्रमत्तसंयताप्रमत्ताभिधान चतुर्गुणस्थानवर्त्ति-जीवसम्भवं, मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धकारणमपि परम्परया मुक्तिकारणं चेति धर्मध्यानं

पहले तिर्यंच आयु बंध गई हो उसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टिको वह आर्त्तध्यान तिर्यंचगतिका कारण नहीं होता है।

प्रश्नः—कारण कैसे नहीं होता है?

उत्तरः—'स्व शुद्धात्मा ही उपादेय है' ऐसी विशिष्ट भावनाके बलसे तिर्यंच गतिके कारणभूत संक्लेश भावका उसको अभाव होनेसे।

अब, रौद्रध्यानका कथन करते हैं:—हिंसामें आनंद, झूठ बोलनेमें आनंद, चोरीमें आनंद और विषयोंका संरक्षण करनेमें आनंदसे उत्पन्न चार प्रकारका रौद्रध्यान है। वह रौद्रध्यान तारतम्यतासे मिथ्यादृष्टिसे लेकर पांचवें गुणस्थान तकके जीवोंके संभव है। वह रौद्रध्यान मिथ्यादृष्टि जीवोंको नरकगतिका कारण है तो भी जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पहले नरककी आयु बंधी हो उसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टि जीवोंको वह नरकगतिका कारण नहीं होता है।

प्रश्नः—किस कारणसे नहीं होता है?

उत्तरः—'निज शुद्धात्मतत्त्व ही उपादेय है' ऐसे विशिष्ट भेदज्ञानके बलसे नरकगतिके कारणभूत तीव्र संक्लेशभावका उनको अभाव होनेसे।

अब, आगे आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानके परित्यागरूप आज्ञाविचय, अपाय-विचय, विपाकविचय और संस्थानविचय नामक चार भेदसंयुक्त, तारतम्यवृद्धिक्रमसे असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत—इन चार गुणस्थानवर्ती जीवोंको संभव, मुख्यरूपसे पुण्यबंधका कारण होनेपर भी परम्परासे मोक्षका कारणभूत धर्मध्यान अब कहा जाता है। वह इसप्रकार है:—स्वयं मंदबुद्धि हो और

कथ्यते। तथाहि—स्वयं मन्दबुद्धित्वेऽपि विशिष्टोपाध्यायाभावे अपि शुद्धजीवादिपदार्थानां सूक्ष्मत्वेऽपि सति "सूक्ष्मं जिनोदितं वाक्यं हेतुभिर्यन्न हन्यते। आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥" इति श्लोककथितक्रमेण पदार्थनिश्चयकरणमाज्ञाविचयध्यानं भण्यते। तथैव भेदाभेदरत्नत्रयभावनाबलेनास्माकं परेषां वा कदा कर्मणामपायो विनाशो भविष्यतीति चिन्तनमपायविचयं ज्ञातव्यम्। शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्मविपाकरहितोऽप्ययं जीवः पश्चादनादिकर्मबन्धवशेन पापस्योदयेन नारकादिदुःखविपाकफलमनुभवति, पुण्योदयेन देवादिसुखविपाकमनुभवतीति विचारणं विपाकविचयं विज्ञेयम्। पूर्वोक्तलोकानुप्रेक्षाचिन्तनं संस्थानविचयम्। इति चतुर्विधं धर्मध्यानं भवति।

अथ पृथक्त्ववितर्कवीचारं एकत्ववितर्कावीचारं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञं व्युपरतक्रियानिवृत्तिसंज्ञं चेति भेदेन चतुर्विधं शुक्लध्यानं कथयति। तद्यथा—पृथक्त्व-

---

विशिष्ट ज्ञानी गुरुकी प्राप्ति न हो तब शुद्ध जीवादि पदार्थ सूक्ष्म होनेसे, "सूक्ष्मं जिनोदितं वाक्यं हेतुभिर्यन्न हन्यते। आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥" [अर्थः—श्री जिनेन्द्रका कहा हुआ जो सूक्ष्मतत्त्व है वह हेतुओंसे खंडित नहीं होता है, अतः जो सूक्ष्म तत्त्व है उसे जिनेन्द्रदेवकी आज्ञानुसार ग्रहण करना चाहिये क्योंकि श्री जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नहीं होते' हैं।]—इस श्लोकमें कहे अनुसार पदार्थका निश्चय करना वह 'आज्ञाविचय' नामक प्रथम धर्मध्यान कहलाता है। उसीप्रकार भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनाके बलसे हमारे अथवा अन्य जीवोंके कर्मोंका नाश कब होगा इसप्रकारका चिंतन उसे 'अपायविचय' नामक दूसरा धर्मध्यान जानना। शुद्ध निश्चयनयसे यह जीव शुभाशुभ कर्मोंके उदयसे रहित है, तो भी अनादि कर्मबंधके वशसे पापके उदयसे नारक आदिके दुःखरूप फलका अनुभव करता है और पुण्यके उदयसे देवादिके सुखरूप फलको भोगता है ऐसी विचारणाको 'विपाकविचय' नामक तीसरा धर्मध्यान जानना। पहले कही हुई लोक-अनुप्रेक्षाके चिंतनको 'संस्थानविचय' नामक चौथा धर्मध्यान कहते हैं।

अब, पृथकत्ववीतर्कवीचार, एकत्ववितर्कअवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक चार प्रकारके शुक्लध्यानका कथन करते हैं। वह इसप्रकार है:—प्रथम पृथकत्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानका कथन करते हैं।

---

१. श्री आलाप पद्धति ५।

वितर्कवीचारं तावत्कथ्यते । द्रव्यगुणपर्यायाणां भिन्नत्वं पृथक्त्वं भण्यते, स्वशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं भावश्रुतं तद्वाचकमन्तर्जल्पवचनं वा वितर्को भण्यते, अनीहितवृत्त्यार्थान्तरपरिणमनम् वचनाद्वचनान्तरपरिणमनम् मनोवचनकाययोगेषु योगाद्योगान्तरपरिणमनं वीचारो भण्यते । अयमत्रार्थः—यद्यपि ध्याता पुरुषः स्वशुद्धात्मसंवेदनं विहाय बहिश्चिन्तां न करोति तथापि यावतांशेन स्वरूपे स्थिरत्वं नास्ति तावतांशेनानीहितवृत्त्या विकल्पाः स्फुरन्ति, तेन कारणेन पृथक्त्ववितर्कवीचारं ध्यानं भण्यते । तच्चोपशमश्रेणिविवक्षायामपूर्वोपशमकानिवृत्त्युपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकोपशान्तकषायपर्यन्तगुणस्थानचतुष्टये भवति । क्षपकश्रेण्यां पुनरपूर्वकरणक्षपकानिवृत्तिकरणक्षपकसूक्ष्मसाम्परायक्षपकाभिधानगुणस्थानत्रये चेति प्रथमं शुक्लध्यानं व्याख्यातम् ।

निजशुद्धात्मद्रव्ये वा निर्विकारात्मसुखसंवित्तिपर्याये वा निरुपाधिस्वसंवेदनगुणे वा यत्रैकस्मिन् प्रवृत्तं तत्रैव वितर्कसंज्ञेन स्वसंवित्तिलक्षणभावश्रुतबलेन

द्रव्य, गुण और पर्यायके भिन्नपनेको 'पृथकत्व' कहते हैं । स्व शुद्धात्माकी अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे भावश्रुतको और उसके (स्वशुद्धात्माके) वाचक अंतर्जल्परूप वचनको 'वितर्क' कहते हैं । इच्छाके बिना एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक वचनसे दूसरे वचनमें, मन-वचन-काय इन तीन योगोंमेंसे किसी एक योगसे दूसरे योगमें जो परिणमन (पलटना) होता है उसे 'वीचार' कहते हैं । इसका अर्थ इसप्रकार है—यद्यपि ध्यान करनेवाला पुरुष निज शुद्धात्माका संवेदन छोड़कर बाह्य पदार्थोंका चिंतन नहीं करता है, तो भी उसे जितने अंशमें स्वरूपमें स्थिरता नहीं है उतने अंशमें इच्छाके बिना विकल्प उत्पन्न होते हैं इस कारण इस ध्यानको 'पृथकत्ववितर्कवीचार' कहते हैं । यह प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणीकी विवक्षामें अपूर्वकरण-उपशमक, अनिवृत्तिकरण-उपशमक, सूक्ष्मसांपराय-उपशमक और उपशान्त कषाय—इन चार गुणस्थानोंमें होता है, और क्षपक श्रेणीकी विवक्षामें अपूर्वकरण-क्षपक, अनिवृत्तिकरण-क्षपक और सूक्ष्मसांपराय-क्षपक—इन तीन गुणस्थानोंमें होता है । इसप्रकार प्रथम शुक्लध्यानका व्याख्यान हुआ ।

निज शुद्धात्मद्रव्यमें अथवा विकार रहित आत्मसुखके अनुभवरूप पर्यायमें अथवा उपाधिरहित स्वसंवेदन गुणमें—इन तीनोंमेंसे जिस एकमें (द्रव्य, गुण अथवा पर्यायमें) प्रवृत्त हो उसमें ही वितर्क नामक स्वसंवेदन लक्षणयुक्त भावश्रुतके बलसे

स्थिरीभूयावीचारं गुणद्रव्यपर्यायपरावर्त्तनं न करोति यत्तदेकत्ववितर्कावीचारसंज्ञं क्षीणकषायगुणस्थानसम्भवं द्वितीयं शुक्लध्यानं भण्यते । तेनैव केवलज्ञानोत्पत्तिः इति । अथ सूक्ष्मकायक्रियाव्यापाररूपं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञं तृतीयं शुक्लध्यानम् । तच्चोपचारेण सयोगिकेवलिजिने भवतीति । विशेषेणोपरता निवृत्ता क्रिया यत्र तद् व्युपरतक्रियं च तदनिवृत्ति चानिवर्तकं च तद्व्युपरतक्रियानिवृत्तिसंज्ञं चतुर्थं शुक्लध्यानं । तच्चोपचारेणायोगिकेवलिजिने भवतीति । इति संक्षेपेणागमभाषया विचित्रध्यानं व्याख्यातम् ।

अध्यात्मभाषया पुनः सहजशुद्धपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवति निजात्मन्युपादेयबुद्धिं कृत्वा पश्चादनन्तज्ञानोऽहमनन्तसुखोऽहमित्यादिभावनारूपमभ्यन्तरधर्मध्यानमुच्यते । पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादितदनुकूलशुभानुष्ठानं पुनर्बहिरङ्गधर्मध्यानं भवति ।

स्थिर होकर अवीचाररूप होता है अर्थात् द्रव्य, गुण अथवा पर्यायमें परावर्तन नहीं करता है वह क्षीणकषाय गुणस्थानमें संभव 'एकत्ववितर्कअवीचार' नामक दूसरा शुक्लध्यान कहलाता है । इस दूसरे शुक्लध्यानसे ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है ।

अब, सूक्ष्मकायकी क्रियाके व्यापाररूप और अप्रतिपाति (जिससे गिरना नहीं हो) ऐसा "सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति" नामक तीसरा शुक्लध्यान है । वह उपचारसे 'सयोगिकेवली जिन' गुणस्थानमें होता है ।

जिसमेंसे क्रिया विशेषरूपसे उपरत अर्थात् निवृत्त हुई है वह 'व्युपरतक्रिय' है । व्युपरतक्रिय हो (सर्व क्रियाकी निवृत्ति हुई हो) और अनिवृत्ति हो अर्थात् मुक्ति न हुई हो वह 'व्युपरतक्रियानिवृत्ति' नामक चौथा शुक्लध्यान है । वह उपचारसे 'अयोगिकेवलीजिन' गुणस्थानमें होता है । इसप्रकार संक्षेपमें आगमभाषासे भिन्न-भिन्न प्रकारके ध्यानोंका व्याख्यान किया ।

अध्यात्मभाषासे सहज-शुद्ध-परम-चैतन्यशाली, परिपूर्ण आनंदके धारक भगवान निजात्मामें उपादेयबुद्धि करनेके पश्चात् 'मैं अनंत ज्ञानमय हूँ, मैं अनंत सुखरूप हूँ' इत्यादि भावनारूप अंतरंग धर्मध्यान कहलाता है । पंच परमेष्ठियोंकी भक्ति आदि उसके अनुकूल (अंतरंग धर्मध्यानको व्यवहारसे अनुकूल) शुभ अनुष्ठान वह बहिरंग धर्मध्यान है । उसीप्रकार निज शुद्धात्मामें विकल्परहित समाधिरूप

तथैव स्वशुद्धात्मनि निर्विकल्पसमाधिलक्षणं शुक्लध्यानम् इति। अथवा "पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् । रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥" इति श्लोककथितक्रमेण विचित्रध्यानं ज्ञातव्यमिति ।

अथ ध्यानप्रतिबन्धकानां मोहरागद्वेषाणां स्वरूपं कथ्यते। शुद्धात्मादितत्त्वेषु विपरीताभिनिवेशजनको मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत्। निर्विकार-स्वसंवित्तिलक्षणवीतरागचारित्रप्रच्छादकचारित्रमोहो रागद्वेषौ भण्येते। चारित्रमोहो शब्देन रागद्वेषौ कथं भण्येते ? इति चेत्—कषायमध्ये क्रोधमानद्वयं द्वेषाङ्गम्, मायालोभद्वयं च रागाङ्गम्, नोकषायमध्ये तु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयं हास्यरतिद्वयं च रागाङ्गम्, अरति-शोकद्वयं भयजुगुप्साद्वयं च द्वेषाङ्गमिति ज्ञातव्यम्। अत्राह शिष्यः—रागद्वेषादयः किं कर्मजनिताः किं जीवजनिता इति ? तत्रोत्तरम्—स्त्रीपुरुषसंयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधाहरिद्रासंयोगोत्पन्नवर्णविशेष इवोभयसंयोगजनिता इति। पश्चान्नयविवक्षा

शुक्लध्यान है। अथवा "पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनम् । रूपस्थं सर्व-चिद्रूपं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥" [अर्थः—मंत्रवाक्योंमें स्थित 'पदस्थध्यान' है, निज आत्माका चिंतन वह 'पिंडस्थ' ध्यान है, सर्वचिद्रूपका चिन्तन वह 'रूपस्थ ध्यान' है और निरंजनका ध्यान 'रूपातीत 'ध्यान' है।] इस श्लोकमें कहे अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारका ध्यान जानना।

अब, ध्यानके प्रतिबंधक मोह, राग और द्वेपका स्वरूप कहते हैं। शुद्धात्मा आदि तत्त्वोंमें विपरीत अभिप्राय उत्पन्न करने वाला वह मोह, दर्शनमोह अथवा मिथ्यात्व है। निर्विकार स्वसंवेदन जिसका लक्षण है ऐसे वीतराग चारित्रको आवरण करनेवाला चारित्रमोह वह राग-द्वेप कहलाता है।

प्रश्नः—चारित्रमोह शब्दसे राग-द्वेप किसप्रकार कहा जाता है ?

उत्तरः—कषायोंमें क्रोध-मान ये दो द्वेपके अंश हैं और माया-लोभ ये दो रागके अंश हैं। नोकषायोंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये—तीन वेद तथा हास्य और रति—ये दो (—ये पांच नोकषाय) रागके अंश हैं। अरति और शोक—ये दो तथा भय और जुगुप्सा—ये दो (—ये चार नोकषाय) द्वेपके अंश हैं इसप्रकार जानना।

यहां शिष्य पूछता है:—राग, द्वेप आदि कर्मजनित हैं अथवा जीवजनित हैं ? उसका उत्तर:—स्त्री और पुरुष इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए पुत्रकी भांति, चूने और हल्दीके मिश्रणसे उत्पन्न हुए वर्णविशेषकी भांति, राग-द्वेप आदि

---

१. श्री परमात्मप्रकाश गाथा–१ की टीकामें आधाररूप लिया है।

वशेन विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते । तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीवजनिता इति । स चाशुद्धनिश्चयः शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अथ मतम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम् । तत्रोत्तरम्—साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्रीपुरुषसंयोगरहितपुत्रस्यैव, सुधाहरिद्रासंयोगरहितरङ्गविशेषस्यैव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तरं प्रयच्छाम इति । एवं ध्यातृव्याख्यानमुख्यत्वेन तद्व्याजेन विचित्रध्यानकथनेन च सूत्रं गतम् ॥४८॥

अतः ऊर्ध्वं पदस्थं ध्यानं मन्त्रवाक्यस्थं यदुक्तं तस्य विवरणं कथयतिः—

पणतीससोलछप्पणचउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

जीव और कर्म इन दोनोंके [1]संयोगजनित हैं । नयकी विवक्षाके अनुसार, विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनयसे राग–द्वेष कर्मजनित कहलाते हैं और अशुद्ध निश्चयनयसे जीव जनित कहलाते हैं । यह अशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहार ही है ।

प्रश्नः—साक्षात् शुद्ध निश्चयनयसे ये राग-द्वेष किसके हैं ? ऐसा हम पूछते हैं ।

उत्तरः—साक्षात् शुद्ध निश्चयसे, स्त्री और पुरुषके संयोगरहित पुत्रकी भांति, चूना और हल्दीके संयोगरहित रंग विशेषकी भांति, उनकी (राग-द्वेषादिकी) उत्पत्ति ही नहीं है; तो कैसे उत्तर दें ?

इसप्रकार ध्याताके व्याख्यानकी मुख्यतासे, उसके आश्रयसे, विचित्र ध्यानके कथन द्वारा यह गाथा पूर्ण हुई ॥४८॥

अब, 'मंत्रवाक्यमें स्थित पदस्थ' ध्यान कहा था उसका विवरण करते हैं:—

---

१. दो द्रव्य इकट्ठे मिलकर कभी भी कोई कार्य नहीं कर सकते हैं । परन्तु जीवके क्षणिक अशुद्ध उपादान ने परनिमित्त ऐसे कर्मका आश्रय लिया है अतः वह पराश्रित भाव है इसप्रकार यहां वतलाया है । उसका आशय पराश्रित भाव छोड़कर आत्माश्रितभाव प्रगट करानेका है ।

परमेष्ठी-वाचक पैंतीस, वर्ण सोल छह पण चतुर्दश ।
दोय एक पुनि ध्यावो जपो, और वताये गुरुके लपो ॥४९॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पञ्च चत्वारि द्विकं एकं च जपत ध्यायत ।
परमेष्ठिवाचकानां अन्यत् च गुरूपदेशेन ॥ ४९ ॥

व्याख्या—"पणतीस" 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं' एतानि पञ्चत्रिंशदक्षराणि सर्वपदानि भण्यन्ते । "सोल" 'अरिहंत-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू' एतानि षोडशाक्षराणि नामपदानि भण्यन्ते । "छ" 'अरिहन्तसिद्ध' एतानि षडक्षराणि अर्हत्सिद्धयोर्नामपदे द्वे भण्येते । "पण" 'अ सि आ उ सा' एतानि पञ्चाक्षराणि आदिपदानि भण्यन्ते । "चउ" 'अरिहंत' इदमक्षरचतुष्टयमर्हतो नामपदम् । "दुगं" 'सिद्ध' इत्यक्षरद्वयं सिद्धस्य नामपदम् । "एगं च" 'अ' इत्येकाक्षरमर्हत आदिपदम् । अथवा 'ओं' एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादिपदम् । तत्कथमिति चेत् ? "अरिहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झाया । मुणिणो पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंच

गाथा–४९

गाथार्थः—पंच परमेष्ठीके वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पांच, चार, दो और एक अक्षररूप मंत्रपदोंका जाप करो, ध्यान करो; उनके अतिरिक्त अन्यका भी, गुरुके उपदेश अनुसार जाप और ध्यान करो ।

टीकाः—"पणतीस" 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण' ये पैंतीस अक्षर 'सर्वपद' कहलाते हैं । "सोल" 'अरिहंत-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू' ये सोलह अक्षर 'नामपद' कहलाते हैं । "छ" 'अरिहंत-सिद्ध' ये छह अक्षर अरिहंत-सिद्ध इन दो परमेष्ठियोंके 'नामपद' कहलाते हैं । "पण" 'अ, सि, आ, उ, सा' ये पांच अक्षर पंच परमेष्ठीके 'आदिपद' कहलाते हैं । "चउ" 'अरिहंत' ये चार अक्षर अरिहंत परमेष्ठीके 'नामपद' हैं । "दुगं" 'सिद्ध' ये दो अक्षर सिद्ध परमेष्ठीके 'नामपद' हैं । "एगं च" 'अ' यह एक अक्षर अरिहंत परमेष्ठीका 'आदिपद' है, अथवा 'ओं' यह एक अक्षर पांचों परमेष्ठियोंका 'आदिपद' है ।

प्रश्नः—'ओं' यह पांचों परमेष्ठियोंका आदिपद किसप्रकार है ?

उत्तरः—"अरिहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झाया । मुणिणो पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥ [अर्थः—अरिहंतका प्रथम अक्षर 'अ', अशरीर

परमेट्ठी । १ ।" इति गाथाकथितप्रथमाक्षराणां 'समानः सवर्णे दीर्घो भवति' 'परश्च लोपम्' 'उवर्णे ओ' इति स्वरसन्धिविधानेन 'ओं' शब्दो निष्पद्यते । कस्मादिति ? 'जवह ज्झाएह' एतेषां पदानां सर्वमंत्रवादपदेषु मध्ये सारभूतानां इहलोकपरलोकेष्ट-फलप्रदानामर्थं ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जापं कुरुत । तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्तावस्थायां मौनेन ध्यायत । पुनरपि कथम्भू-तानां ? 'परमेट्ठिवाचयाणं' 'अरिहंत' इति पदवाचकमनन्तज्ञानादिगुणयुक्तोऽर्हद्वा-च्योऽभिधेय इत्यादिरूपेण पञ्चपरमेष्ठिवाचकानां । 'अण्णं च गुरूवएसेण' अन्य-दपि द्वादशसहस्रप्रमितपञ्चनमस्कारग्रन्थकथितक्रमेण लघुसिद्धचक्रं, बृहत्सिद्धचक्र-

---

(सिद्ध) का प्रथम अक्षर 'अ', आचार्यका प्रथम अक्षर 'आ', उपाध्यायका प्रथम अक्षर 'उ' मुनिका प्रथम अक्षर 'म्',—इसप्रकार पांचों परमेष्ठियोंके प्रथम अक्षरोंसे वना हुआ 'ओंकार' है, वही पंच परमेष्ठियोंके नामका आदिपद है ।]"—इस गाथामें कथित जो प्रथम अक्षर है, उसमें पहले "समानः सवर्णे दीर्घो भवति" इस सूत्रसे 'अ, अ, आ,' मिलाकर दीर्घ 'आ' वनाकर "परश्च लोपम्" इस सूत्रसे पश्चात्के 'आ' का लोप करके, अ अ आ इन तीनोंका 'आ' सिद्ध किया । पश्चात् "उवर्णे ओ" इस सूत्रसे आ+उ के स्थानमें 'ओ' वनाया, इसप्रकार स्वरसंधि करनेसे 'ओम्' यह शव्द निष्पन्न हुआ । "जवह ज्झाएह" मंत्रशास्त्रके सर्वपदोंमें सारभूत, इस लोकमें और परलोकमें इष्ट फल देने वाले इन पदोंका अर्थ जानकर पश्चात् अनंतज्ञानादि गुणोंके स्मरणरूपसे और वचनके उच्चारणरूपसे जापकरो उसीप्रकार [1]शुभोपयोगरूप त्रिगुप्त अवस्थामें मौनपूर्वक ध्यान करो । तथा वे पद कैसे हैं ? "परमेट्ठिवाचयाणं" 'अरिहंत' पद वाचक है और अनंतज्ञानादि गुणोंसे युक्त श्रीअरिहंत इस पदका वाच्य अर्थात् अभिधेय (कहने योग्य) हैं । इत्यादि प्रकारसे पंच परमेष्ठीके वाचक हैं । "अण्णं च गुरुवएसेण" पूर्वोक्त पदोंके अतिरिक्त अन्यका भी वारह हजार श्लोकप्रमाण पंचनमस्कारमाहात्म्य नामक ग्रन्थमें कहे अनुसार लघु सिद्धचक्र, बृहत् सिद्धचक्र इत्यादि देवपूजनके विधानका—[2]भेदाभेद रत्नत्रयके

---

१. यह शुभोपयोगरूपी भाव हेयवुद्धिसे सम्यग्दृष्टि जीवोंको ४–५–६ गुणस्थानमें आए विना नहीं रहता, अज्ञानी उसको उपादेय मानता है ।

२. भेदाभेद रत्नत्रय एकसाथ मुनियोंको यथाख्यातचारित्र होनेसे पहले होता है और वह एक साथ प्रथम ध्यानमें प्रगट होता है । देखो इस शास्त्रकी गाथा–४७ ।

मित्यादिदेवार्चनविधानं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकगुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम् । इति पदस्थध्यानस्वरूपं व्याख्यातम् ।। ४९ ।।

एवमनेन प्रकारेण "गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् । एकाग्रचिन्तनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरौ ।।१।।" इति श्लोककथितलक्षणानां ध्यातृध्येयध्यानफलानां संक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण द्वितीयान्तराधिकारे प्रथमं स्थलं गतम् ।

अतः परं रागादिविकल्पोपाधिरहितनिजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपस्य निश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतम् यच्छुभोपयोगलक्षणं व्यवहारध्यानं तद्ध्येयभूतानां पंचपरमेष्ठिनां मध्ये तावदर्हत्स्वरूपं कथयामीत्येका पातनिका । द्वितीया तु पूर्वसूत्रोदितसर्वपदनामपदादिपदानां वाचकभूतानां वाच्या ये पञ्चपरमेष्ठिनस्तद्व्याख्याने क्रियमाणे प्रथमतस्तावज्जिनस्वरूपं निरूपयामि । अथवा तृतीया पातनिका पदस्थपिण्डस्थरूपस्थध्यानत्रयस्य

आराधक गुरुके प्रसादसे जानकर, ध्यान करना । इसप्रकार पदस्थ ध्यानका स्वरूप कहा ।। ४९ ।।

इसप्रकार "गुप्तेन्द्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् । एकाग्रचिन्तनं ध्यानं फलं संवर निर्जरौ ।।[अर्थः—इन्द्रिय और मनको रोकनेवाला ध्याता है, यथास्थित पदार्थ ध्येय है, एकाग्रचिन्तन ध्यान है, संवर[1] और निर्जरा—यह ध्यानका फल है ।]"[2]—इस श्लोकमें कथित लक्षणयुक्त ध्याता, ध्येय, ध्यान और फलका संक्षेपमें व्याख्यान कर तीन गाथाओं द्वारा द्वितीय अंतराधिकारमें प्रथम स्थल समाप्त हुआ ।

अब, रागादि विकल्परूप उपाधिसे रहित निज परमात्मपदार्थकी भावनासे उत्पन्न सदानंद (नित्यआनंद) जिसका एक लक्षण है ऐसे सुखामृतके रसास्वादसे तृप्तिरूप निश्चयध्यानका परम्परासे कारणभूत जो शुभोपयोग लक्षणयुक्त व्यवहारध्यान है उसके ध्येयभूत पांच परमेष्ठियोंमेंसे प्रथम अरिहंत परमेष्ठीका स्वरूप मैं कहता हूँ—यह एक पातनिका है । पूर्वगाथामें कथित सर्वपद-नामपद-आदिपदरूप वाचकोंके वाच्य जो पंच परमेष्ठी हैं उनका व्याख्यान करते हुए प्रथम ही मैं

---

१. भूमिका प्रमाणमें शुद्धिके अनुसार संवर-निर्जरा होती है ।

२. श्री तत्त्वानुशासन गाथा—३८

ध्येयभूतमर्हत्सर्वज्ञस्वरूपं दर्शयामीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयति :—

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥५०॥

व्याख्या—"णट्ठचदुघाइकम्मो" निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगध्यानेन पूर्वं घातिकर्ममुख्यभूतमोहनीयस्य विनाशनाचदनन्तरं ज्ञानदर्शनावरणान्तरायसंज्ञयुगपद्-घातित्रयविनाशकत्वाच्च प्रणष्टचतुर्घातिकर्मा । "दंसणसुहणाणवीरियमईओ," तेनैव घातिकर्माभावेन लब्धानन्तचतुष्टयत्वात् सहजशुद्धाविनश्वरदर्शनज्ञानसुखवीर्य-

---

श्रीजिनेन्द्रका स्वरूप निरूपण करता हूं—यह द्वितीय पातनिका है; अथवा पदस्थ, पिण्डस्थ और रूपस्थ—इन तीन ध्यानोंके ध्येयभूत श्रीअरिहंत-सर्वज्ञका स्वरूप मैं दर्शाता हूं—यह तीसरी पातनिका है। इन तीन पातनिकाओंको मनमें धारण कर, श्रीनेमिचन्द्रआचार्यदेव अब आगे की गाथाका प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा–५०

गाथार्थः—जिन्होंने चार घातियाकर्म नष्ट किये हैं, जो (अनंत) दर्शन-सुख-ज्ञान-वीर्यमय हैं, जो उत्तम देहमें विराजमान हैं और जो शुद्ध (अठारह दोष रहित) हैं:—ऐसे आत्मा अर्हंत हैं, उनका ध्यान करने योग्य है।

टीकाः—"णट्ठचदुघाइकम्मो" निश्चयरत्नत्रयात्मक, शुद्धोपयोगी ध्यान द्वारा पहले घातीकर्मोमें मुख्य मोहनीयका नाशकर, तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय—इन तीन घातीकर्मोका एक साथ नाश कर, जो चार घातीकर्मोंकें नष्ट करने वाले हुए हैं। "दंसणसुहणाणवीरियमइयो" उन घातीकर्मोके नाशसे अनंत चतुष्टय (अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य) को प्राप्त किया होनेसे सहज शुद्ध,

---

च्यारि घातिया कर्म नशाय, दर्शन ज्ञान सुख वीरजि पाय ।
परमदेहमें तिष्ठै संत, सो आतम चितवो अरहंत ॥५०॥

मयः । "सुहदेहत्थो" निश्चयेनाशरीरोऽपि व्यवहारेण सप्तधातुरहितदिवाकर-सहस्रभासुरपरमौदारिकशरीरत्वात् शुभदेहस्थः । "सुद्धो" "क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् । जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदोऽरतिः ॥ १ ॥ विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृताः । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सो अयमाप्तो निरञ्जनः ॥ २ ॥" इति श्लोकद्वयकथिताष्टादशदोषरहितत्वात् शुद्धः । "अप्पा" एवं गुणविशिष्ट आत्मा । "अरिहो" अरिशब्दवाच्यमोहनीयस्य, रजः-शब्दवाच्यज्ञानदर्शनावरणद्वयस्य, रहस्यशब्दवाच्यान्तरायस्य च हननाद्विनाशात् सकाशात् इन्द्रादिविनिर्मितां गर्भावतरणजन्माभिषेकनिःक्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणाभिधानपञ्च-महाकल्याणरूपां पूजामर्हति योग्यो भवति तेन कारणेन अर्हन् भण्यते । "विचिन्तिज्जो" इत्युक्तविशेषणैर्विशिष्टमाप्तागमप्रभृतिग्रन्थकथितवीतरागसर्वज्ञाद्यष्टो-त्तरसहस्रनामानमर्हतं जिनभट्टारकं पदस्थपिंडस्थरूपस्थध्याने स्थित्वा विशेषेण चिन्तयत

अविनाशी दर्शन-ज्ञान-सुख और वीर्यमय हैं । "सुहदेहत्थो" निश्चयसे शरीर रहित हैं तो भी व्यवहारनयसे सात धातुओंसे रहित, हजारों सूर्य समान देदीप्यमान ऐसे परम औदारिक शरीर युक्त होनेसे शुभदेहमें विराजमान हैं । "सुद्धो"—"क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् । जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदोऽरतिः ॥ विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृताः । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः ॥" [अर्थः—क्षुधा, तृषा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, खेद, स्वेद (पसीना), मद, अरति, विस्मय, जन्म, निद्रा और विषाद—इन अठारह दोषोंसे रहित निरंजन परमात्मा वह आप्त[1] है ।]—इन दो श्लोकोंमें कहे हुए अठारह दोषोंसे रहित होनेके कारण 'शुद्ध' है । "अप्पा" ऐसे विशिष्ट गुणोंयुक्त आत्मा है । "अरिहो"—'अरि' शब्दसे वाच्य मोहनीय कर्मका, "रज" शब्दसे वाच्य ज्ञानावरण और दर्शनावरण—इन दो कर्मोंका और "रहस्य" शब्दसे वाच्य अन्तरायकर्मका—इसप्रकार चारों कर्मोंका नाश करनेके कारण इन्द्र आदि द्वारा रचित गर्भावतार, जन्माभिषेक, तप, केवलज्ञानकी उत्पत्ति और निर्वाण नामक पांच महाकल्याणकरूप पूजाके योग्य हैं इस कारण 'अर्हन्' कहलाते हैं । "विचिन्तिज्जो" हे भव्यों ! तुम उपरोक्त विशेषणोंसे विशिष्ट, आप्तकथित आगम आदि ग्रन्थोंमें कहे हुए वीतराग, सर्वज्ञ आदि एक हजार आठ नामवाले अर्हत् जिन भट्टारकका पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ ध्यानमें स्थित होकर, विशेषरूपसे

---

१. श्री आप्तस्वरूप गाथा–१५-१६

ध्यायत हे भव्या यूयमिति ।

अत्रावसरे भट्टचार्वाकमतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति । नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः । खरविषाणवत् ? तत्र प्रत्युत्तरम्—किमत्र देशेऽत्र काले अनुपलब्धिः, सर्वदेशे काले वा । यदत्र देशेऽत्र काले नास्ति तदा सम्मत एव । अथ सर्वदेशकाले नास्तीति भण्यते तज्जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं कथं ज्ञातं भवता । ज्ञातं चेत्तर्हि भवानेव सर्वज्ञः । अथ न ज्ञातं तर्हि निषेधः कथं क्रियते ? तत्र दृष्टान्तः—यथा कोऽपि निषेधको घटस्याधारभूतं घटरहितं भूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्वदत्यत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तम्; यस्तु चक्षुः रहितस्तस्य पुनरिदं वचनमयुक्तम् । [1]तथैव यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं जानाति तस्य जगत्त्रये कालत्रयेऽपि सर्वज्ञो नास्तीति वक्तुं युक्तं भवति, यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं

चिंतवन करो, ध्यान करो !

यहां भट्ट और चार्वाक मतका आश्रय लेकर शिष्य पूर्वपक्ष करता है कि—'सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि उसकी अनुपलब्धि (अप्राप्ति) है (अर्थात् जाननेमें नहीं आता है), गधेके सींगकी भांति ।' उसका प्रत्युत्तर:—सर्वज्ञकी प्राप्ति क्या इस देश और इस कालमें नहीं है कि सर्वदेश और सर्वकालमें नहीं है ? यदि इस देश और इस कालमें नहीं है ऐसा कहो तो हम भी उसे मानते ही हैं । यदि तुम ऐसा कहते हो कि 'सर्वदेश और सर्वकालमें सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं है' तो तीनलोक और तीनकालमें तुमने सर्वज्ञके बिना किस प्रकार जाना ? यदि तुम कहते हो कि हमने जाना है तो तुम ही सर्वज्ञ हुए और यदि तुमने नहीं जाना है तो फिर निषेध कैसे करते हो ? वहां दृष्टांत है:—जिस प्रकार कोई निषेध करनेवाला मनुष्य, घटके आधारभूत पृथ्वीको आँखोंसे घटरहित देखकर फिर कहता है कि इस पृथ्वीपर घट नहीं है तो उसका कथनयुक्त (-ठीक) है; परन्तु जिसके आंखें नहीं हैं उसका ऐसा कहना अयोग्य ही है; [1]उसीप्रकार जो तीन लोक और तीन कालको सर्वज्ञ रहित जानता है उसका ऐसा कहना कि 'तीनलोक और तीनकालमें सर्वज्ञ नहीं है' योग्य है । परन्तु जो तीन लोक और तीनकालको जानता वह सर्वज्ञका निषेध किसीभी प्रकारसे नहीं करता है । कैसे नहीं करता है ? तीनलोक और

१. तथा योसौ जगत्त्रय कालत्रय सर्वज्ञरहितं प्रत्येक्षण जानाति सः एव सर्वज्ञनिषेधे समर्थो, न चान्यान्ध इव, यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति । कस्मात् ? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञान सहितत्वेन स्वमेव सर्वज्ञत्वादिति । (पंचास्तिकाय तात्पर्यवृत्तिः गाथा–२६)

[1]जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति । कस्मादिति चेत् ? [2]जगत्त्रयकालत्रयपरिज्ञानेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति ।

अथोक्तमनुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदप्ययुक्तम् । कस्मादिति चेत्—किं भवतामनुपलब्धिः, किं जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिपुरुषाणां वा ? यदि भवतामनुपलब्धिस्तावता सर्वज्ञाभावो न सिध्यति, भवद्भिरनुपलभ्यमानानां परकीयचित्तवृत्तिपरमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थानामिव । अथवा जगत्त्रयकालत्रयवर्त्तिपुरुषाणामनुपलब्धिस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिः । ज्ञातं चेत्तर्हि भवन्त एव सर्वज्ञा इति पूर्वमेव भणितं तिष्ठति । इत्यादिहेतुदूषणं ज्ञातव्यम् । यथोक्तं खरविषाणवदिति दृष्टान्तवचनम् तदप्यनुचितम् । खरे विषाणं नास्ति गवादौ तिष्ठतीत्यत्यन्ताभावो नास्ति यथा तथा सर्वज्ञस्यापि नियतदेशकालादिष्वभावेऽपि सर्वथा नास्तित्वं न भवति इति दृष्टान्तदूषणं गतम् ।

अथ मतं—सर्वज्ञविषये बाधकप्रमाणं निराकृतं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावसाधकं

तीनकालको जाननेसे वह स्वयं सर्वज्ञ हुआ, अतः वह सर्वज्ञका निषेध नहीं करता है ।

सर्वज्ञके निषेधमें 'सर्वज्ञकी अनुपलब्धि' ऐसा जो हेतुवाक्य है वह भी योग्य नहीं है । योग्य कैसे नहीं है ? क्या आपको सर्वज्ञकी अनुपलब्धि (अप्राप्ति) है कि तीनलोक और तीनकालके पुरुषोंको अनुपलब्धि है ? यदि आपको ही सर्वज्ञकी अनुपलब्धि हो तो इतने मात्रसे ही सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि जिस प्रकार परके मनके विचार तथा परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थोंकी आपको अनुपलब्धि है तो भी उनका अभाव सिद्ध नहीं होता है । अथवा यदि तीनों लोक और तीनों कालके पुरुषोंको सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है तो आपने ऐसा किस प्रकार जाना ? यदि आप कहते हो कि "हमने ऐसा जाना है" तो आप ही सर्वज्ञ हुए—ऐसा पहले ही कहा गया है । इसप्रकार हेतुमें दूषण है—ऐसा जानना ।

सर्वज्ञके अभावकी सिद्धिमें जो "गधेके सींग" का दृष्टांत दिया था वह भी अनुचित है । गधेके सींग नहीं होते परन्तु गाय आदिके सींग हैं, सींगका अत्यन्त अभाव नहीं है उसीप्रकार सर्वज्ञका अमुक देश और कालमें अभाव होनेपर भी सर्वथा अभाव नहीं है । इसप्रकार दृष्टांतमें दोष कहा है ।

प्रश्नः—आपने सर्वज्ञके संबंधमें बाधक प्रमाणका तो खंडन किया परन्तु सर्वज्ञके सद्भावको सिद्ध करनेवाला प्रमाण क्या है ?

---

१. 'न जानाति' इति पाठान्तरं । २. 'किं भवतामनुपलब्धेः जगत्त्रय' इति पाठान्तरं ।

प्रमाणं किम् ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह—कश्चित् पुरुषो धर्मी, सर्वज्ञो भवतीति साध्यते धर्मः, एवं धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, पूर्वोक्त-प्रकारेण बाधकप्रमाणाभावादिति हेतुवचनम् । किंवत्, स्वयमनुभूयमानसुखदुःखादि-वदिति दृष्टान्तवचनम् । एवं सर्वज्ञसद्भावे पक्षहेतुदृष्टान्तरूपेण त्र्यङ्गमनुमानं विज्ञेयम् । अथवा द्वितीयमनुमानं कथ्यते—रामरावणादयः कालान्तरिता, मेर्वादयो देशान्तरिता भूतादयो भवान्तरिताः परचेतोवृत्तयः परमाण्वादयश्चसूक्ष्मपदार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवन्तीति साध्यो धर्म इति धर्मिधर्मसमुदायेन पक्षवचनम् । कस्मादिति चेत्, अनुमानविषयत्वादिति हेतुवचनम् । किंवत्, यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं भवति, यथाग्न्यादि, इत्यन्वयदृष्टान्तवचनं । अनुमानेन विषयाश्चेति, इत्युपनयवचनम् । तस्मात् कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्तीति निगमन-

---

उत्तरः—'कोई पुरुष सर्वज्ञ है' इस वाक्यमें 'पुरुष' धर्मी है और 'सर्वज्ञ है' वह साध्य (जिसकी सिद्धि करनी है ऐसा) धर्म है। इसप्रकार 'कोई पुरुष सर्वज्ञ है' यह वाक्य धर्मी और धर्मके समुदायरूपसे पक्षवचन है। 'किस कारणसे ? (अर्थात् किसी पुरुषके सर्वज्ञ होनेमें हेतु क्या है ?)' ऐसा पूछा जाये तो, 'पूर्वोक्त प्रकारसे बाधकप्रमाणका अभाव होनेसे;—यह हेतुवचन है। किसकी भांति ? 'अपने अनुभवमें आते हुए सुख और दुःख आदिकी भांति;' यह दृष्टांत वचन है। इसप्रकार सर्वज्ञके सद्भावमें पक्ष, हेतु और दृष्टांत रूपसे तीन अंगोंयुक्त अनुमान जानना।

अथवा सर्वज्ञके सद्भावका साधक दूसरा अनुमान कहते हैं:—'राम, रावण आदि कालसे अंतरित (आच्छादित) पदार्थ, मेरु आदि क्षेत्रसे अंतरित पदार्थ, भूत आदि भवसे अंतरित पदार्थ तथा दूसरोंके चित्तके विकल्प और परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ किसी भी पुरुष विशेषके प्रत्यक्ष होते हैं (देखनेमें आते हैं)' यह धर्मी और धर्मके समुदायरूप पक्षवचन है। उनमें 'राम, रावण आदि कालसे अंतरित पदार्थ, मेरु आदि क्षेत्रसे अंतरित पदार्थ, भूत आदि भवसे अंतरित पदार्थ तथा दूसरोंके चित्तके विकल्प और परमाणु आदि पदार्थ' धर्मी हैं और 'किसी भी पुरुष विशेषके प्रत्यक्ष हैं' वह साध्यधर्म है। 'अंतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष किस प्रकार हैं ?' इसप्रकार पूछा जाये तो 'अनुमानका विषय होनेसे';—यह हेतुवचन है। किसकी भांति ? 'जो जो अनुमानका विषय होते हैं वे वे किसीको प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे अग्नि आदि;'—यह अन्वय-दृष्टांतका वचन है। 'अन्तरित और सूक्ष्म पदार्थ अनुमानके विषय हैं' यह उपनयका वचन है। अतः 'अंतरित

वचनं । इदानीं व्यतिरेकदृष्टान्तः कथ्यते—यन्न कस्यापि प्रत्यक्षं तदनुमानविषयमपि न भवति, यथा खपुष्पादि, इति व्यतिरेकदृष्टान्तवचनम् । अनुमानविषयाश्चेति पुनरप्युपनयवचनम् । तस्मात् प्रत्यक्षा भवन्तीति पुनरपि निगमनवचनमिति । किन्त्वनुमानविषयत्वादित्ययं हेतुः, सर्वज्ञस्वरूपे साध्ये सर्वप्रकारेण सम्भवति यतस्ततः कारणात्स्वरूपासिद्धभावासिद्धविशेषणादसिद्धो[1] न भवति । तथैव सर्वज्ञस्वरूपं स्वपक्षं विहाय सर्वज्ञाऽभावं विपक्षं न साधयति तेन कारणेन विरुद्धो न भवति । तथैव च यथा सर्वज्ञसद्भावे स्वपक्षे वर्तते तथा सर्वज्ञाभावेऽपि विपक्षेऽपि न वर्तते तेन कारणेनाऽनैकान्तिको न भवति । अनैकान्तिकः कोऽर्थो ? व्यभिचारीति । तथैव प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितो न भवति, तथैव च प्रतिवादिनां प्रत्यसिद्धं सर्वज्ञसद्भावं साधयति, तेन कारणेनार्किंचित्करोऽपि न भवति । एवमसिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करहेतुदोषरहितत्वात्सर्वज्ञसद्भावं साधयत्येव । इत्युक्तप्रकारेण सर्वज्ञसद्भावे

और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष होते हैं' यह निगमन-वचन है । अब व्यतिरेकका दृष्टांत कहते हैं:—'जो किसीको भी प्रत्यक्ष नहीं होता है वह अनुमानका विषय भी नहीं होता है, जैसेकि 'आकाशके पुष्प आदि';—यह व्यतिरेक दृष्टान्तका वचन है । 'अंतरित और सूक्ष्म पदार्थ अनुमानके विषय हैं' यह पुनः उपनयका वचन है । अतः 'अंतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष हैं,' यह पुनः निगमन-वचन है ।

'अंतरित और सूक्ष्म पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष हैं, अनुमानका विषय होनेसे'—यहां 'अनुमानका विषय होनेसे' यह हेतु है । सर्वज्ञरूप साध्यमें यह हेतु सब प्रकारसे संभव है; इस कारण यह हेतु 'स्वरूपसे असिद्ध' अथवा 'भावसे असिद्ध'—ऐसे विशेषण द्वारा असिद्ध नहीं है । तथा उक्त हेतु, सर्वज्ञरूप अपना पक्ष छोड़कर सर्वज्ञके अभावरूप विपक्षको सिद्ध नहीं करता है इस कारण विरुद्ध भी नहीं है । तथा वह (हेतु) जिस प्रकार सर्वज्ञके सद्भावरूप स्वपक्षमें वर्तता है उसी प्रकार सर्वज्ञके अभावरूप विपक्षमें भी नहीं वर्तता है, इस कारण उक्त हेतु अनैकान्तिक भी नहीं है । अनैकान्तिकका क्या अर्थ है ? व्यभिचारी, ऐसा अर्थ है तथा उक्त हेतु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे बाधित भी नहीं है तथा वह हेतु (सर्वज्ञको नहीं माननेवाले) प्रतिवादियोंको असिद्ध ऐसे सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध करता है, इस कारण अकिंचित्कर भी नहीं है । इसप्रकार 'अनुमानका विषय होनेसे'—यह हेतु असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक (बाधित) और अकिंचित्कररूप जो हेतुके दोष हैं, उनसे रहित है अतः वह सर्वज्ञके सद्भावको सिद्ध करता ही है । उपरोक्त प्रकारसे

१. 'विशेषणाद्यसिद्धो' इति पाठान्तरं ।

पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनरूपेण पञ्चाङ्गमनुमानम् ज्ञातव्यमिति ।

किं च यथा लोचनहीनपुरुषस्यादर्शे विद्यमानेऽपि प्रतिबिम्बानां परिज्ञानं न भवति, तथा लोचनस्थानीयसर्वज्ञतागुणरहितपुरुषस्यादर्शस्थानीयवेदशास्त्रे कथितानां प्रतिबिम्बस्थानीयपरमाण्वाद्यनन्तसूक्ष्मपदार्थानां क्वापिकाले परिज्ञानं न भवति । तथा चोक्तं "यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥१॥" इति संक्षेपेण सर्वज्ञसिद्धिरत्र बोद्धव्या । एवं पदस्थ-पिण्डस्थरूपस्थध्याने ध्येयभूतस्य सकलात्मनो जिनभट्टारकस्य व्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥५०॥

अथ सिद्धसदृशनिजपरमात्मतत्त्वपरमसमरसीभावलक्षणस्य रूपातीतनिश्चयध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूतं मुक्तिगतसिद्धभक्तिरूपं "णमो सिद्धाणं" इति पदोच्चारणलक्षणं

सर्वज्ञके सद्भावमें पक्ष, हेतु, दृष्टांत, उपनय और निगमनरूप पांच अंगोंसे युक्त अनुमान जानना ।

विशेषः—जिसप्रकार नेत्र रहित पुरुषको दर्पण विद्यमान हो तो भी प्रतिबिम्बोंका परिज्ञान नहीं होता है, उसीप्रकार नेत्र स्थानीय (नेत्र समान) सर्वज्ञतारूपी गुणसे रहित पुरुषको दर्पणस्थानीय वेदशास्त्रोंमें कथित प्रतिबिंब-स्थानीय परमाणु आदि अनंत सूक्ष्म पदार्थोंका किसीभी कालमें परिज्ञान नहीं होता है । इसप्रकार कहा भी है कि—'जिस पुरुषको स्वयं बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या (उपकार[1]) कर सकता है ? क्योंकि नेत्ररहित पुरुषको दर्पण क्या उपकार करे ?

इसप्रकार यहां संक्षेपमें सर्वज्ञकी सिद्धि जानना ।

इसप्रकार पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ—इन ध्यानोंके ध्येयभूत सकल परमात्मा श्रीजिन-भट्टारकके व्याख्यानसे यह गाथा समाप्त हुई ॥५०॥

अब, सिद्ध समान निज परमात्मतत्त्वमें परम समरसीभाव जिसका लक्षण है ऐसे रूपातीत नामक निश्चयध्यानका परम्परासे कारणभूत, मुक्तिप्राप्त सिद्ध परमेष्ठियोंकी भक्तिरूप, 'णमो सिद्धाणं' इस पदके उच्चारणरूप लक्षणयुक्त जो

---

१. यहां निमित्त अकिंचित्कर है ऐसा सिद्ध किया है ।

यत्पदस्थं ध्यानं तस्य ध्येयभूतं सिद्धपरमेष्ठीस्वरूपं कथयतिः—

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणश्रो दट्ठा ।
पुरिसायारो श्रप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

नष्टाष्टकर्म्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः द्रष्टा ।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः ॥५१॥

व्याख्या—"णट्ठट्ठकम्मदेहो" शुभाशुभमनोवचनकायक्रियारूपस्य द्वैतशब्दाभिधेय-कर्मकाण्डस्य निर्मूलनसमर्थेन स्वशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमाह्लादैकलक्षणसुन्दरमनोहरानन्दस्यंदिनिःक्रियाद्वैतशब्दवाच्येन परमज्ञानकाण्डेन विनाशित-ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मौदारिकादिपञ्चदेहत्वात् नष्टाष्टकर्मदेहः । "लोयालोयस्य जाणओ दट्ठा" पूर्वोक्तज्ञानकाण्डभावनाफलभूतेन सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयेन लोकालोकगतत्रिकाल-

---

पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं:—

गाथा–५१

गाथार्थः—जिसने आठकर्मका और देहका नाश किया है, जो लोकालोकका ज्ञाता और दृष्टा है तथा जो पुरुषाकार है,—ऐसा आत्मा सिद्ध है; लोकके शिखर पर विराजमान उस सिद्ध परमेष्ठीका तुम ध्यान करो ।

टीकाः—"णट्ठट्ठकम्मदेहो" शुभाशुभ मन, वचन और कायाकी क्रियारूप ऐसा जो 'द्वैत' शब्दके अभिधेयरूप कर्मकांड उसका नाश करनेमें समर्थ ऐसे परम ज्ञानकांड द्वारा—जिस ज्ञानकांडमेंसे, निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न, रागादिविकल्पोपाधिरहित परम आह्लाद जिसका एकमात्र लक्षण है ऐसा सुन्दर, मनोहर आनंद झरता है, जो निष्क्रिय है और जो अद्वैत शब्दसे वाच्य है उसके द्वारा—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों और औदारिक आदि पांच शरीरोंको नष्ट किया होनेसे जो 'नष्ट-अष्ट-कर्म-देह' है अर्थात् 'जिसने आठ कर्म और देह नष्ट किये हैं ऐसा' है; "लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा" जिस पूर्वोक्त ज्ञानकांडकी भावनाके फलरूप संपूर्ण निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन—इन दोनों द्वारा लोकालोकके तीनकालके

आठ करम अर देह नशाय, लोकालोक देखि जो ज्ञाय ।
पुरुषाकार आत्मा सिद्ध, ध्यावो लोक-शिखर-स्थित इद्ध ॥५१॥

वर्त्तिसमस्तवस्तुसम्बन्धिविशेषसामान्यस्वभावानामेकसमयज्ञायकदर्शकत्वात् लोकालोकस्य ज्ञाता द्रष्टा भवति। "पुरिसायारो" निश्चयनयेनातीन्द्रियामूर्त्तपरमचिदुच्छलननिर्भरशुद्धस्वभावेन निराकारोऽपि व्यवहारेण भूतपूर्वनयेन किञ्चिदूनचरमशरीराकारेण गतसिक्थमूषागर्भाकारवच्छायाप्रतिमावद्वा पुरुषाकारः। "अप्पा" इत्युक्तलक्षण आत्मा। किं भण्यते ? "सिद्धो" अञ्जनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धखड्गसिद्धमायासिद्धादिलौकिकसिद्धविलक्षणः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणः सिद्धो भण्यते। "झाएह लोयसिहरत्थो" तमित्थंभूतं सिद्धपरमेष्ठिनं लोकशिखरस्थं दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियभोगप्रभृतिसमस्तमनोरथरूपनानाविकल्पजालत्यागेन त्रिगुप्तिलक्षणरूपातीतध्याने स्थित्वा ध्यायत हे भव्या यूयम् इति। एवं निष्कलसिद्धपरमेष्ठिव्याख्यानेन गाथा गता ॥५१॥

अथ निरुपाधिशुद्धात्मभावनानुभूत्यविनाभूतनिश्चयपञ्चाचारलक्षणस्य निश्चय-

---

समस्त पदार्थोंके विशेष और सामान्य भावोंको एक ही समयमें जानने और देखनेके कारण लोकालोकका ज्ञाता और दृष्टा है; "पुरिसायारो" जो निश्चयनयसे अतीन्द्रिय, अमूर्त, परम चैतन्यसे भरे हुए शुद्ध स्वभावकी अपेक्षासे निराकार है तो भी व्यवहारसे भूतपूर्वनयकी अपेक्षासे अंतिम शरीरसे कुछ न्यून आकारवाला होनेके कारण, मोमरहित मूसके बीचके आकारकी भांति अथवा छायाके प्रतिबिंबकी भांति, पुरुषाकार है; "अप्पा" ऐसे लक्षणोंयुक्त आत्मा; वह कैसा कहलाता है ? "सिद्धो" अंजनसिद्ध, पादुकासिद्ध, गुटिकासिद्ध, खड्गसिद्ध और मायासिद्ध आदि लौकिक सिद्धोंसे विलक्षण, केवलज्ञानादि अनंत गुणोंकी प्रगटता जिसका लक्षण है ऐसा सिद्ध कहलाता है। "झाएह लोयसिहरत्थो" हे भव्यों ! तुम देखे हुए, सुने हुए और अनुभव किये हुए पंचेन्द्रियभोगादिके समस्त मनोरथरूप अनेक विकल्पसमूहके त्याग द्वारा, मन-वचन-कायाकी गुप्ति जिसका लक्षण है ऐसे रूपातीत ध्यानमें स्थिर होकर, लोकके शिखर पर विराजमान, पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान करो।

इसप्रकार अशरीरी सिद्धपरमेष्ठीके व्याख्यानरूप यह गाथा पूर्ण हुई ॥५१॥

अब, उपाधिरहित शुद्धात्मभावनाकी अनुभूतिके अविनाभूत निश्चयपंचाचारलक्षण निश्चयध्यानका परंपरासे[1] कारणभूत, निश्चय और व्यवहार इन दोनों

---

१. छट्ठे गुणस्थानमें शुद्ध परिणति तीन कषायोंके अभावरूप है वह निश्चय पंचाचार और उसके साथ उसी समयमें व्यवहार पंचाचार होता है उसका (व्यवहार पंचाचार) का अभाव (व्यय) होने पर सातवें गुणस्थानमें निश्चय पंचाचाररूप निश्चयध्यान प्रगट होता है इस प्रकार यहां समझाया है।

ध्यानस्य परम्परया कारणभूतं निश्चयव्यवहारपञ्चाचारपरिणताचार्यभक्तिरूपं "णमो आइरियाणं" इति पदोच्चारणलक्षणं यत्पदस्थध्यानं तस्य ध्येयभूतमाचार्यपरमेष्ठिनं कथयतिः—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आइरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपआचारे ।
आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्यः मुनिः ध्येयः ॥५२॥

व्याख्या—"दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे" सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपश्चरणाचारेऽधिकरणभूते "अप्पं परं च जुंजइ" आत्मानं परं शिष्यजनं च योऽसौ योजयति सम्बन्धं करोति "सो आइरिओ मुणी झेओ" स उक्तलक्षण आचार्यो मुनिस्तपोधनो ध्येयो भवति । तथाहि—भूतार्थनयविषयभूतः शुद्धसमयसारशब्दवाच्यो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मादिसमस्तपरद्रव्येभ्यो भिन्नः परम-

---

प्रकारके पंचाचारोंमें परिणत आचार्य परमेष्ठीकी भक्तिरूप और "णमो आइरियाणं" इस पदके उच्चारणरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत आचार्य परमेष्ठीका कथन करते हैं:—

गाथा—५२

गाथार्थः—दर्शनाचार, ज्ञानाचारकी मुख्यता सहित वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार—इन पांच आचारोंमें जो अपनेको तथा परको जोड़ता है वह आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है ।

टीकाः—"दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे" सम्यग्दर्शन और ज्ञानकी प्रधानता सहित वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचारमें "अप्पं परं च जुंजइ" स्वयंको और परको अर्थात् शिष्योंको जो जोड़ता है "सो आइरिओ मुणी झेओ" वह पूर्वोक्त लक्षणयुक्त आचार्य, मुनि, तपोधन ध्यान करने योग्य है ।

विशेषः—भूतार्थनयके विषयभूत, शुद्ध समयसार शब्दसे वाच्य, भावकर्म-

---

दर्शन ज्ञान समग्र उदार, चारित तप वीरज आचार ।
आप आचरै पर अचराय, ऐसैं आचारिज मुनि ध्याय ॥५२॥

चैतन्यविलासलक्षणः स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयदर्शनाचारः ॥१॥ तस्यैव शुद्धात्मनो निरुपाधिस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानेन मिथ्यात्वरागादिपरभावेभ्यः पृथक्परिच्छेदनं सम्यग्ज्ञानं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयज्ञानाचारः ॥२॥ तत्रैव रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वाभाविकसुखास्वादेन निश्चलचित्तं वीतरागचारित्रं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयचारित्राचारः ॥ ३ ॥ समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधेन तथैवानशनादिद्वादशतपश्चरणबहिरङ्गसहकारिकारणेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्चरणं, तत्राचरणं परिणमनं निश्चयतपश्चरणाचारः ॥४॥ तस्यैव निश्चयचतुर्विधाचारस्य रक्षणार्थं स्वशक्त्यनवगूहनं निश्चयवीर्याचारः ॥५॥ इत्युक्तलक्षणनिश्चयपञ्चाचारे तथैव "छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसन्दरिसे। सिस्साणुग्गहकुसले धम्मायरिए सदा वंदे ॥१॥" इति गाथाकथितक्रमेणाचाराराधानादिचरणशास्त्रविस्तीर्णबहिरङ्गसहकारिकारणभृते व्यवहारपञ्चाचारे च स्वं परं च

द्रव्यकर्म-नोकर्म आदि समस्त परद्रव्योंसे भिन्न, परमचैतन्यविलासलक्षण, स्वशुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रुचि वह सम्यग्दर्शन है; उसमें जो आचरण-परिणमन वह निश्चयदर्शनाचार है। उसी शुद्धात्माको उपाधिरहित, स्वसंवेदनलक्षण भेदज्ञानसे मिथ्यात्वरागादि परभावोंसे भिन्न जानना वह सम्यग्ज्ञान है; उस सम्यग्ज्ञानमें आचरण-परिणमन वह निश्चय-ज्ञानाचार है। उसी शुद्ध आत्मामें रागादिविकल्परूप उपाधिसे रहित स्वाभाविक सुखास्वादसे निश्चलचित्त होना वह वीतरागचारित्र है; उसमें जो आचरण अर्थात् परिणमन वह निश्चय-चारित्राचार है। समस्त परद्रव्योंकी इच्छा रोकनेसे तथा अनशन आदि बारह तपरूप बहिरंग सहकारी[1] कारणोंसे निज स्वरूपमें प्रतपन-विजयन वह निश्चय-तपश्चरण है; उसमें जो आचरण-परिणमन वह निश्चय-तपश्चरणाचार है। इस चार प्रकारके निश्चय-आचारकी रक्षाके लिये अपनी शक्ति न छुपाना वह निश्चयवीर्याचार है। इन उक्त लक्षणोंसेयुक्त निश्चय-पंचाचारमें और इसीप्रकार "छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसन्दरिसे। सिस्साणुग्गहकुसले धम्मायरिए सदा वंदे ॥ [अर्थः—छत्तीस गुणोंसे[2] सहित, पांच प्रकारके आचार पालनेका उपदेश देनेवाले, शिष्योंपर अनुग्रह करनेमें कुशल जो धर्माचार्य हैं मैं उन्हें सदा वंदना करता हूं।]"—इस गाथामें कहे अनुसार आचार, आराधना आदि चरणानुयोगके शास्त्रोंमें विस्तारसे कथित बहिरंग सहकारी कारणरूप पांच प्रकारके व्यवहार-

१. निमित्त कारणोंसे। निमित्तकारण वे उपचाररूप हैं और उपादान कारण वह यथार्थ कारण है ऐसा समझना। २. श्री भावसंग्रह गाथा-३७७।

योजयत्यनुष्ठानेन सम्बन्धं करोति स आचार्यो भवति । स च पदस्थध्याने ध्यातव्यः । इत्याचार्यपरमेष्ठिव्याख्यानेन सूत्रं गतम् ॥५२॥

अथ स्वशुद्धात्मनि शोभनमध्यायोऽभ्यासो निश्चयस्वाध्यायस्तल्लक्षणनिश्चयध्यानस्य पारम्पर्येण कारणभूतं भेदाभेदरत्नत्रयादितत्त्वोपदेशकं परमोपाध्यायभक्तिरूपं "णमो उवज्झायाणं" इति पदोच्चारणलक्षणं यत् पदस्थध्यानं, तस्य ध्येयभूतमुपाध्यायमुनीश्वरं कथयतिः—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः ।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमः तस्मै ॥५३॥

व्याख्या—"जो रयणत्तयजुत्तो" योऽसौ बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानेन युक्तः परिणतः । "णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो" षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु

आचारमें जो स्वयंको और परको जोड़ता है वह आचार्य कहलाता है । वह आचार्य परमेष्ठी पदस्थ ध्यानमें ध्यान करने योग्य है । इसप्रकार आचार्य परमेष्ठीके व्याख्यानसे गाथा पूर्ण हुई ॥५२॥

अब, स्वशुद्धातमामें जो उत्तम अध्याय-अभ्यास वह निश्चय-स्वाध्याय है । वह निश्चयस्वाध्याय जिसका लक्षण है ऐसे निश्चयध्यानका परम्परासे कारणभूत, भेदाभेदरत्नत्रयादि तत्त्वोंके उपदेशक परम उपाध्यायकी भक्तिरूप और 'णमो उवज्झायाणं' इस पदके उच्चारणरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत उपाध्याय परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं:—

गाथा–५३

गाथार्थः—जो रत्नत्रयसहित, निरंतर धर्मका उपदेश देनेमें तत्पर है, वह आत्मा उपाध्याय है, मुनिवरोंमें प्रधान है; उसे नमस्कार हो ।

टीकाः—"जो रयणत्तयजुत्तो" जो बाह्य और अभ्यंतर रत्नत्रयके आचरण सहित है; "णिच्चं धम्मोवदेसणेणिरदो" छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व और

रत्नत्रय जो धारैं सार, सदा धर्म-उपदेश करार ।
यतिवरमैं परधान मुनीश, उपाध्यायकूं नावौं शीश ॥५३॥

मध्ये स्वशुद्धात्मद्रव्यं स्वशुद्धजीवास्तिकायं स्वशुद्धात्मतत्त्वं स्वशुद्धात्मपदार्थमेवो-पादेयं शेषं च हेयं, तथैवोत्तमक्षमादिधर्मं च नित्यमुपदिशति योऽसौ स नित्यं धर्मोपदेशने निरतो भण्यते। "सो उवज्झाओ अप्पा" स चेत्थंभूत आत्मा उपाध्याय इति। पुनरपि किं विशिष्टः? "जदिवरवसहो" पञ्चेन्द्रियविषयजयेन निजशुद्धात्मनि यत्नपराणां यतिवराणां मध्ये वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभः। "णमो तस्स" तस्मै द्रव्यभावरूपो नमो नमस्कारोऽस्तु। इत्युपाध्यायपरमेष्ठिव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥५३॥

अथ निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयध्यानस्य परम्परया कारणभूतं बाह्याभ्यन्तरमोक्ष-मार्गसाधकं परमसाधुभक्तिरूपं "णमो लोए सव्वसाहूणं" इति पदोच्चारणजपध्यान-लक्षणं यत् पदस्थध्यानं तस्य ध्येयभूतं साधुपरमेष्ठिस्वरूपं कथयति—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

नव पदार्थोंमें निज शुद्धात्मद्रव्य, निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्धात्मतत्त्व और निज शुद्धात्मपदार्थ ही उपादेय है और अन्य सर्व हेय हैं ऐसा और उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका जो निरन्तर उपदेश देता है वह नित्य धर्मोपदेश देनेमें तत्पर कहलाता है; "सो उवज्झाओ अप्पा" ऐसा वह आत्मा उपाध्याय है। तथा वह कैसा है? "जदिवरवसहो" पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको जीतनेसे निज-शुद्ध-आत्मामें प्रयत्न करनेमें तत्पर ऐसे मुनीश्वरोंमें वृषभ अर्थात् प्रधान होनेसे यतिवरवृषभ है। "णमो तस्स" उस उपाध्याय परमेष्ठीको द्रव्य और भावरूप नमस्कार हो।

इसप्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके व्याख्यानरूप गाथा पूर्ण हुई ॥५३॥

अब, निश्चय-रत्नत्रयात्मक निश्चयध्यानका परंपरासे कारणभूत, बाह्य-अभ्यंतर मोक्षमार्गके साधक परमसाधुकी भक्तिरूप और 'णमो लोए सव्वसाहूणं' इस पदके उच्चारण, जपन तथा ध्यानरूप जो पदस्थ ध्यान, उसके ध्येयभूत ऐसे साधु परमेष्ठीका स्वरूप कहते हैं:—

जो साधै शिव-मारग सदा, दर्शन-ज्ञान-चरन संपदा।
शुद्ध साधु मुनि सो जग दिपै, तास ध्यानतैं पाप न लिपै ॥५४॥

दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः हि चारित्रम् ।
साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥५४॥

व्याख्या—"साहू स मुणी" स मुनिः साधुर्भवति । यः किं करोति ? "जो हु साधयदि" यः कर्त्ता हु स्फुटं साधयति । किं ? "चारित्तं" चारित्रं । कथंभूतं ? "दंसणणाणसमग्गं" वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां समग्रम् परिपूर्णम् । पुनरपि कथम्भूतं ? "मग्गं मोक्खस्स" मार्गभूतं; कस्य ? मोक्षस्य । पुनश्च किम् रूपं ? "णिच्चसुद्धं" नित्यं सर्वकालं शुद्धं रागादिरहितम् । "णमो तस्स" एवं गुणविशिष्टो यस्तस्मै साधवे नमो नमस्कारोऽस्त्विति । तथाहि—"उद्योतनमुद्योगो निर्वहणं साधनं च निस्तरणम् । दृगवगमचरणतपसामाख्याताराधना सद्भिः ॥१॥" इत्यार्याकथितबहिरङ्गचतुर्विधाराधनाबलेन, तथैव "सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवो चेव । चउरो चिट्ठहि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं ॥१॥" इति गाथा-

---

गाथा-५४

गाथार्थः—दर्शन और ज्ञानसे पूर्ण, मोक्षमार्गस्वरूप, सदा शुद्ध ऐसे चारित्रको जो साधता है, वह मुनि–'साधु परमेष्ठी' है, उसको मेरा नमस्कार हो ।

टीकाः—साहू स मुणी" वह मुनि-साधु है; जो क्या करता है ? "जो हु साधयदि" जो प्रगटरूपसे साधता है; क्या साधता है ? "दंसणणाणसमग्गं" वीतराग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे परिपूर्ण चारित्रको साधता है; तथा वह चारित्र कैसा है ? "मग्गं मोक्खस्स" जो चारित्र मार्गरूप है; किसके मार्गरूप है ? मोक्षके मार्गरूप है; तथा वह चारित्र कैसा है ? "णिच्चसुद्धं" नित्य सर्वकालमें शुद्ध अर्थात् रागादि रहित है । "णमो तस्स" जो ऐसे गुणयुक्त है उस साधु परमेष्ठीको नमस्कार हो ।

विशेषः—"उद्योतनमुद्योगो निर्वहणं साधनं च निस्तरणम् । दृगवगमचरणतपसामाख्याताराधना सद्भिः ॥[1] [अर्थः—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपका जो उद्योतन, उद्योग, निर्वहण, साधन और निस्तरण जो है उसे सत्पुरुषोंने आराधना कही है ।]"—इस आर्या छंदमें कथित [2]बहिरंग चतुर्विध (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) आराधनाके [3]बलसे और "सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवो चेव । चउरो चिट्ठहि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं ॥ [अर्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-

---

१. श्री भगवती आराधना गाथा–२ छाया   २. बहिरंग=बाह्यकी
३. स्वात्माके आश्रयसे निश्चयबल प्रगट हुआ तब उचित व्यवहार था ऐसा बतानेके लिये व्यवहार आराधनाका बल कहा जाता है ।

कथिताभ्यन्तरनिश्चयचतुर्विधाराधनाबलेन च बाह्याभ्यन्तरमोक्षमार्गद्वितीयनामाभिधेयेन कृत्वा यः कर्त्ता वीतरागचारित्राविनाभूतं स्वशुद्धात्मानं साधयति भावयति स साधुर्भवति। तस्यैव सहजशुद्धसदानन्दैकानुभूतिलक्षणो भावनमस्कारस्तथा "णमो लोए सव्वसाहूणं" द्रव्यनमस्कारश्च भवत्विति ॥५४॥

एवमुक्तप्रकारेण गाथापञ्चकेन मध्यमप्रतिपत्त्या पञ्चपरमेष्ठिस्वरूपं ज्ञातव्यम्। अथवा निश्चयेन "अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी। ते वि हु चिट्ठदि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं ॥१॥" इति गाथाकथितक्रमेण संक्षेपेण, तथैव विस्तरेण पञ्चपरमेष्ठिकथितग्रन्थक्रमेण, अतिविस्तारेण तु सिद्धचक्रादिदेवार्चनाविधिरूपमन्त्रवादसम्बन्धिपञ्चनमस्कारग्रन्थे चेति। एवं गाथापञ्चकेन द्वितीयस्थलं गतम्।

चारित्र और सम्यक्तप—ये चारों आत्मामें निवास करते हैं इस कारण आत्मा ही मुझे शरणभूत है।]"—इस गाथामें कथित अभ्यंतर ऐसी निश्चय चतुर्विध आराधनाके बलसे—बाह्य-अभ्यंतर मोक्षमार्ग जिसका (जिस बाह्य-अभ्यंतर आराधनाका) दूसरा नाम है उसके द्वारा—जो वीतरागचारित्रके अविनाभूत निज शुद्धात्माको साधता है अर्थात् भाता है वह साधु परमेष्ठी है। उसे ही मात्र सहज-शुद्ध सदानंद (नित्य आनंद) की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसा भावनमस्कार और 'णमो लोए सव्वसाहूणं' ऐसा द्रव्य नमस्कार हो ॥५४॥

इस भांति उपरोक्त प्रकारसे पांच गाथाओं द्वारा मध्यम प्रतिपादनसे पंच परमेष्ठीका स्वरूप जानना। "अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी। ते वि हु चिट्ठहि आदे तह्मा आदा हु मे सरणं ॥ [अर्थः—अथवा निश्चयसे जो अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पांच परमेष्ठी हैं वे भी आत्मामें स्थित हैं; इसकारण आत्मा ही मुझे शरण है।]"[1]—इस गाथामें कहे अनुसार संक्षेपमें पंचपरमेष्ठीका स्वरूप जानना और विस्तारसे, पंचपरमेष्ठीके स्वरूपका कथन करनेवाले ग्रन्थोंमेंसे जानना। सिद्धचक्र आदि देवोंकी पूजनविधिरूप मंत्रवाद संबंधी 'पंचनमस्कारमाहात्म्य' नामक ग्रन्थमेंसे उसका स्वरूप अति विस्तारसे जानना।

इसप्रकार पांच गाथाओं द्वारा दूसरा स्थल समाप्त हुआ।

---

१. श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा गाथा–१२

अथ तदेव ध्यानं विकल्पितनिश्चयेनाविकल्पितनिश्चयेन प्रकारान्तरेणोपसंहाररूपेण पुनरप्याह । तत्र प्रथमपादे ध्येयलक्षणं, द्वितीयपादे ध्यातृलक्षणं, तृतीयपादे ध्यानलक्षणं, चतुर्थपादे नयविभागं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा भगवान् सूत्रमिदं प्रतिपादयतिः—

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं ॥५५॥

यत् किंचित् अपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः ।
लब्ध्वा च एकत्वं तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम् ॥५५॥

व्याख्या—"तदा" तस्मिन् काले । "आहु" आहुर्ब्रुवन्ति । "तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं" तत्तस्य निश्चयध्यानमिति । यदा किम् ? "णिरीहवित्ती हवे जदा साहू" निरीहवृत्तिनिस्पृहवृत्तिर्यदा साधुर्भवति । किं कुर्वन् ? "जं किंचिवि चिंतंतो" यत् किमपि ध्येयं वस्तुरूपेण विचिन्तयन्निति । किं कृत्वा पूर्वं ? "लद्धूण य एयत्तं"

अब, उसी ध्यानका विकल्पित निश्चयसे और अविकल्पित निश्चयसे प्रकारान्तरसे उपसंहाररूपसे कथन करते हैं । 'उसमें वहां गाथाके प्रथम पादमें ध्येयका लक्षण, दूसरे पादमें ध्याताका लक्षण, तीसरे पादमें ध्यानका लक्षण और चौथे पादमें नयोंका विभाग मैं कहूंगा' ऐसा अभिप्राय मनमें रखकर श्रीनेमिचन्द्र-आचार्यदेव इस सूत्रका प्रतिपादन करते हैं:—

गाथा–५५

गाथार्थः—ध्येयमें एकत्व प्राप्त करके किसी भी पदार्थका ध्यान करता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्तिवाला होता है तब उसका वह ध्यान निश्चयध्यान कहलाता है ।

टीकाः—"तदा" उस समयमें, "आहु" कहते हैं, "तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं" उसे उसका निश्चयध्यान (कहते हैं) । कब ? "णिरीहवित्ती हवे जदा साहू" जब साधु निस्पृह वृत्तिवाला होता है । क्या करता हुआ ? "जं किंचिवि चिंतंतो" जिस किसी भी ध्येयका वस्तुरूपसे विशेष चिंतवन करता हुआ । पहले क्या करके ? "लद्धूण य एयत्तं" उस ध्येयमें प्राप्त करके । क्या प्राप्त करके ? एकत्वको अर्थात्

यतकिञ्चित् चितवन जा माहि, इच्छा रहित होय जब ताहि ।
एक चित्त ह्वै मुनि एकलो, निश्चय ध्यान कहैं जिन भलो ॥५५॥

तस्मिन् ध्येये लब्ध्वा। किं? एकत्वं एकाग्रचिन्तानिरोधनमिति। अथ विस्तरः—यत् किञ्चिद् ध्येयमित्यनेन किमुक्तं भवति? प्राथमिकापेक्षया सविकल्पावस्थायां विषयकषायवञ्चनार्थं चित्तस्थिरीकरणार्थं पञ्चपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यमपि ध्येयं भवति। पश्चादभ्यासवशेन स्थिरीभूते चित्ते सति शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयमित्युक्तं भवति। निस्पृहवचनेन पुनर्मिथ्यात्वं वेदत्रयं हास्यादिषट्कक्रोधादिचतुष्टयरूपचतुर्दशाऽभ्यन्तरपरिग्रहेण तथैव क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभाण्डाऽभिधानदशविधबहिरङ्गपरिग्रहेण च रहितं ध्यातृस्वरूपमुक्तं भवति। एकाग्रचिन्तानिरोधेन च [1]पूर्वोक्तविविधध्येयवस्तुनि स्थिरत्वं निश्चलत्वं ध्यानलक्षणं भणितमिति। निश्चयशब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहाररत्नत्रयानुकूलनिश्चयो ग्राह्यः, निष्पन्नयोगपुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोगलक्षणविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयो ग्राह्यः। विशेषनिश्चयः पुनरग्रे वक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थः ॥५५॥

एकाग्र-चिंता-निरोधको प्राप्त करके। विस्तार कथनः—'जो कोई भी ध्येय (अर्थात् कोई भी ध्यान करनेयोग्य पदार्थ)' कहा है उसका क्या अर्थ है? प्राथमिक (पुरुष) की अपेक्षासे सविकल्प अवस्थामें विषय और कषाय दूर करनेके लिये और चित्तको स्थिर करनेके लिये पंचपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं; तत्पश्चात् जब अभ्यासके वशसे चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभावी निज शुद्धात्माका स्वरूप ही ध्येय होता है। तथा, 'निस्पृह' शब्दसे मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, (ये छह) और क्रोध, मान, माया, लोभ (ये चार)—इन चौदह अभ्यंतर परिग्रहोंसे रहित और क्षेत्र, वास्तु, चांदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भांड—इन दश बहिरंग परिग्रहोंसे रहित ऐसा ध्याताका स्वरूप कहा है। 'एकाग्रचिंतानिरोध' पदसे, पूर्वोक्त भिन्न-भिन्न प्रकारके ध्येयभूत (ध्यान करने योग्य) पदार्थोंमें स्थिरताको—निश्चलताको ध्यानका लक्षण कहा है। 'निश्चय' शब्दसे, प्राथमिक (पुरुष) की अपेक्षासे व्यवहार-रत्नत्रयको अनुकूल ऐसा निश्चय समझना और जिसको योग निष्पन्न हुआ है ऐसे पुरुषकी अपेक्षासे शुद्धोपयोगरूप विवक्षित-एकदेश-शुद्धनिश्चय समझना। विशेष निश्चयका कथन आगे करेंगे।

इसप्रकार सूत्रार्थ है ॥५५॥

---

१. 'पूर्वोक्तद्विविधं' पाठान्तरम्।

अथ शुभाशुभमनोवचनकायनिरोधे कृते सत्यात्मनि स्थिरो भवति तदेव परमध्यानमित्युपदिशति:—

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥५६॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किम् अपि येन भवति स्थिरः ।
आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं ध्यानं भवति ॥५६॥

व्याख्या—"मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि" नित्यनिरञ्जननिष्क्रिय-निजशुद्धात्मानुभूतिप्रतिबन्धकं शुभाशुभचेष्टारूपं कायव्यापारं, तथैव शुभाशुभान्त-र्बहिर्जल्परूपं वचनव्यापारं, तथैव शुभाशुभविकल्पजालरूपं चित्तव्यापारं च किमपि मा कुरुत हे विवेकीजनाः ! "जेण होइ थिरो" येन योगत्रयनिरोधेन स्थिरो भवति । स कः ? "अप्पा" आत्मा । कथम्भूतः स्थिरो भवति ? "अप्पम्मि रओ"

अब, शुभाशुभ मन-वचन-कायाका निरोध करने पर आत्मामें स्थिर होता है वही परमध्यान है इसप्रकार उपदेश करते हैं:—

गाथा–५६

गाथार्थः—(हे भव्यों !) कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चिंतवन मत करो, जिससे आत्मा निजात्मामें तल्लीनरूपसे स्थिर हो जाय । यही (आत्मामें लीनता ही) परमध्यान है ।

टीकाः—"मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि" हे विवेकी पुरुषों ! नित्य निरंजन और निष्क्रिय ऐसे निज शुद्धात्माकी अनुभूतिको रोकनेवाले शुभाशुभ चेष्टारूप कायव्यापार, शुभाशुभ अंतर्बहिर्जल्परूप वचन-व्यापार और शुभाशुभ विकल्पजालरूप चित्त-व्यापार किंचित् भी मत करो; "जेण होइ थिरो" जिससे अर्थात् तीन योगोंके निरोधसे स्थिर होता है । कौन ? "अप्पा" आत्मा । कैसा स्थिर होता है ? "अप्पम्मि रओ" सहजशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावी परमात्मतत्त्वके

मन-वच-काय चेष्टा तजो, जिम थिर चित्त होय निज भजो ।
आपा माहि आप रत सोय, परमध्यान इम करतैं होय ॥५६॥

सहजशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकपरम-समाधिसमुद्भूतसर्वप्रदेशाह्लादजनकसुखास्वादपरिणतिसहिते निजात्मनि रतः परिणत-स्तल्लीयमानस्तच्चित्तस्तन्मयो भवति । "इणमेव परं हवे ज्झाणं" इदमेवात्मसुख-स्वरूपे तन्मयत्वं निश्चयेन परमुत्कृष्टं ध्यानं भवति ।

तस्मिन् ध्याने स्थितानां यद्वीतरागपरमानन्दसुखं प्रतिभाति, तदेव निश्चय-मोक्षमार्गस्वरूपम् । तच्च पर्यायनामान्तरेण किं किं भण्यते तदभिधीयते । तदेव शुद्धात्मस्वरूपं; तदेव परमात्मस्वरूपं, तदेवैकदेशव्यक्तिरूपविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्मसम्वित्तिसमुत्पन्नसुखामृतजलसरोवरे रागादिमलरहितत्वेन परमहंसस्वरूपम् । इदमेकदेशव्यक्तिरूपं शुद्धनयव्याख्यानमत्र परमात्मध्यानभावनानाममालायां यथासम्भवं सर्वत्र योजनीयमिति ।

तदेव परब्रह्मस्वरूपं, तदेव परमविष्णुस्वरूपं, तदेव परमशिवस्वरूपं, तदेव परमबुद्धस्वरूपं, तदेव परमजिनस्वरूपं, तदेव परमस्वात्मोपलब्धिलक्षणं सिद्धस्वरूपं, तदेव निरञ्जनस्वरूपं, तदेव निर्मलस्वरूपं; तदेव स्वसम्वेदनज्ञानम्, तदेव परमतत्त्व-

---

सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक परमसमाधिसे उत्पन्न, सर्व प्रदेशोंमें आनंद उत्पन्न करनेवाले सुखके आस्वादरूप परिणतिसहित निजात्मामें रत-परिणत-तल्लीन-तच्चित्ततन्मय होता है । "इणमेव परं हवे ज्झाणं" यह जो आत्माके सुखस्वरूपमें तन्मयपना वही निश्चयसे परम अर्थात् उत्कृष्ट ध्यान है ।

उस परमध्यानमें स्थित जीवोंको जिस वीतराग परमानंदरूप सुखका प्रतिभास होता है वही निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप है । वह अन्य किस-किस पर्यायवाची नामोंसे कहा जाता है, वही कहते हैं:—वही शुद्धात्मस्वरूप है, वही परमात्मस्वरूप है, वही एकदेश-प्रगटतारूप विवक्षित-एकदेश-शुद्धनिश्चयनयसे स्वशुद्धात्माके संवेदनसे उत्पन्न सुखामृतरूपी जलके सरोवरमें रागादिमल रहित होनेके कारण परमहंस-स्वरूप है । इस एकदेश व्यक्तिरूप शुद्धनयके व्याख्यानको परमात्मध्यान-भावनाकी नाममालामें यथासंभव सर्वत्र योजन करना ।

वही परब्रह्मस्वरूप है, वही परम विष्णुस्वरूप है, वही परमशिवस्वरूप है, वही परम बुद्धस्वरूप है, वही परम जिनस्वरूप है, वही परम स्वात्मोपलब्धिलक्षण सिद्धस्वरूप है, वही निरंजनस्वरूप है, वही निर्मलस्वरूप है, वही स्वसंवेदनज्ञान

ज्ञानं, तदेव शुद्धात्मदर्शनं, तदेव परमावस्थास्वरूपम्, तदेव परमात्मनः दर्शनं, तदेव परमात्मज्ञानं, तदेव परमावस्थारूप-परमात्मस्पर्शनं, तदेव ध्येयभूतशुद्धपारिणामिकभाव-रूपं, तदेव ध्यानभावनास्वरूपं, तदेव शुद्धचारित्रं, तदेव परमपवित्रं, तदेवान्तस्तत्त्वं, तदेव परमतत्त्वं, तदेव शुद्धात्मद्रव्यं, तदेव परमज्योतिः, सैव शुद्धात्मानुभूतिः, सैवात्म-प्रतीतिः, सैवात्मसंविचिः, सैव स्वरूपोपलब्धिः, स एव नित्योपलब्धिः, स एव परमसमाधिः, स एव परमानन्दः, स एव नित्यानन्दः, स एव सहजानन्दः, स एव सदानन्दः, स एव शुद्धात्मपदार्थाध्ययनरूपः, स एव परमस्वाध्यायः, स एव निश्चय-मोक्षोपायः, स एव चैकाग्रचिन्तानिरोधः, स एव परमबोधः, स एव शुद्धोपयोगः, स एव परमयोगः, स एव भूतार्थः, स एव परमार्थः, स एव निश्चयपञ्चाचारः, स एव समयसारः, स एवाध्यात्मसारः, तदेव समतादिनिश्चयषडावश्यकस्वरूपं, तदेवा-भेदरत्नत्रयस्वरूपं; तदेव वीतरागसामायिकं, तदेव परमशरणोत्तममङ्गलं, तदेव केवल-ज्ञानोत्पत्तिकारणं, तदेव सकलकर्मक्षयकारणं, सैव निश्चयचतुर्विधाराधना, सैव परमात्म-भावना, सैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नसुखानुभूतिरूपपरमकला, सैव दिव्यकला, तदेव

है, वही परम तत्त्वज्ञान है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परमावस्थास्वरूप है, वही परमात्माका दर्शन है, वही परमात्माका ज्ञान है, वही परमावस्थारूप परमात्माका स्पर्शन है, वही ध्येयभूत-शुद्धपारिणामिक भावरूप है, वही ध्यानभावनास्वरूप है, वही शुद्धचारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतःतत्त्व है, वही परमतत्त्व है, वही शुद्धात्मद्रव्य है, वही परमज्योति है, वही शुद्ध आत्माकी अनुभूति है, वही आत्माकी प्रतीति है, वही आत्माकी संवित्ति है, वही स्वरूपकी उपलब्धि है, वही नित्यपदार्थकी प्राप्ति है, वही परमसमाधि है, वही परमानन्द है, वही नित्यानंद है, वही सहजानंद है, वही सदानंद है, वही शुद्धात्मपदार्थके अध्ययनरूप है, वही परमस्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्षका उपाय है, वही एकाग्रचिंतानिरोध है, वही परमबोध है, वही शुद्धोपयोग है, वही परमयोग है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय-षड्-आवश्यक स्वरूप है, वही अभेदरत्नत्रय स्वरूप है, वही वीतराग सामायिक है, वही परम शरण-उत्तम-मंगल है, वही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है, वही समस्त कर्मोंके क्षयका कारण है, वही निश्चय-चतुर्विध-आराधना है, वही परमात्माकी भावना है, वही शुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सुखकी अनुभूति परमकला है, वही दिव्यकला है, वही परम अद्वैत है, वही परम अमृतरूप

परमाद्वैतं, तदेव परमामृतपरमधर्मध्यानं, तदेव शुक्लध्यानं, तदेव रागादिविकल्पशून्यध्यानं, तदेव निष्कलध्यानं, तदेव परमस्वास्थ्यं, तदेव परमवीतरागत्वं, तदेव परमसाम्यं, तदेव परमैकत्वं, तदेव परमभेदज्ञानं, स एव परमसमरसीभावः इत्यादि समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमाह्लादैकसुखलक्षणध्यानरूपस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य वाचकान्यन्यान्यपि पर्यायनामानि विज्ञेयानि भवन्ति परमात्मतत्त्वविद्भिरिति ॥ ५६ ॥

अतः परं यद्यपि पूर्वं बहुधा भणितं ध्यातृपुरुषलक्षणं ध्यानसामग्री च तथापि चूलिकोपसंहाररूपेण पुनरप्याख्याति:—

तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपःश्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धरः भवति यस्मात् ।
तस्मात् तत्त्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥५७॥

परम-धर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही रागादिविकल्परहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागपना है, वही परम साम्य है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसीभाव है; इत्यादि, समस्त रागादि विकल्प-उपाधिसे रहित परम-आह्लादरूप एक सुख जिसका लक्षण है ऐसे ध्यानरूप निश्चय-मोक्षमार्गके वाचक अन्य भी पर्यायवाची नाम परमात्मतत्त्वके ज्ञानियों द्वारा जानने योग्य हैं ॥५६॥

अब, यद्यपि पहले ध्याता पुरुषके लक्षण और ध्यानकी सामग्रीका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है तो भी चूलिका तथा उपसंहाररूपसे फिर भी कथन करते हैं:—

गाथा–५७

गाथार्थः—क्योंकि तप, श्रुत और व्रतका धारक आत्मा ध्यानरूपी रथकी धुरा धारण करने वाला होता है, इसलिये हे भव्य पुरुषों ! तुम उस ध्यानकी प्राप्तिके लिये निरंतर तप, श्रुत और व्रतमें तत्पर होओ ।

तप धारै अर आगम पढ़ै, व्रत पालै आतम इम बढ़ै ।
ध्यान-धुरंधर ह्वै सिधि करे, तीनूं धरि शिव-रमणी वरै ॥५७॥

व्याख्या—"तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरन्धरो हवे जम्हा" तपश्रुतव्रतवानात्मा चेतयिता ध्यानरथस्य धुरन्धरो समर्थो भवति, "जम्हा" यस्मात् "तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह" तस्मात् कारणात् तपश्रुतव्रतानां सम्बन्धेन यत् त्रितयं तत् त्रितये रताः सर्वकाले भवत हे भव्याः। किमर्थं? तस्य ध्यानस्य लब्धिस्तल्लब्धिस्तदर्थमिति। तथाहि—अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन बाह्यं षड्विधं, तथैव प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदेनाऽभ्यन्तरमपि षड्विधं चेति द्वादशविधं तपः। तेनैव साध्यं शुद्धात्मस्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चयतपश्च। तथैवाचाराराधनादिद्रव्यश्रुतं, तदाधारेणोत्पन्नं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपं भावश्रुतं च। तथैव च हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाणां द्रव्यभावरूपाणां परिहरणं व्रतपञ्चकं चेति। एवमुक्तलक्षणतपःश्रुतव्रतसहितो ध्याता पुरुषो भवति। इयमेव ध्यानसामग्री चेति। तथाचोक्तम्—"वैराग्यं

टीकाः—"तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा" क्योंकि तप, श्रुत और व्रतधारी आत्मा ध्यानरूपी रथकी धुरा धारण करनेमें समर्थ होता है, "तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह" इसलिये हे भव्यों! तप, श्रुत और व्रत—इन तीनोंमें सदा लीन होओ। किसलिये? उस ध्यानकी प्राप्तिके लिये। विशेष वर्णनः—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश—ये छह प्रकारके बाह्यतप और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान—ये छह प्रकारके अंतरंग तप—इसप्रकार दोनों मिलकर बारह प्रकारके तप हैं। उसी तपसे [1]साध्य शुद्धात्मस्वरूपमें प्रतपन अर्थात् विजय करनेरूप निश्चय तप है। उसी प्रकार आचार-आराधना आदि द्रव्यश्रुत और उसके आधारसे उत्पन्न निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानरूप भावश्रुत है। तथा हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहका द्रव्य और भावरूपसे त्याग करना वे पांच व्रत हैं। इसप्रकार पूर्वोक्त लक्षणोंयुक्त तप, श्रुत और व्रत सहित पुरुष ध्याता होता है। वही (तप, श्रुत और व्रत ही) ध्यानकी सामग्री है। कहा भी है कि "वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं

---

१. प्रथम मुनिको छट्ठे गुणस्थानमें शुद्धता सहित ऐसे विकल्प होते हैं। उन विकल्पोंका अभाव होनेपर शुद्धात्मतत्त्वमें प्रतपन होता है इस कारण व्यवहारनयसे उनके द्वारा साध्य कहा जाता है। निश्चयनयसे शुद्धि बढ़ते-बढ़ते निश्चयतप होता है।

तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं *समचित्तता । परीषहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः ॥१॥"

भगवन् ! ध्यानं तावन्मोक्षमार्गभूतम् । मोक्षार्थिना पुरुषेण पुण्यबन्धकारणत्वाद्व्रतानि त्याज्यानि भवन्ति, भवद्भिः पुनर्ध्यानसामग्रीकारणानि तपःश्रुतव्रतानि व्याख्यातानि, तत् कथं घटत इति ? तत्रोत्तरं दीयते—व्रतान्येव केवलानि त्याज्यान्येव न, किन्तु पापबन्धकारणानि हिंसादिविकल्परूपाणि यान्यव्रतानि तान्यपि त्याज्यानि । तथाचोक्तम् पूज्यपादस्वामिभिः—"अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः । अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥ १ ॥ किंत्वव्रतानि पूर्वं परित्यज्य ततश्च व्रतेषु तन्निष्ठो भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपं परमात्मपदं प्राप्य पश्चादेकदेशव्रतान्यपि त्यजति । तदप्युक्तम् तैरेव—"अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः । त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ १ ॥"

नैर्ग्रन्थ्यं समचित्तता । परीषहजयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः ॥ [अर्थः—वैराग्य, तत्त्वोंका ज्ञान, परिग्रहोंका त्याग, साम्यभाव और परीषहोंका जीतना; ये पांच ध्यानके कारण हैं ।]"¹

शंकाः—भगवान् ! ध्यान तो मोक्षके मार्गरूप है । मोक्षार्थी पुरुषको पुण्यबंधका कारण होनेसे व्रत त्याग करने योग्य हैं । परन्तु आपने तो तप, श्रुत और व्रतोंको ध्यानकी सामग्री कहा है; वह (कथन) किसप्रकार घटित होता है ? उसका उत्तरः—केवल व्रत ही त्याग करने योग्य नहीं हैं परन्तु पापबंधके कारण हिंसा आदि अव्रत भी त्याग करने योग्य हैं । इसीप्रकार पूज्यपाद स्वामीने कहा है:—"अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः । अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥ [अर्थः—अव्रतोंसे पापका बंध और व्रतोंसे पुण्यका बंध होता है, उन दोनोंका नाश वह मोक्ष है; अतः मोक्षार्थी पुरुषके अव्रतोंकी भांति व्रतोंका भी त्याग करो ।]" परन्तु अव्रतोंका भी पहले त्यागकर पश्चात् व्रतोंमें स्थिर होकर, निर्विकल्प समाधिरूप परमात्मपदको प्राप्त कर, पश्चात् एकदेश व्रतोंका भी त्याग करता है । वह भी श्रीपूज्यपादस्वामीने ही कहा है:—"अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः । त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ [अर्थः—मोक्षार्थी पुरुष अव्रतोंको छोड़कर व्रतोंमें स्थिर होकर परमात्मपद प्राप्त करे और परमात्मपद प्राप्त कर उन व्रतोंका भी त्याग करे ।]" परन्तु यह विशेष है:—व्यवहाररूप

---

* 'वशचित्तता' इत्यपि पाठः ।

१. श्री परमात्मप्रकाश अ० २ गाथा–१६२

अयं तु विशेषः—व्यवहाररूपाणि यानि प्रसिद्धान्येकदेशव्रतानि तानि त्यक्तानि। यानि पुनः सर्वशुभाशुभनिवृत्तिरूपाणि निश्चयव्रतानि तानि त्रिगुप्तिलक्षणस्वशुद्धात्मसम्वित्तिरूपनिर्विकल्पध्याने स्वीकृतान्येव, न च त्यक्तानि। प्रसिद्धमहाव्रतानि कथमेकदेशरूपाणि जातानि? इति चेत्तदुच्यते—जीवघातनिवृत्तौ सत्यामपि जीवरक्षणे प्रवृत्तिरस्ति। तथैवासत्यवचनपरिहारेऽपि सत्यवचनप्रवृत्तिरस्ति। तथैव चादत्तादानपरिहारेऽपि दत्तादाने प्रवृत्तिरस्तीत्याद्येकदेशप्रवृत्त्यपेक्षया देशव्रतानि तेषामेकदेशव्रतानां त्रिगुप्तिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिकाले त्यागः; न च समस्तशुभाशुभनिवृत्तिलक्षणस्य निश्चयव्रतस्येति। त्यागः कोऽर्थः? यथैव हिंसादिरूपाव्रतेषु निवृत्तिस्तथैकदेशव्रतेष्वपि। कस्मादिति चेत्? त्रिगुप्तावस्थायां प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपविकल्पस्य स्वयमेवावकाशो नास्ति। अथवा वस्तुतस्तदेव निश्चयव्रतम्। कस्मात्—सर्वनिवृत्तित्वादिति। योऽपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गतो भरतश्चक्री सोऽपि जिनदीक्षां

जो प्रसिद्ध एकदेश व्रत हैं उनका त्याग किया है परन्तु जो सर्व शुभाशुभकी निवृत्तिरूप निश्चय व्रत हैं उनका त्रिगुप्तिलक्षण स्वशुद्धात्मसंवेदनरूप निर्विकल्प ध्यानमें स्वीकार किया है, उनका त्याग नहीं किया है।

प्रश्नः—प्रसिद्ध (अहिंसादि) महाव्रत एकदेशरूप किस प्रकार हुए?

उत्तरः—अहिंसा महाव्रतमें यद्यपि जीवोंके घातकी निवृत्ति है तो भी जीवोंकी रक्षा करनेमें प्रवृत्ति है। उसीप्रकार सत्य महाव्रतमें असत्य वचनका यद्यपि त्याग है तो भी सत्य वचनमें प्रवृत्ति है। अचौर्य महाव्रतमें यद्यपि दिये विना कोई भी वस्तु लेनेका त्याग है परन्तु दी गई वस्तु लेनेमें प्रवृत्ति है। इसप्रकार एकदेश प्रवृत्तिकी अपेक्षासे ये पांचों महाव्रत देशव्रत हैं। उन एकदेश व्रतोंका त्रिगुप्तिलक्षण निर्विकल्प समाधिके कालमें 'त्याग' है परन्तु समस्त शुभाशुभकी निवृत्तिरूप निश्चयव्रतका नहीं। 'त्याग' का क्या[1] अर्थ है? जिसप्रकार हिंसा आदिरूप पांच अव्रतोंकी निवृत्ति है उसीप्रकार एकदेश व्रतोंकी भी निवृत्ति है। किसलिये? त्रिगुप्त अवस्थामें प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप विकल्पका स्वयमेव अवकाश नहीं है। अथवा वास्तवमें वही निश्चयव्रत है। किसलिये? क्योंकि उसमें पूर्ण निवृत्ति है। दीक्षाके पश्चात् दो घड़ी में ही भरत चक्रवतीने जो मोक्ष प्राप्त किया उसने भी जिनदीक्षा

---

१. अकेले अशुभभावका त्याग उसे कुछ लोग त्याग मानते हैं उस मान्यताका निषेध कर अशुभ और शुभ–दोनों भावोंको त्याग; उसे यहां त्याग कहा है।

गृहीत्वा विषयकषायनिवृत्तिरूपं क्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चाच्छुद्धोपयोगत्वरूपरत्नत्रयात्मके निश्चयव्रताभिधाने वीतरागसामायिकसंज्ञे निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा केवलज्ञानं लब्धवानिति । परं किन्तु तस्य स्तोककालत्वाल्लोका व्रतपरिणामं न जानन्तीति । तदेव भरतस्य दीक्षाविधानं कथ्यते । हे भगवन् ! जिनदीक्षादानानन्तरं भरतचक्रिणः कियति काले केवलज्ञानं जातमिति श्रीवीरवर्द्धमानस्वामितीर्थंकरपरमदेवसमवसरणमध्ये श्रेणिकमहाराजेन पृष्टे सति गौतमस्वामी आह—"पञ्चमुष्टिभिरुत्पाटय त्रोटयन् वन्धस्थितीन् कचान् । लोचानंतरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम् ॥१॥"

अत्राह शिष्यः । अद्य काले ध्यानं नास्ति । कस्मादिति चेत्—उत्तमसंहननाभावद्दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानाभावाच्च । अत्र परिहारः—शुक्लध्यानं नास्ति धर्मध्यानमस्तीति । तथाचोक्तं मोक्षप्राभृते श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैः "भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ णाणिस्स । तं अप्पसहावठिए ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी ॥ १ ॥

लेकर विषयकषायकी निवृत्तिरूप व्रतके परिणाम क्षणमात्र (थोड़े समय) कर, पश्चात् शुद्धोपयोगरूप रत्नत्रयमय निश्चयव्रत नामक वीतराग सामायिक नामक निर्विकल्प ध्यानमें स्थिर होकर केवलज्ञान प्राप्त किया है। परन्तु उन्हें व्रतका परिणाम थोड़े समय रहनेसे लोग उनके व्रतके परिणामको नहीं जानते हैं। उसी भरत चक्रवर्तीके दीक्षा–विधानका कथन किया जाता है—श्री वर्द्धमान तीर्थंकर परमदेवके समवसरणमें श्रेणिक महाराजने प्रश्न किया कि 'हे भगवान्! भरत चक्रवर्तीको जिनदीक्षा लेनेके पश्चात् कितने समयमें केवलज्ञान हुआ ? श्री गौतमस्वामीने उत्तर दिया—"पंचमुष्टिभिरुत्पाटय त्रोटयन् वन्धस्थितीन् कचान् । लोचान्तरमेवापद्राजन् श्रेणिक केवलम् ॥ [अर्थः—हे श्रेणिक! पंच मुष्टिसे केशलोच करके, कर्मवन्धकी स्थिति तोड़ते हुए, केशलोचके पश्चात् तुरंत ही भरत चक्रवर्तीने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।]"

यहां शिष्य कहता है:—इस पंचमकालमें ध्यान नहीं है, क्योंकि इसकालमें उत्तम संहननका अभाव है और दश तथा चौदहपूर्वका श्रुतज्ञान भी नहीं है।

समाधानः—इसकालमें शुक्लध्यान नहीं है, परन्तु धर्मध्यान है। श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवने मोक्षप्राभृतमें (गाथा ७६-७७ में) कहा है कि "भरतक्षेत्रमें दुःषम नामक पंचमकालमें ज्ञानी जीवको धर्मध्यान होता है; वह धर्मध्यान आत्मस्वभावमें स्थित होनेवालेको होता है; जो ऐसा नहीं मानता वह अज्ञानी है। अब भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीनरत्नोंसे शुद्ध जीव आत्माका ध्यान करके इन्द्रपद

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्झाऊण लहइ इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति ॥२॥" तथैव तत्त्वानुशासनग्रन्थे चोक्तं "अत्रेदानीं निषेधन्ति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः। धर्मध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणीभ्यां प्राग्विवर्त्तिनाम् ॥१॥" यथोक्तमुत्तम-संहननाभावात्तदुत्सर्गवचनम्। अपवादव्याख्यानेन, पुनरुपशमक्षपकश्रेण्योः शुक्लध्यानं भवति, तच्चोत्तमसंहननेनैव, अपूर्वगुणस्थानादधस्तनेषु गुणस्थानेषु धर्मध्यानं, तच्चादिमत्रिकोत्तमसंहननाभावेऽप्यन्तिमत्रिकसंहननेनापि भवति। तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने "यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः। श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तान्निषेधकम् ॥ १ ॥"

यथोक्तं दशचतुर्दशपूर्वगतश्रुतज्ञानेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनम्। अपवादव्याख्यानेन पुनः पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकसारभूतश्रुतेनापि ध्यानं भवति केवलज्ञानश्च। यद्येवमपवादव्याख्यानं नास्ति तर्हि "तुसमासं घोसन्तो सिवभूदी केवली जादो" इत्यादिगन्धर्वाराधनादिभणितं व्याख्यानम् कथम् घटते? अथ

अथवा लौकांतिक देवपद प्राप्त करते हैं और वहांसे चयकर (मनुष्य होकर) मोक्षको प्राप्त करते हैं।

उसीप्रकार तत्त्वानुशासन नामक ग्रन्थमें (गाथा ८३ में) कहा है कि "इस समय (पंचमकालमें) जिनेन्द्रदेव शुक्लध्यानका निषेध करते हैं परन्तु श्रेणी-आरोहणसे पूर्ववर्ती धर्मध्यानका अस्तित्व बताया है।" तथा जो ऐसा कहा है कि 'उत्तम संहननका अभाव होनेसे ध्यान नहीं होता है' वह उत्सर्गवचन है। अपवाद-रूप व्याख्यानसे तो, उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीमें शुक्लध्यान होता है और वह उत्तम संहननसे ही होता है, परन्तु अपूर्वकरण (८ वें) गुणस्थानसे नीचेके गुण-स्थानोंमें जो धर्मध्यान होता है, वह पहले तीन उत्तम संहननोंका अभाव हो तो भी अंतिम तीन संहननोंमें भी होता है। यह भी उसी तत्त्वानुशासन ग्रन्थमें (गाथा ८४ में) कहा है—"वज्रकायवालेको ध्यान होता है ऐसा आगमका वचन उपशम और क्षपकश्रेणीके ध्यानकी अपेक्षासे कहा है। यह वचन नीचेके गुण-स्थानोंमें धर्मध्यानका निषेधक नहीं है ॥१॥"

जो इसप्रकार कहा है कि 'दश तथा चौदह पूर्वके श्रुतज्ञानसे ध्यान होता है' वह भी उत्सर्गवचन है। अपवाद-व्याख्यानसे तो पांच समिति और तीन गुप्तिके प्रतिपादक सारभूत श्रुतज्ञानसे भी ध्यान होता है और केवलज्ञान भी होता है। यदि ऐसा अपवाद व्याख्यान न हो तो "तुष-माषका उच्चारण करते हुए श्रीशिवभूति मुनि केवलज्ञानी हो गये" इत्यादि गन्धर्वाराधनादि ग्रन्थोंमें कहा गया व्याख्यान किस प्रकार घटित होता है?

मतम्—पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतमिति जानाति। इदं भावश्रुतं पुनः सर्वमस्ति। नैवं वक्तव्यम्। यदि पञ्चसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकं द्रव्यश्रुतं जानाति तर्हि "मा रूसह मा तूसह" इत्येकं पदं किं न जानाति। तत एव ज्ञायतेऽष्टप्रवचनमातृप्रमाणमेव भावश्रुतं, द्रव्यश्रुतं पुनः किमपि नास्ति। इदन्तु व्याख्यानमस्माभिर्न कल्पितमेव। तच्चारित्रसारादिग्रन्थेष्वपि भणितमास्ते। तथाहि—अन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयन्ति ते क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिनो निर्ग्रंथसंज्ञा ऋषयो भण्यन्ते। तेषां चोत्कर्षेण चतुर्दशपूर्वादिश्रुतं भवति, जघन्येन पुनः पञ्चसमितित्रिगुप्तिमात्रमेवेति।

अथ मतं—मोक्षार्थं ध्यानं क्रियते न चाद्य काले मोक्षोऽस्ति; ध्यानेन किं प्रयोजनम्? नैवं, अद्य कालेऽपि परम्परया मोक्षोऽस्ति। कथमिति चेत्? स्वशुद्धात्मभावनाबलेन संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा देवलोकं गच्छति, तस्मादागत्य मनुष्यभवे रत्नत्रयभावनां लब्ध्वा शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति। येऽपि भरतसगरराम-

---

प्रश्नः—श्री शिवभूति मुनि पांच समिति और तीन गुप्तियोंका प्रतिपादन करनेवाले द्रव्यश्रुतको जानते थे और भावश्रुत उन्हें पूर्णरूपसे था?

उत्तरः—ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यदि वे पांच समिति और तीन गुप्तिके प्रतिपादक द्रव्यश्रुतको जानते होते तो 'द्वेष न कर, राग न कर,' इस एक पदको क्यों नहीं जानते? अतः ज्ञात होता है कि उनको पांच समिति और तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताप्रमाण ही भावश्रुत ज्ञान था और द्रव्यश्रुत कुछ भी नहीं था। यह व्याख्यान हमने कल्पित नहीं किया है; वह चारित्रसार आदि शास्त्रोंमें भी कहा गया है। वह इसप्रकार है:—अंतर्मुहूर्तमें जो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं वे क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती 'निग्रंथ' नामक ऋषि कहलाते हैं। उन्हें उत्कृष्टरूपसे चौदह पूर्व श्रुतज्ञान होता है और जघन्यरूपसे पांच समिति और तीन गुप्ति जितना ही श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्नः—मोक्षके लिये ध्यान किया जाता है और इस कालमें मोक्ष तो नहीं है; तो ध्यान करनेका क्या प्रयोजन है?

उत्तरः—ऐसा नहीं है, क्योंकि इसकालमें भी परंपरासे मोक्ष है।

प्रश्नः—परम्परासे मोक्ष किस प्रकार है?

उत्तरः—ध्यान करनेवाला (ध्याता) स्वशुद्धात्माकी भावनाके बलसे संसारकी स्थिति अल्प कर स्वर्गमें जाता है, वहांसे आकर मनुष्यभवमें रत्नत्रयकी भावना प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष जाता है, जो भरत, सगर, रामचंद्र, पांडव आदि मोक्ष गये

पाण्डवादयो मोक्षं गतास्तेपि पूर्वभवे भेदाभेदरत्नत्रयभावनया संसारस्थितिं स्तोकां कृत्वा पश्चान्मोक्षं गताः। तद्भवे सर्वेषां मोक्षो भवतीति नियमो नास्ति। एवमुक्तप्रकारेण अल्पश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यम्—"वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः। आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥१॥ संकल्पकल्पतरुसंश्रयणात्त्वदीयं चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन्। तत्रार्थतः तव चकास्ति न किंचनापि पक्षेऽपरं भवति कल्मषसंश्रयस्य ॥२॥ दौर्विध्यदग्धमनसोऽन्तरुपात्तमुक्तेश्चित्तं यथोल्लसति ते स्फुरितोत्तरङ्गम्। धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसंज्ञे कौतस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूतिः ॥३॥ कंखिद कलुसिदभूतो कामभोगेहिं मुच्छिदो जीवो। ण य भुंजंतो भोगे बंधदि भावेण कम्माणि ॥४॥" इत्याद्यपध्यानंत्यक्त्वा—"ममत्ति परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो। आलंबणं च मे

हैं वे भी पूर्वभवमें भेदाभेदरत्नत्रयकी भावनासे संसारकी स्थिति घटाकर फिर (पश्चात्) मोक्ष गये हैं। उसी भवमें सबको मोक्ष होता है ऐसा नियम नहीं है।

उपरोक्त कथन अनुसार अल्प श्रुतज्ञानसे भी ध्यान होता है यह जानकर क्या करना? [दुर्ध्यान छोड़कर ध्यान करना ऐसा समझाया जाता है।] "द्वेषसे[1] किसीको मारने, बांधने या अंग काटने और रागसे परस्त्री आदिका जो चिंतवन है उसे निर्मलबुद्धिके धारक आचार्य जिनमतमें अपध्यान कहते हैं ॥१॥ [2]हे जीव, संकल्परूपी कल्पवृक्षका आश्रय करनेसे तेरा चित्त इस मनोरथरूपी सागरमें डूब जाता है; वास्तवमें उन विकल्पोंमें तेरा कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, बल्कि कलुषताका आश्रय करने वालोंका अकल्याण होता है ॥२॥ जिस[3] प्रकार दुर्भाग्यसे दुःखी मनवाले तेरे अंतरमें भोग भोगनेकी इच्छासे व्यर्थ तरंगें उठा करती हैं उसी प्रकार यदि वह मन परमात्मरूप स्थानमें स्फुरायमान हो तो तेरा जन्म कैसे निष्फल हो? ॥३॥ आकांक्षासे[4] कलुषित हुआ और कामभोगोंमें मूर्च्छित ऐसा यह जीव भोग न भोगता हुआ भी भावसे कर्म बांधता है ॥४॥ इत्यादिरूप (उक्त गाथाओंमें कथित) दुर्ध्यानको छोड़कर (ऐसा करना—) [5]निर्ममत्वमें स्थिर होकर, मैं अन्य पदार्थोमें ममत्व बुद्धिका त्याग करता हूं; मुझे आत्माका ही

---

१. श्रीरत्नकरंड श्रावकाचार गाथा–७८ २. श्रीयशस्तिलक चम्पू अ० २ गाथा–१३२
३. श्रीयशस्तिलक चम्पू अ० २ गाथा–१३४ ४. श्रीमूलाचार अ० २ गाथा–८१
५. श्रीनियमसार गाथा–९९

आदा अवसेसाइं वोसरे ।।१।। आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य । आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ।।२।। एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसण-लक्खणो । सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ।।३।।" इत्यादिसार-पदानि गृहीत्वा च ध्यानं कर्त्तव्यमिति ।

अथ मोक्षविषये पुनरपि नयविचारः कथ्यते । तथा हि—मोक्षस्तावत् बंध-पूर्वकः । तथाचोक्तं—"मुक्तश्चेत् प्राक्भवेद्बन्धो नो बन्धो मोचनं कथम् । अबन्धे मोचनं नैव मुञ्चेरर्थो निरर्थकः ।।१।।" बंधश्च शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति, तथा बंध-पूर्वको मोक्षोऽपि । यदि पुनः शुद्धनिश्चयेन बंधो भवति तदा सर्वदैव बंध एव, मोक्षो नास्ति । किंच—यथा शृङ्खलाबद्धपुरुषस्य बंधच्छेदकारणभूतभावमोक्ष-स्थानीयं बंधच्छेदकारणभूतं पौरुषं पुरुषस्वरूपं न भवति, तथैव शृङ्खलापुरुषयो-र्यद्द्रव्यमोक्षस्थानीयं पृथक्करणं तदपि पुरुषस्वरूपं न भवति । किंतु ताभ्यां भिन्नं

अवलंवन है, अन्य सर्वका मैं त्याग करता हूं ।।१।। मेरा[1] आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है, आत्मा ही संवर है और आत्मा ही योग है ।।२।। ज्ञानदर्शनलक्षणयुक्त[2] एक मेरा आत्मा ही शाश्वत है और अन्य सर्व संयोगलक्षणयुक्त भाव मेरेसे वाह्य हैं ।।३।। इत्यादि सारभूत पदोंका ग्रहण कर ध्यान करना ।

अब, मोक्षके विषयमें पुनः नय-विचार कहा जाता है:—प्रथम तो मोक्ष वंधपूर्वक है । वही कहा है—"[3]यदि जीव मुक्त है तो इस जीवको पहले वंध अवश्य होना चाहिये । क्योंकि यदि वंध नहीं हो तो मोक्ष किसप्रकार हो सकता है ? अवंधकी (जो वंधा नहीं हो उसकी) मुक्ति नहीं होती तो मुञ्च् धातुका प्रयोग ही निरर्थक है ।" शुद्ध निश्चयनयसे वंध नहीं है तथा वंधपूर्वक मोक्ष भी नहीं है । यदि शुद्ध निश्चयनयसे वंध हो तो सदा वंध ही रहे, मोक्ष होगा ही नहीं । विशेषः—जिस प्रकार सांकलसे वंधे पुरुषको, वंधनाशके कारणभूत भाव-मोक्षस्थानीय (वंधको छेदनेका कारणभूत जो भावमोक्ष उसके समान) सांकलके वंधनको छेदनेका कारणभूत जो उद्यम है वह पुरुषका स्वरूप नहीं है और द्रव्यमोक्षस्थानीय जो सांकल और पुरुषका पृथक्करण (अलग होना) वह भी

---

१. श्री नियमसार गाथा–१००

२. श्री नियमसार गाथा–१०२

३. श्री परमात्म प्रकाश अ० १ गाथा–५६ टीका

यद्दृष्टं हस्तपादादिरूपं तदेव पुरुषस्वरूपम् । तथैव शुद्धोपयोगलक्षणं भावमोक्षस्वरूपं शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवति, तथैव तेन साध्यं यज्जीवकर्मप्रदेशयोः पृथक्करणं द्रव्यमोक्षरूपं तदपि जीवस्वभावो न भवति; किंतु ताभ्यां भिन्नं यदनन्तज्ञानादिगुणस्वभावं मूलभूतं तदेव शुद्धजीवस्वरूपमिति । अयमत्रार्थः—यथा विवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चयेन पूर्वं मोक्षमार्गो व्याख्यातस्तथा पर्यायमोक्षरूपो मोक्षोऽपि, न च शुद्धनिश्चयनयेनेति । यस्तु शुद्धद्रव्यशक्तिरूपः शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणपरमनिश्चयमोक्षः, स च पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानीं भविष्यतीत्येवं न । स एव रागादिविकल्परहिते मोक्षकारणभूते ध्यानभावनापर्याये ध्येयो भवति, न च ध्यानभावनापर्यायरूपः । यदि पुनरेकान्तेन द्रव्यार्थिकनयेनापि स एव मोक्षकारणभूतो ध्यानभावना पर्यायो भण्यते तर्हि द्रव्यपर्यायरूपधर्मद्वयाधारभूतस्य जीवधर्मिणो मोक्षपर्याये जाते सति यथा ध्यानभावनापर्यायरूपेण विनाशो भवति, तथा ध्येयभूतस्य जीवस्य शुद्धपारिणामिकभावलक्षणद्रव्यरूपेणापि विनाशः प्राप्नोति,

---

पुरुषका स्वरूप नहीं है, परन्तु उन दोनोंसे (उद्यमसे और सांकलसे पुरुषके पृथक्करणसे) भिन्न जो हस्त-पादादिरूप देखा जाता है वही पुरुषका स्वरूप है, उसीप्रकार शुद्धोपयोग–लक्षणयुक्त भावमोक्षका स्वरूप वह शुद्धनिश्चयसे जीवका स्वरूप नहीं है और उसके द्वारा साध्य जीव और कर्मके प्रदेशोंके पृथक्करणरूप (भिन्न होनेरूप) द्रव्यमोक्ष भी जीवका स्वभाव नहीं है, परन्तु उन दोनोंसे (भावमोक्षसे और द्रव्यमोक्षसे) भिन्न जो अनंत ज्ञानादिगुणरूप स्वभाव है, मूलभूत है, वही शुद्ध जीवका स्वरूप है । यहां तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार विवक्षित-एकदेश-शुद्धनिश्चयनयसे पहले मोक्षमार्गका व्याख्यान है उसीप्रकार पर्याय-मोक्षरूप जो मोक्ष है वह भी एकदेश-शुद्ध-निश्चयनयसे है परन्तु शुद्ध निश्चयनयसे नहीं है । जो शुद्ध द्रव्यशक्तिरूप शुद्ध पारिणामिक-परमभाव लक्षणयुक्त परम निश्चयमोक्ष है वह तो जीवमें पहिलेसे ही विद्यमान है, वह (परमनिश्चयमोक्ष) जीवमें अब होगा, ऐसा नहीं है । वही परम निश्चयमोक्ष रागादि विकल्प रहित, मोक्षकी कारणभूत, ध्यानभावना-पर्यायमें ध्येय होता है, परन्तु वह निश्चयमोक्ष ध्यानभावना पर्यायरूप नहीं है । यदि एकांतसे द्रव्यार्थिकनयसे भी उसे ही (परम निश्चय-मोक्षको ही) मोक्षकी कारणभूत ध्यानभावना पर्याय कहा जाय तो द्रव्य और पर्यायरूप दो धर्मोके आधारभूत जीव-धर्मीको मोक्षकी पर्याय प्रगट होनेपर जिसप्रकार ध्यानभावनापर्यायरूपसे विनाश होता है उसीप्रकार ध्येयभूत जीवका शुद्धपारिणामिक-

न च द्रव्यरूपेण विनाशोऽस्ति । ततः स्थितं शुद्धपारिणामिकमेव बन्धमोक्षौ न भवत इति ।

अथात्मशब्दार्थः कथ्यते । "अत" धातुः सातत्यगमनेऽर्थे वर्तते । गमनशब्देनात्र ज्ञानं भण्यते, "सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था" इति वचनात् । तेन कारणेन यथासंभवं ज्ञानसुखादिगुणेषु आसमन्तात् अतति वर्तते यः स आत्मा भण्यते । अथवा शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारैर्यथासम्भवं तीव्रमन्दादिरूपेण आसमन्तादतति वर्तते यः स आत्मा । अथवा उत्पादव्ययध्रौव्यैरासमन्तादतति वर्तते यः स आत्मा ।

किञ्च—यथैकोऽपि चन्द्रमा नानाजलघटेषु दृश्यते तथैकोऽपि जीवो नानाशरीरेषु तिष्ठतीति वदन्ति तच्च न घटते । कस्मादिति चेत्—चन्द्रकिरणोपाधिवशेन घटस्थजलपुद्गला एव नानाचन्द्राकारेण परिणता, न चैकश्चन्द्रः । तत्र दृष्टान्तमाह—यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणस्थपुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणता, न चैकं देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणतम् । परिणमतीति चेत्—

भावलक्षणयुक्त द्रव्यरूपसे भी विनाश होगा; परन्तु द्रव्यरूपसे तो जीवका विनाश नहीं है । अतः सिद्ध हुआ कि 'शुद्ध पारिणामिकभावसे (जीवको) बंध और मोक्ष नहीं है ।'

अब, "आत्मा" शब्दका अर्थ कहते हैं:—"अत्" धातुका अर्थ "सतत गमन" है । "गमन" शब्दका यहां "ज्ञान" अर्थ होता है क्योंकि "सब गतिरूप अर्थवाले धातु ज्ञानरूप अर्थवाले होते हैं" ऐसा वचन है । इसकारण, यथासंभव ज्ञानसुखादि गुणोंमें "आ" अर्थात् सर्वप्रकारसे "अतति" अर्थात् वर्तता है वह आत्मा है अथवा शुभ-अशुभ मन-वचन-कायकी क्रिया द्वारा यथासम्भव तीव्र-मंदादिरूपसे जो "आ" अर्थात् पूर्णरूपसे "अतति" वर्तता है वह आत्मा है । अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों धर्मो द्वारा जो "आ" अर्थात् पूर्णरूपसे "अतति" अर्थात् वर्तता है वह आत्मा है ।

जिसप्रकार एक ही चन्द्रमा अनेक जलसे भरे घड़ोंमें दिखाई पड़ता है उसी प्रकार एक ही जीव अनेक शरीरोंमें रहता है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं परन्तु वह घटित नहीं होता है । कैसे घटित नहीं होता है ? चंद्रकी किरणरूप उपाधिके वश घड़ेके जलके पुद्गल ही अनेक चंद्रके आकाररूपसे परिणमित हुए हैं, एक चंद्रमा अनेकरूपसे परिणमित नहीं हुआ है । इस संबंधमें दृष्टांत कहते हैं:—जिसप्रकार देवदत्तके मुखरूप उपाधिके वश अनेक दर्पणोंके पुद्गल ही अनेक मुखोंके आकाररूप परिणमित हुए हैं, एक देवदत्तका मुख अनेकरूप परिणमित नहीं हुआ है । यदि

तर्हि दर्पणस्थप्रतिबिम्बं चैतन्यं प्राप्नोतीति, न च तथा। किन्तु यद्येक एव जीवो भवति, तदैकजीवस्य सुखदुःखजीवितमरणादिके प्राप्ते तस्मिन्नेव क्षणे सर्वेषां जीवितमरणादिकं प्राप्नोति, न च तथा दृश्यते। अथवा ये वदन्ति यथैकोपि समुद्रः क्वापि क्षारजलः क्वापि मिष्टजलस्तथैकोऽपि जीवः सर्वदेहेषु तिष्ठतीति। तदपि न घटते। कथमिति चेत्—जलराश्यपेक्षया तत्रैकत्वं, न च जलपुद्गलापेक्षया तत्रैकत्वम्। यदि जलपुद्गलापेक्षया भवत्येकत्वं तर्हि स्तोकजले गृहीते शेषजलं सहैव किन्नायाति। ततः स्थितं षोडशवर्णिकासुवर्णराशिवदनन्तज्ञानादिलक्षणं प्रत्येकं जीवराशिं प्रति, न चैकजीवापेक्षयेति।

अध्यात्मशब्दस्यार्थः कथ्यते। मिथ्यात्वरागादिसमस्तविकल्पजालरूपपरिहारेण स्वशुद्धात्मन्यधि यदनुष्ठानं तदध्यात्ममिति। एवं ध्यानसामग्रीव्याख्यानोपसंहाररूपेण गाथा गता ॥ ५७ ॥

देवदत्तका मुख ही अनेक मुखरूपसे परिणमित होता हो तो दर्पणमें स्थित देवदत्तके मुखका प्रतिबिंब भी चेतन बन जाये; परन्तु ऐसा तो नहीं होता है। तथा, यदि एक ही जीव हो तो एक जीवको सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि प्राप्त होनेपर उसी क्षण सब जीवोंको जीवन-मरण प्राप्त होना चाहिये; परन्तु वैसा दिखाई नहीं पड़ता है। अथवा जो ऐसा कहते हैं कि 'एक ही समुद्र है वह कहीं खारे पानीवाला है, और कहीं मीठे पानीवाला है। उसीप्रकार एक ही जीव सब शरीरोंमें विद्यमान है,' उनका यह कथन भी घटित नहीं होता है। कैसे घटित नहीं होता है? समुद्रमें जलराशिकी अपेक्षासे एकता है, जलके कणोंकी अपेक्षासे एकता नहीं है। यदि जलकणोंकी अपेक्षासे एकता हो तो समुद्रमेंसे थोड़ासा जल ग्रहण करनेपर शेष सभी जल उसके साथ क्यों नहीं आ जाता है? इसकारणसे सिद्ध होता है कि सोलह वर्ण वाले सोनेकी राशिकी भांति अनंत ज्ञानादि लक्षणकी अपेक्षासे जीवराशिमें एकता है परन्तु एक जीवकी अपेक्षासे (समस्त जीवराशिमें एक ही जीव होनेकी अपेक्षासे) जीव राशिमें एकता नहीं है।

अब, 'अध्यात्म' शब्दका अर्थ कहा जाता है: मिथ्यात्व, राग आदि समस्त विकल्पजालके त्यागसे स्वशुद्धात्मामें जो अनुष्ठान उसे 'अध्यात्म' कहते हैं।

इसप्रकार ध्यानकी सामग्रीके व्याख्यानके उपसंहाररूपसे यह गाथा पूर्ण हुई ॥५७॥

अथौद्धत्यपरिहारं कथयति :—

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

द्रव्यसंग्रहं इमं मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः ।
शोधयन्तु तनुश्रुतधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥५८॥

व्याख्या—"सोधयंतु" शुद्धं कुर्वन्तु । के कर्तारः ? "मुणिणाहा" मुनिनाथा मुनिप्रधानाः । किं विशिष्टाः ? "दोससंचयचुदा" निर्दोषपरमात्मनो विलक्षणा ये रागादिदोषास्तथैव च निर्दोषपरमात्मादितत्त्वपरिज्ञानविषये संशयविमोहविभ्रमास्तैश्च्युता रहिता दोषसंचयच्युताः । पुनरपि कथम्भूताः ? "सुदपुण्णा" वर्तमानपरमागमाभिधानद्रव्यश्रुतेन तथैव तदाधारोत्पन्ननिर्विकारस्वसम्वेदनज्ञानरूपभावश्रुतेन च पूर्णाः समग्राः श्रुतपूर्णाः । कं शोधयन्तु ? "दव्वसंगहमिणं" शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मादिद्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रहस्तं द्रव्यसंग्रहाभिधानम्

अब, ग्रन्थकार अपने अभिमानके परिहारका कथन करते हैं:—

गाथा—५८

गाथार्थः—अल्पश्रुतके धारक नेमिचन्द्र मुनिने जो यह द्रव्यसंग्रह रचा है उसका, दोषोंसे रहित और श्रुतज्ञानसे पूर्ण ऐसे आचार्य शोधन करें ।

टीकाः—"सोधयंतु" शुद्ध करें । कौन शुद्ध करें ? "मुणिणाहा" मुनिनाथ, मुनियोंमें प्रधान, कैसे मुनिनाथ ? "दोससंचयचुदा" निर्दोष परमात्मासे विलक्षण जो रागादि दोष और निर्दोष परमात्मादि तत्त्वोंको जाननेमें जो संशय-विमोह-विभ्रमरूप दोष-उनसे रहित होनेसे जो 'दोषसंचयच्युत' हैं । तथा कैसे मुनिनाथ ? "सुदपुण्णा" वर्तमान परमागम नामक द्रव्यश्रुतसे और उस परमागमके आधारसे उत्पन्न निर्विकार-स्वसंवेदनज्ञानरूप भावश्रुतसे परिपूर्ण होनेसे श्रुतपूर्ण है । (वे) किसको शुद्ध करें ? "दव्वसंगहमिणं" शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव परमात्मा आदि द्रव्योंका

नेमिचन्द्र मुनि तनु श्रुत लियो, ग्रंथ द्रव्यसंग्रह में कियो ।
जे महान मुनि बहु-श्रुत-धार, दोष-रहित ते सोधहु तार ॥५८॥

ग्रन्थमिमं प्रत्यक्षीभूतम् । किं विशिष्टं ? "भणियं जं" भणितः प्रतिपादितो यो ग्रन्थः । केन कर्तृभूतेन ? "णेमिचन्दमुणिणा" श्री नेमिचन्द्रमुनिना श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवाभिधानेन मुनिना सम्यग्दर्शनादिनिश्चयव्यवहाररूपपञ्चाचारोपेताचार्येण । कथम्भूतेन ? "तणुसुत्तधरेण" तनुश्रुतधरेण तनुश्रुतं स्तोकं श्रुतं तद्धरतीति तनुश्रुतधरस्तेन । इति क्रियाकारकसम्बन्धः । एवं ध्यानोपसंहारगाथात्रयेण, औद्धत्यपरिहारार्थं प्राकृतवृत्तेन च द्वितीयान्तराधिकारे तृतीयं स्थलं गतम् ।।५८।। इत्यन्तराधिकारद्वयेन विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकारः समाप्तः ।

अत्र ग्रन्थे "विवक्षितस्य सन्धिर्भवति" इति वचनात्पदानां सन्धिनियमो नास्ति । वाक्यानि च स्तोकस्तोकानि कृतानि सुखबोधनार्थम् । तथैव लिङ्गवचनक्रियाकारकसम्बन्धसमासविशेषणवाक्यसमाप्त्यादिदूषणं तथा च शुद्धात्मादिप्रतिपादनविषये विस्मृतिदूषणं च विद्वद्भिर्न ग्राह्यमिति ।

संग्रह वह द्रव्यसंग्रह, ऐसे 'द्रव्यसंग्रह' नामक इस—प्रत्यक्ष ग्रन्थको । कैसे द्रव्यसंग्रह ग्रन्थको ? "भणियं जं" जिस ग्रन्थका प्रतिपादन किया गया है उसे । किसने प्रतिपादन किया है ? "णेमिचन्दमुणिणा" सम्यग्दर्शन आदि निश्चय-व्यवहाररूप[1] पंचाचार सहित आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव नामक मुनिने ।

कैसे नेमिचन्द्र मुनिने ? "तणुसुत्तधरेण" अल्पश्रुतधारीने । जो अल्पश्रुतको धारण करता है वह अल्पश्रुतधारी है । (उसने इस ग्रन्थका प्रतिपादन किया है ।) इसप्रकार क्रिया और कारकोंका संबंध है ।

इसप्रकार ध्यानके उपसंहाररूप तीन गाथाओं द्वारा और उद्धतपनेके त्यागके लिये एक प्राकृत छंदसे द्वितीय अन्तराधिकारमें तीसरा स्थल समाप्त हुआ ।।५८।।

इसप्रकार दो अंतराधिकारों द्वारा वीस गाथाओं द्वारा मोक्षमार्गका प्रतिपादक तीसरा अधिकार समाप्त हुआ ।

इस ग्रन्थमें 'विवक्षित विषयकी संधि होती है' इस वचन अनुसार पदोंकी संधिका नियम नहीं है । (कहीं संधि की गई है, कहीं पर नहीं ।) सरलतासे बोध करानेके लिये वाक्य छोटे-छोटे बनाये हैं । लिंग, वचन, क्रियाकारक संबंध, समास, विशेषण और वाक्य समाप्ति आदि दोष और शुद्धात्मा आदि तत्त्वोंके कथनमें विस्मरणका दोष विद्वानों द्वारा ग्राह्य नहीं है ।

---

१. निश्चय-व्यवहार पंचाचार एक साथ भावलिंगी मुनियोंको ही होते हैं, इसप्रकार यहां स्पष्ट किया है ।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवमजीवं दव्वं" इत्यादिसप्तविंशतिगाथाभिः षट्-द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोधिकारः। तदनन्तरं "आसव बन्धण" इत्येकादशगाथाभिः सप्ततत्त्वनवपदार्थप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः। ततः परं "सम्मद्दंसण" इत्यादिविंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गप्रतिपादकनामा तृतीयोऽधिकारः ॥

इत्यधिकारत्रयेनाष्टाधिकपञ्चाशत्सूत्रैः श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैर्विरचितस्य द्रव्यसंग्रहाभिधानग्रन्थस्य सम्बन्धिनी श्रीब्रह्मदेवकृतवृत्तिः समाप्ता।

इस भांति पूर्वोक्त प्रकारसे "जीवमजीवं दव्वं" इत्यादि सत्ताईस गाथाओं द्वारा षट्द्रव्य-पंचास्तिकायप्रतिपादक नामक प्रथम अधिकार है। तत्पश्चात् "आसवबन्धण" इत्यादि ग्यारह गाथाओं द्वारा साततत्त्व-नवपदार्थ प्रतिपादक नामक दूसरा अधिकार है। तत्पश्चात् "सम्मद्दंसण" इत्यादि वीस गाथाओं द्वारा मोक्षमार्ग प्रतिपादक नामक तीसरा अधिकार है।

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव विरचित तीन अधिकारोंकी अठावन गाथाओं युक्त द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थकी श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीकाका गुजरातीमेंसे हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।



—: लघुद्रव्यसंग्रह :—

—卐—

छद्दव्व पंच अत्थी सत्त वि तच्चाणि णव पयत्था य ।
भंगुप्पाय-धुवत्ता णिद्दिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥१॥

अर्थः—जिन्होंने छ द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नव पदार्थ और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका निर्देश किया है वे श्री जिनेन्द्रदेव जयवंत रहो ॥१॥

जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य ।
दव्वाणि कालरहिया पदेश वाहुल्लदो अत्थिकाया य ॥२॥

अर्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल (ये छह) द्रव्य हैं; कालके अतिरिक्त शेष पांच द्रव्य, बहुप्रदेशी होनेके कारण अस्तिकाय हैं ॥२॥

जीवाजीवासवबंध संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो ।
तच्चाणि सत्त एदे सपुण्ण-पावा पयत्था य ॥३॥

अर्थः—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं; ये सात तत्त्व पुण्य और पाप सहित नव पदार्थ हैं ॥३॥

जीवो होइ अमुत्तो सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता ।
भोत्ता सो पुण दुविहो सिद्धो संसारिओ णाणा ॥४॥

अर्थः—जीव (द्रव्य) अमूर्तिक, स्वदेह-प्रमाण, सचेतन, कर्ता और भोक्ता है। जीव दो प्रकारके हैं, सिद्ध और संसारी; संसारी जीव अनेक प्रकारके हैं ॥४॥

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिदिट्ठ–संट्ठाणं ॥५॥

अर्थः—जीवको रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, अव्यक्त, शब्दरहित, लिंग द्वारा जिसका ग्रहण न हो सके ऐसा, जिसका संस्थान निर्दिष्ट नहीं है ऐसा और चेतना गुणयुक्त जानना ॥५॥

वण्ण–रस गंध–फासा विज्जंते जस्स जिणवरुद्दिट्ठा ।
मुत्तो पुग्गलकाओ पुढवी पहुदी हु सो सोढा ॥६॥

अर्थः—जिसमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श विद्यमान है वह मूर्तिक पुद्गलकाय पृथ्वी आदि छ प्रकारकी श्री जिनेंद्रदेवने कही है ॥६॥

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्म परमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं ॥७॥

अर्थः—पृथ्वी, जल, छाया, (नेत्रेन्द्रियके अतिरिक्त) चार इन्द्रियोंके विषय, कर्म वर्गणा और परमाणु; श्री जिनेंद्रदेवने पुद्गल द्रव्य (उपरोक्त) छह प्रकारका कहा है ॥७॥

गईपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमण-सहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥८॥

अर्थः—गतिरूप परिणमित पुद्गल और जीवोंको गमनमें सहकारी धर्मद्रव्य है, जिसप्रकार मछलीको (गमन करनेमें) जल सहकारी है । गमन नहीं करनेवाले (पुद्गल और जीवों) को वह (–धर्मद्रव्य) गति नहीं कराता है ॥८॥

ठाणजुयाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाण-सहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छांता णेव सो धरई ॥९॥

अर्थः—स्थित होते हुए पुद्गल और जीवोंको स्थिर होनेमें सहकारी अधर्म-द्रव्य है; जिसप्रकार छाया यात्रियोंको स्थिर होनेमें सहकारी है । गमन करते हुए जीव और पुद्गलोंको वह (अधर्म द्रव्य) स्थिर नहीं करता है ॥९॥

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१०॥

अर्थः—जो जीव आदि द्रव्योंको अवकाश देनेके योग्य है उसे (श्री जिनेंद्रदेव द्वारा कथित) आकाशद्रव्य जानो । जिसके लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसे दो भेद हैं ॥१०॥

द्रव्यपरियट्टजादो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
लोगागासपएसो एक्केक्काणु य परमट्ठो ॥११॥

अर्थः—जो द्रव्योंके परिवर्तनसे उत्पन्न होता है वह व्यवहारकाल है; लोकाकाशमें प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है वह परमार्थ (निश्चय) काल है ।।११।।

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।१२।।

अर्थः—जो लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर रत्नोंकी राशिकी भांति एक-एक (कालाणु) स्थित हैं, वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं ।।१२।।

संखातीदा जीवे धम्माऽधम्मे अणंत आयासे ।
संखादासंखादा मुत्ति पदेसाउ संति णो काले ।।१३।।

अर्थः—एक जीवद्रव्यमें, धर्मद्रव्यमें और अधर्मद्रव्यमें असंख्यात प्रदेश हैं, आकाशद्रव्यमें अनंत प्रदेश हैं, पुद्गलमें संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश हैं; कालमें प्रदेश नहीं हैं । (कालाणु एक प्रदेशी है, उसमें शक्ति अथवा व्यक्तिकी अपेक्षासे बहुप्रदेशीपना नहीं है ।) ।।१३।।

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ।।१४।।

अर्थः—अविभागी पुद्गल अणु द्वारा जितना आकाश रोका जाये उसे प्रदेश जानो । वह प्रदेश सब (पुद्गल) परमाणुओंको स्थान देनेमें समर्थ है ।।१४।।

जीवो णाणी पुग्गल-धम्माऽधम्मायासा तहेव कालो य ।
अज्जीवा जिणभणिओ ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्छो ।।१५।।

अर्थः—जीव ज्ञानी है; पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव हैं, इसप्रकार श्री जिनेंद्रदेवने कहा है, जो ऐसा नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ।।१५।।

मिच्छत्तं हिंसाई कसाय-जोगा य आसवो बंधो ।
सकसाई जं जीवो परिगिण्हइ पोग्गलं विविहं ।।१६।।

अर्थः—मिथ्यात्व, हिंसा आदि (अव्रत), कषाय और योगोंसे आस्रव होता है; कषाय सहित जीव विविध प्रकारके जिन पुद्गलोंको ग्रहण करता है वह बंध है ।।१६।।

मिच्छत्ताईचाओ संवर जिण भणइ णिज्जरादेसे ।
कम्माण खओ सो पुण अहिलसिओ अणहिलसिओ य ॥१७॥

अर्थः—श्री जिनेन्द्रदेवने मिथ्यात्व आदिके त्यागको संवर कहा है; कर्मोंका एकदेश क्षय वह निर्जरा है और वह (निर्जरा) अभिलाषा सहित और अभिलाषा रहित (-सकाम, अकाम) इस भांति दो प्रकारकी है ॥१७॥

कम्म बंधण-बद्धस्य सब्भूदस्संतरप्पणो ।
सव्वकम्म-विणिम्मुक्को मोक्खो होइ जिणेडिदो ॥१८॥

अर्थः—कर्मोंके बंधनसे बद्ध सद्भूत (प्रशस्त) अंतरात्माका जो सर्वकर्मोंसे (पूर्णरूपसे) मुक्त होना वह मोक्ष है—इसप्रकार श्री जिनेंद्रदेवने वर्णन किया है ॥१८॥

सादाऽऽउ-णामगोदाणं पयडीओ सुहा हवे ।
पुण्ण तित्थयरादी अण्णं पावं तु आगमे ॥१९॥

अर्थः—शाता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और तीर्थंकर आदि प्रकृतियां पुण्य प्रकृतियां हैं; शेष अन्य पाप-प्रकृतियां हैं इसप्रकार परमागममें कहा है ॥१९॥

णासइ णर-पज्जाओ उप्पज्जइ देवपज्जओ तत्थ ।
जीवो स एव सव्वस्सभंगुप्पाया धुवा एवं ॥२०॥

अर्थः—मनुष्य पर्याय नष्ट होती है, देव पर्याय उत्पन्न होती है और जीव वहका वही रहता है; इसप्रकार सर्वद्रव्योंको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है ॥२०॥

उप्पादप्पद्धंसा वत्थूणं होंति पज्जय-णाएण (णयण) ।
दव्वट्ठिएण णिच्चा बोधव्वा सव्वजिणवुत्ता ॥२१॥

अर्थः—वस्तुमें उत्पाद और व्यय पर्यायनयसे होता है, द्रव्यदृष्टिसे वस्तु नित्य है ऐसा जानना; श्री सर्वज्ञ जिनेंद्रदेवने ऐसा कहा है ॥२१॥

एवं अहिगयसुत्तो सट्ठाणजुदो मणो णिरुंभिता ।
छंडउ रायं रोसं जइ इच्छइ कम्मणो णास (णासं) ॥२२॥

अर्थः—यदि कर्मोंका नाश करना चाहते हो तो उसके अनुसार सूत्रका ज्ञाता होकर, स्वयंमें स्थित रहकर और मनको रोककर राग और द्वेषको छोड़ो ॥२२॥

विसएसु पवट्टंतं चित्तं धारेत्तु अप्पणो अप्पा ।
झायइ अप्पाणेणं जो सो पावेइ खलु सेयं ॥२३॥

अर्थः—जो आत्मा, विषयोंमें प्रवर्तते हुए मनको रोककर, अपने आत्माका आत्मा द्वारा ध्यान करता है, वह वास्तवमें सुख प्राप्त करता है ॥२३॥

सम्मं जीवादीया णच्चा सम्मं सुकित्तिदा जेहिं ।
मोहगयकेसरीणं णमो णमो ठाण साहूणं ॥२४॥

अर्थः—जीवादिको सम्यक् प्रकारसे जानकर, जिन्होंने उन जीवादिका यथार्थ वर्णन किया है, जो मोहरूपी गजके हाथीके लिए केसरी (सिंह) के समान हैं उन साधुओंको हमारा नमस्कार हो, नमस्कार हो ॥२४॥

सोमच्छलेण रइया पयत्थ-लक्खणकराउ गाहाओ ।
भव्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥२५॥

अर्थः—श्री सोमश्रेष्ठीके निमित्तसे, भव्य जीवोंके उपकारके लिए श्री नेमिचन्द्र आचार्यदेवने पदार्थोंके लक्षण बतलानेवाली गाथायें रची हैं ॥२५॥



अकारादिक्रमेण बृहद्द्रव्यसंग्रहस्य गाथासूची

संस्कृतटीकायामुक्तानां पद्यादीनां वर्णानुक्रमसूची



* इन पद्योंका रूपान्तर होने पर भी भावार्थ वही है।

पारिभाषिक-शब्दसूची



(आ)

(इ)

(ब)

(भ)

(श)

संस्कृतटीकायामुक्तानां वाक्यानाम् सूची